पहला पड़ाव

पहला पड़ाव

श्रीलाल शुक्ल

नयी दिल्ली पटना

मूल्य . रु. 70 00

प्रथम संस्करण : 1987

द्वितीय सस्करण . 1989

प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
नई दिल्ली-110 002

टाइपसैटिंग . फोटोटाइप डिवीजन,
राजकमल प्रकाशन प्रा लि ,
एफ-5, सैक्टर-8, नौएडा-201 301

मुद्रक : मेहरा आफसेट प्रेस,
दरियागज, नई दिल्ली-110 002

आवरण ' चचल

PAHALA PADAV
Novel by Shrilal Shukla

पहला भाग

1
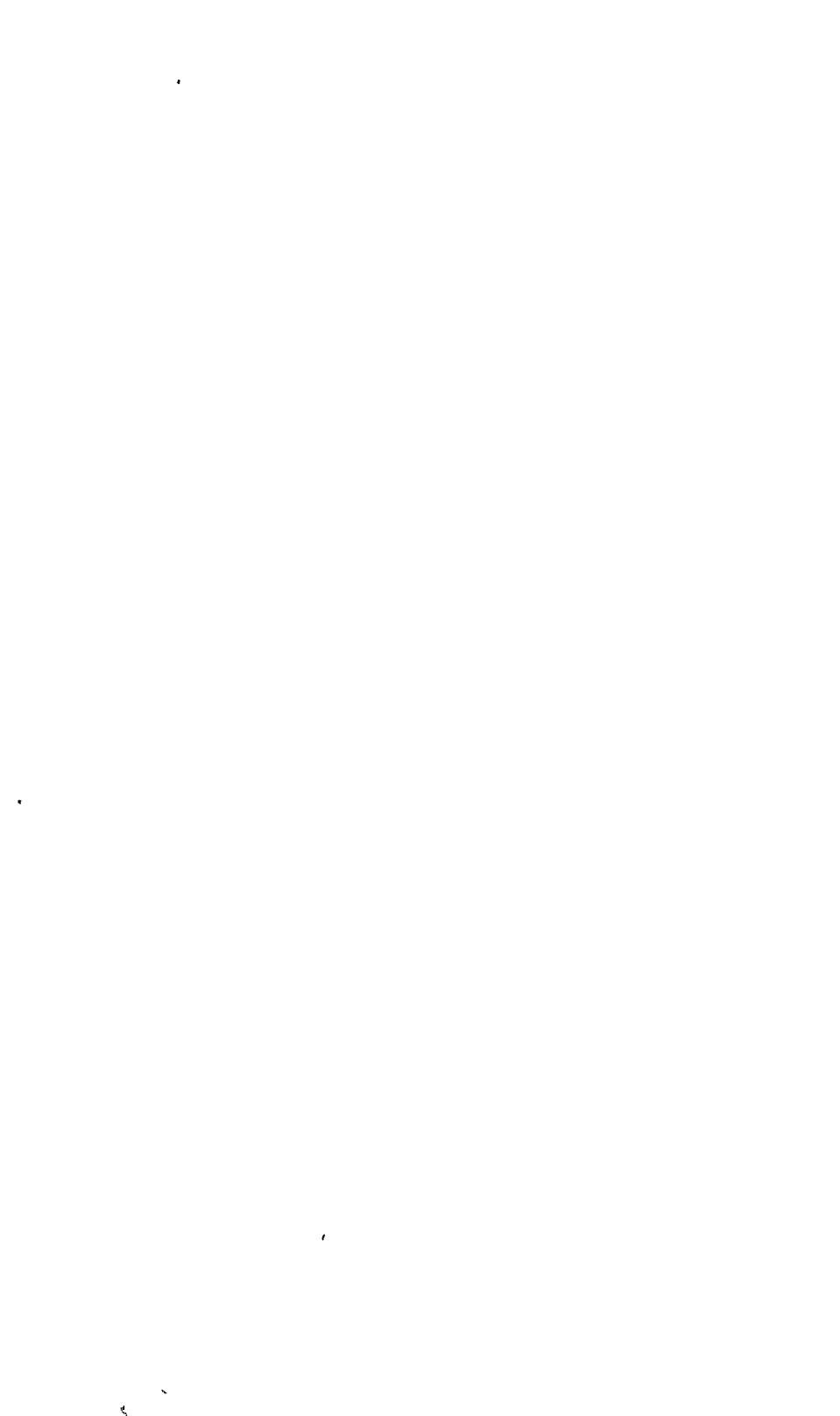
चैत की अमावस के पहले से ही मेडूराम उर्फ नेता का मन कसमसाने लगा था। उनकी मेमसाहब भी कभी-कभी दीवार से अपनी धनुष-जैसी तनी पीठ टिकाकर एक गीत गुनगुनाती। उसके बोल हमारी समझ में न आते पर इतना हम समझ लेते कि उन्हे भी अपने गॉव की याद सता रही है। ऐसा कई दिन से हो रहा था। काम के वक्त भी मेमसाहब इधर कुछ उखडी-उखडी रहती थी। खोपडी पर सीमेट की फटी बोरी की एक ऍडुर रक्खे, उस पर छह मंजिलो मे सजी ग्यारह ईंटे लिए जब वे मिस्त्री के पास पहुँचती तो उन्हे अब पहलेवाली फुर्ती से न फेकती, वे पहले नेता को खडे-खडे धिक्कारती। धिक्कार के बोल थे जोत-जवारे के दिनो मे भी गॉव न चलेगा? यहाँ रहेगा तो जो बचा-खुचा है उसे भी जुए मे फूँक देगा। मिस्त्री, जो रोज शाम नेता के साथ जुआ खेलते थे, बडी समझदारी से कहते जुए का काम बडा कच्चा है। इधर, चिकने लहरिया बालोवाले सॉवले चेहरे मे ऊबड-खाबड दॉतो की मटमैली छटा दिखाते हुए नेता मुझे सुनाकर जवाब देते मुसी जाने दे तब न।

मुसी मैं ही था। सुनकर हाकिमाना अंदाज से मैं दूसरी ओर किसी मजदूर को सुस्ती छोडकर चुस्ती दिखाने के लिए आवाज देता। पर मैं जानता था कि बिलासपुरी मजदूर का जी उखड जाए तो उसे बिलासपुर से लेकर दिल्ली तक की कोई भी ताकत तब तक नही रोक सकती जब तक उसके हाथ मे पुराने कर्ज का चाबुक न हो, जो मेरे हाथ मे नही था। यह अच्छा ही था, उसके बिना मेरे गदे हाथ कुछ और गदे होने से बच गए थे। रोज-रोज की झिकझिक से ऊबकर आठ-दस दिन बाद मैंने उन दोनो को घर जाने को कह दिया।

बडे तामझाम से, यानी अल्लम-गल्लम से भरी बाल्टी, टीन की ट्रक और सीमेट की बोरी मे भूसे-जैसी ठुँसी घरेलू फटीचरी के साथ वे स्टेशन जाने को निकले। मैंने उन्हे समझाया कि यहाँ से जाने के लिए लखनऊ से इलाहाबादवाली दिन की गाडी पकडो और दिन-ही-दिन निकल जाओ। रात मे न चलना। जैसी कि उम्मीद थी, नेता की दिन की गाडी छूट गई। वे रातवाली गाडी से ही गए। तीन स्टेशन पार करके निगोहा स्टेशन आते-आते गाडी ही मे लुट गए। फिर रास्ते से किसी तरह वापस लौटे। अगले

दिन वे फिर हमारे अधबने मकान के आगे मज़दूरी करने को खडे हो गए। मेमसाहब ने लूटमार का पूरा-पूरा हाल बताया, विलाप नही किया, थोडा प्रलाप-भर किया। उससे लूटमार की भयकरता भले ही न प्रकट हुई हो, नेता को बुजदिली की पक्की सनद मिल गई। खुद नेता राजा जनक बने हुए निर्विकार मुद्रा मे—अगर बेहरकत निगाह और फैले ओठो और निकले दाँतो को ऐसी मुद्रा माना जाए—चुपचाप बैठे रहे। फिर, जिस तरह हवाई जहाज की दुर्घटना के बाद मरे हुए विमानचालको और खुद अपनी दरकी हुई पसलियो को नजरअदाज करके तत्कालीन प्रधानमत्री मुरारजी देसाई राजकाज की किसी फाइल को बेलौस ढग से देखने लगे होगे, लगभग वैसे ही अदाज़ से नेता ने कहा, "मिस्त्री, अब आज की चिलम तुम्हारे भरोसे।" चिलम, यानी गाँजा। मिस्त्री ने उन्हे घूरकर देखा, मासूम आवाज़ मे मुझसे कहा, "पता नही क्या बकता रहता है।"

मेमसाहब बोली

"डिब्बे की बत्तियाँ झपझप करती थी। गाडी धीमी होती तो धीमी पड जाती, रुकती तो बुझने लगती, बत्ती की सीक-भर दिखती, डिब्बे मे घुप्प अँधेरा हो जाता। गाडी खिचिड-खिचिड करके चल रही थी। तभी जो लडका मेरे पास बैठा था, सीधा खडा हो गया। उसके हाथ मे कट्टा था। मेरी तो छाती धक्क-से रह गई ।"

मेरा मन रहज़नो के देसी तमचे के दबदबे और मेमसाहब की छाती के बीच भटकने ही वाला था कि उनकी उँगली मेरी ओर उठ गई। बोली, "इन्ही मुसी-जैसा था, मरियल, इतना ही लबा, ऐसा ही दुबला-पतला। इन्ही के जैसे बडे-बडे बाल। पुलिस जहाँ भी कहे, उसे सौ के बीच मे पहचान लूँगी।

"उसने अपना कट्टा तुम्हारे इन नेता की कनपटी पर ठोक दिया। दो-तीन लडके और भी थे। डिब्बे के दरवाजो के पास खडे होकर उन्होने भी कट्टे निकाल लिए। एक के हाथ मे छुरा था, वह सबको सुनाकर बोला, चुपचाप बैठे रहो। अपने माल के पीछे जान मत दो।

"नेता भोलानाथ बने बैठे रहे। भाँय-भाँय यही करते बनती है, वहाँ चोर कुत्ते की तरह कूँ तक नही की। सदूक मुझे ही खोलनी पडी। डिब्बे मे हमारे उधर के और भी कई लोग थे। सभी के करम फूटे थे ।"

मेमसाहब की आवाज बडी प्यारी थी। कभी भूले-से सहज सुर मे बोलती तो लगता, किसी अँधेरे कोने मे तुम्हे बैठाकर फुसला रही हैं। पर उन्हे जोर से बोलने की आदत पड गई थी, दिन-भर मर्दो के बीच काम करने का असर रहा होगा। इस वक्त उनकी आवाज मे कुछ और भी तीखी झनक थी। कायदे से मुझे भी उनकी बात मिस्त्री की तरह कुछ ज्यादा गौर से सुननी चाहिए थी। पर मेरा ध्यान उनके तमतमाए चेहरे और धक्क-से रह जानेवाली सुडौल छाती के कारण भटका हुआ था। इसलिए भी कि रहज़नी की त्रास-भरी घटना मुझे ज्यादा हिला नही पा रही थी। उसमे मेरे लिए कुछ नया नही था।

थाने का सिपाही पोस्टमार्टम कराने के लिए इसान की लाश को मार्चुअरी के लिए ले चलता है। उसे कपडे मे सिलाकर रिक्शे पर रखवा लेता है। लाश का सिर रिक्शे के बाहर हिलगा रहता है, पाँव दूसरी ओर तने रहते हैं। रिक्शा किर्र-किर्र चलता रहता है। सिपाही बीडी फूँकता हुआ बाजार का नजारा देखता रिक्शे पर बैठा रहता है। उस वक्त सिपाही के मन मे जितनी भावुकता होती है, उतनी ही भावुकता के साथ चाय सुडकते हुए मैं रेलगाडी की रहजनी का किस्सा सुन सकता हूँ।

एक मजदूर को आवाज देकर मैंने उसे दो रुपए का नोट दिया, कहा, "नुक्कड से चार गिलास चाय ले आओ।"

लूटमार का किस्सा सुनने की मुझे जरूरत न थी। उसका मैं सोते हुए भी आँखो देखा हाल बयान कर सकता हूँ। परसो रात नेता-दपत्ति और दूसरे मुसाफिरो को लूटनेवाली जो युवाशक्ति थी, वह मेरे ही पुराने साथियो की होगी। इस पर मैं दस का नोट लगाने को तैयार हूँ।

कुछ समाजशास्त्री पंडितो ने भारतीय रेलगाड़ी को पहियो पर चलता-फिरता भारतीय गाँव बताया है। पर दरअस्ल रेलगाडी के मुकाबले गाँव बडी अदना चीज है। रेलगाडी गाँव, कस्बा, शहर—सभी की सभ्यता और सस्कृति का सगम है, इस सबके साथ अपनी खास गुडागर्दी का भी; वैसे गुंडागर्दी का अलग से नाम लेने की जरूरत नही, वह भी सभ्यता मे शामिल है, या संस्कृति मे, या शायद दोनो मे, या शायद दोनो मिलकर गुडागर्दी मे। बहरहाल, जब आपके डिब्बे पर ककडी-खीरा, जामुन, आम, तला चना, अमरूद, मूँगफली और गन्ना बेचनेवाले कडकदार आवाज के साथ धावा बोलते हैं तो वह गाँव हो जाता है। जवान बिटिया को बछिया की तरह आगे करके सोहर गाती हुई बेवा जब कटोरा खनकाकर उसकी शादी के लिए भीख माँगती है तो वही डिब्बा टाउन एरिया बन जाता है। जब पॉकेटमार और जहर खिलानेवाले डिब्बे मे घुसते हैं और उनके साथी घुटनो पर अटैची की मेज़ बनाकर ताश खेलते और ठर्रा पीते हैं तो वहाँ एकदम चौबीस कैरेटवाला शहर उतर आता है। अंधे, लूले, लँगडे, कोढी और मिठाई-पान-बीडी-सिगरेट बेचनेवाले डिब्बे मे किसी शहरी हनुमान जी के मंदिर का माहौल पैदा करते हैं। अगर आप इन सबके बीच बँधुआ बनकर चल रहे हैं तो आप, मुसाफिर हैं और आपको टिकट की जरूरत है। अगर आप चोर-उचक्के या डकैत हैं, खोचेवाले या दूधिया हैं, भिखमगे हैं या नौजवान डेली पैसेजर हैं, तो फिर आप रेलवे के आदमी हैं, रेलवे स्टाफ से दुआ-सलाम करते हुए आप पहियो पर चलते-फिरते इस भारतवर्ष को बिना रोक-टोक अपनी पतलून की जेब मे डालकर घूम सकते हैं। मुसाफिरो का उस पर कोई हक नही, भारतीय रेल इसी समुदाय की बपौती है।

इस समुदाय मे—मैं अपने इलाके की बात कर रहा हूँ—सबसे ज़्यादा ताकतवर गुट

दैनिक यात्रियो का, यानी 'डेलीवालो' का है। दूधियो का भी। वास्तव मे रेलवे के इस रसातल मे प्रभुसत्ता के दावेदार यही दोनों गुट हैं। मौका पाते ही दूधिए पिंडारियो की तरह डिब्बे मे घुस जाते हैं। वे अपने दूध के कनस्तर खिडकी से बाँधकर बाहर टाँग देते हैं और अपनी साइकिले डिब्बे में खीचकर पुवाल की तरह जमा कर देते हैं। नौसिखिए मुसाफिर डिब्बे के किनारे-किनारे लटके हुए कनस्तारो के इन नारियल फलो को देखकर भले ही इस धोखे मे आ जाएँ कि यहाँ गाँव के कई मेहनतकश ग्वाले बैठे हुए हैं जो दूध दुहकर या उसे घर-घर से इकट्ठा करके, मुँह अँधेरे ही बीवी-बच्चो को पीछे छोड पापी पेट के लिए शहर की ओर भागे हैं, पर समझदार मुसाफिर उस डिब्बे को ताऊनवाली बस्ती मानकर उधर मुँह नही करते। उधर डेलीवाले भी, जो खासतौर से रिजर्व डिब्बो पर हमला करने के विशेषज्ञ हैं, बिना अपनी सख्या और सामूहिक ताकत की पडताल किए दूधियों के मुँह नही लगते। ये दोनो गुट शहर से तीस-चालीस मील के देहाती स्टेशनो से आ-आकर रेल पर दैनिक यात्रा करते हैं और बराबर अशांतिपूर्ण सहअस्तित्व की हालत मे रहते हैं।

तो, यह काम, निश्चय ही डेलीवालों का था। पिछले साल तक मैं खुद डेली पैसेजर रहा हूँ। उस लाइन के लगभग सभी डेलीवालो को पहचानता हूँ। बरसो हम सब रेल पर साथ-साथ चले हैं। दूर-दूर से हम सब गोल बाँधकर लखनऊ आते थे। सब पढ़ते ही नही थे, कुछ नौकरी भी करते थे। पढ़नेवाले यूनिवर्सिटी ही मे नही, शिया कालेज, कान्यकुब्ज कालेज, दयानद ऐग्लो वैदिक कालेज, विद्यात हिंदू कालेज, क्रिश्चियन कालेज आदि से लेकर चुटकी भडार पाठशाला तक फैले थे। सबको बी ए, एम ए करना था, फिर आई ए एस के इम्तिहान से शुरुआत करके और बाद मे घूस देकर ग्रामीण विकास बैंक की चपरासगिरी या बहुत हुआ तो निर्बल वर्ग विकास निगम मे लेखा लिपिक की कुर्सी पर बैठना था। डेली पैसेजरो मे लगभग चालीस फीसदी ऐसे ही भूतपूर्व छात्र थे जो अब सरकारी या लगभग-सरकारी नौकरी करते थे और चूँकि उनमे से बहुतो ने नकद पैसे देकर नौकरी ख़रीदी थी, इसलिए वे उसे अपनी मौरूसी जायदाद मानते थे। डेली पैसेजरो का अपना सगठन था और रेलवेवालो की दुम मे खटखटा बाँधने के लिए उनकी एक बाकायदा कार्यकारिणी थी जिसका दो साल तक मैं, यानी खुद मैं उपाध्यक्ष रह चुका था।

डेलीवालो मे बैंक और बीमा के कुछ कर्मचारियो को छोड़कर, जिनके मुकाबले जिले के कलेक्टर की तनख्वाह कुछ थोडी ही कम होती है, ज़्यादातर तीसरी और चौथी श्रेणी के कम तनख्वाहवाले कार्मिक थे। पर उनकी ऐठ से ही पता चल जाता था कि ये डेलीवाले हैं और उनके अफ़सरों के अफसर भी समझते थे कि इन्हे छेडना उतना ही निरापद है जितना कि गुमसुम पडे हुए बिच्छू के डक पर हाथ फेरना। वे जानते थे कि जो दुबला-पतला डेढ़ पसलीवाला नौजवान गले का टेटुआ निकाले, निगाह नीची किए सामने खड़ा है वह अपने गिरोह का सहारा पाते ही खूँख्वार तेंदुआ बन जाएगा।

इसीलिए डेलीवालो के सौ खून मुआफ थे। उनके कालेज या दफ़्तर पहुँचने का और वहाँ से घर के लिए चल देने का वक्त प्रिंसिपल या दफ्तर के हाकिम नही तय करते थे, इसका फैसला रेलवे का टाइम टेबुल करता था। दो साल पहले मैंने ही डेली पैसेंजर्स असोसिएशन के वाइसचेयरमैन की हैसियत से एक ज्ञापन देकर बेमतलब विनम्रता दिखाए बिना ऐलान किया था कि कालेज और दफ्तर के घटो और हमारी आमद-रफ्त के बीच तालमेल बैठाने की जिम्मेदारी रेलवे मिनिस्टर की है।

अब अगर कुछ डेलीवाले इस नेता-जैसे फक्कड आदमी की कनपटी पर कट्टा ठोक देते हैं या किसी मोहतरमा के गले से चेन खीच लेते हैं तो कानून कुछ भी कहे, यह कोई ख़ास बात नही है। यह एक खिलवाड है या, ज्यादा-से-ज्यादा, उनका व्यावहारिक जीवन-दर्शन है।

वैसे उनका व्यावहारिक जीवन-दर्शन कुछ ज्यादा ही व्यावहारिक है। मसलन, अगर उनका गाँव स्टेशन से दो मील की दूरी पर है तो स्टेशन आने के पहले गाँव के पास चेन खीच लेना या होजपाइप निकालकर गाडी को रोक लेना बिलकुल स्वाभाविक होगा। एक दिन की बात हो तो स्टेशन से घर तक पैदल चल ले, पर हर रोज दो-दो बार दो मील पगडडी नापने का काम कौन चिडीमार करेगा? वैसे ही, गाडी में चाहे जैसी भीड हो, वे तो बैठकर चलेगे ही। उन्हे रोज ही रेल से चलना है, खड़े-खडे कहाँ तक टाँगे तोडें? तभी वे किसी शरीफ दिखनेवाले मुसाफिर के दाएँ-बाएँ, जगह हो या न हो, धँस जाएँगे और उसे अपने नितब के एक-बटा चौंसठ अश पर टिकने को मजबूर कर देगे। मुसाफिर हयादार हुआ तो खुद उठकर खडा हो जाएगा और खिडकी के बाहर की छटा निहारने लगेगा। तब हमारे डेलीवाले साथी उसकी सौम्यता को पहचानते हुए, गाली-गलौज का सहज सबोधन छोडकर मौसम के विषय मे योरोपीय शिष्टाचार निभाते हुए उससे कहेगे कि आज बडी गर्मी है और आपके उधर बारिश हुई या नही। यही व्यवहार-बुद्धि टिकट पर भी लागू होती है। रोज-रोज चलना है, कहाँ तक टिकट खरीदे? कल तो लिया ही था। और अगर माहवारी टिकट की बात हो तो इस महीने मे दशहरे की छुट्टियाँ भी हैं, दस दिन के लिए माहवारी टिकट लेनेवाले भकुए इस इलाके मे नही रहते।

इन तर्कों का तोड दुर्ग, रायपुर, बिलासपुर-जैसे जिलो यानी कला और सस्कृति के चुनौती-भरे कार्यों मे पच्चानबे प्रतिशत और आर्थिक विकास के मामले में पाँच प्रतिशत अक पानेवाले मध्यप्रदेश नामक राज्य के भीतरी क्षेत्रो से आनेवाले मजदूरो की लूटपाट पर होता है। ये लोग, जो हमारे राज्य की सपत्ति लेकर अपने गाँव जा रहे हैं, इतने रुपयो का क्या करेगे? रुपया खर्च करने की तमीज भी है उन्हे? उसे फूँक-तापकर आखिर यही वापस आएँगे न? अच्छा है कि इन्हे अभी से हल्का कर दिया जाए। रुपया सत्कर्म मे लग जाएगा। वह कालिज की फीस भरने या बडे भाई की नौकरी के लिए हाकिम को घूस देने के काम आएगा। कुछ न हुआ तो शहर के किसी

मेहनतकश ढाबावाले के हाथ पर उसके मुर्गे और रम के बदले बख्शीश के तौर पर रख दिया जाएगा।

"एक काला-काला लडका है," मैंने कहा, "मुँह पर चेचक के दाग हैं । बालो मे चाहे जितना तेल-पानी चुपडे, वे खडे ही रहते हैं । जिसने नेता की कनपटी पर कट्टा ठोका था, यह वही लडका तो नही है ?"

मेम साहब ने मुझे घूरा, बोली, "बोल तो दिया मुसी जी, वह तुम्हारा ही जैसा था । तुम काले हो ? तुम्हारे मुँह पर दाग हैं ?"

"चुप रह ।" नेता बोले, पर उससे कोई प्रभावित नही हुआ ।

तब यह काम हरचरन एड कपनी का है—मैंने सोचा पर कहा नही । वह मेरे साथ बी ए तक पढ़ा है, अब कानून पढ रहा है। मेरा ही जैसा गोरा-चिट्टा और दुबला-पतला है । एक बार बिना टिकट मुसाफिरो की मजिस्ट्रेटी जाँच होने लगी । पुलिसवालो ने हरचरन को रपटा लिया, वह उन्हे बुत्ता देकर स्टेशन मास्टर के कमरे मे मेज के नीचे दुबक गया । स्टेशन मास्टर को वही नौकरी करनी थी । बाहर गलियारे की ओर उँगली उठाकर चीखने लगे, 'वह गया, वह गया !' पीठ की तरफ से हम दोनो इतना एक-से दीखते थे कि एक पुलिसवाले ने मुझे ही दबोच लिया । उस दिन अपने फूफा के पैसे से उनका टिकट खरीदते वक्त उसी से मैंने अपना भी टिकट ले लिया था । सिपाही को झटककर मैंने कहा, 'खबरदार, मुझे चमडे के हाथ न लगाना ।' दुनिया के आठवे अजूबे-जैसा टिकट अपनी जेब से निकालकर मैं उसकी नाक के सामने हिलाने लगा, रेलवे प्रशासन के खिलाफ एक संक्षिप्त पर मार्मिक भाषण भी दिया ।

यह एक मामूली-सी घटना है । पिछले साल राजनीतिशास्त्र मे एम ए करके, निठल्ले बैठने से यल यल बी होना भला, यह मानकर कानून की डिग्री के लिए एक स्थानीय कालेज मे नाम लिखा चुकने के बाद इस अधबने मकान के मालिक का मुशी बनने तक मेरा गड्ढ, जिसका कि नाम जिन्दगी है, इस तरह की सैकडो मामूली घटनाओ से भरा पड़ा है ।

मैंने कहा, "मेमसाहब, घबराओ नही । लुटेरो का पता मैं लगाऊँगा ।"

"रुपिया भी लौट आवेगा ?"

"वह अब क्या लौटेगा, पर कम-से-कम उत्तर प्रदेश मे दुबारा तुम्हारे साथ ऐसा सुलूक नही होगा ।" कहते ही मैंने अपने शरीर को डाइरेक्टर जनरल आफ पुलिस, उत्तर प्रदेश की चुस्त-दुरुस्त वर्दी मे सजा हुआ पाया । बिना आँख मूँदे ही मैं अपने खयाली सिनेमा की वह रील देखने लगा जिसमे मेरे इशारे पर निगोहाँ थाने की मुस्तैद पुलिस हरचरन और उसके साथियो को पेड की डाल से चमगादड-जैसा लटकाकर उनसे रेल डकैती का पूरा ब्यौरा उगलवा रही है ।

2

मोटर रुकने पर परमात्मा जी तुरंत नीचे नही उतरे; खिडकी के शीशे चढ़ाए, नाक सिकोडे थोडी देर अदर ही बैठे रहे । श्यामवर्ण ठिगनी काया, उस पर उम्दा सफरी सूट, मत्थे पर रोली की बिंदी । गाडी के शीशे हल्के रगीन थे, अदर कार के गद्दे गहरे नीले रग के । गाडी के रुकते-रुकते बालू, चूना, सुर्खी, धूल आदि का जो बवडर-सा उठा, उसकी झिलमिल से कार के भीतर बढ़िया टेक्निकलर सनीमा-जैसा झलका । जो धूल दाएँ-बाएँ, ऊपर-नीचे उडी थी, धीरे-धीरे अपनी पुरानी जगह और हम लोगो के कपडो और चेहरो पर आकर बैठ गई । तब ड्राइवर ने दरवाजा खोला । परमात्मा जी ने उतरते ही पूछा, "बढई का क्या हुआ ?"

"आज भी नही आया ।"

"उसके घर पर पता लगवाया ?"

"मैं खुद कल दो बार गया था, आज सवेरे भी, किसी शादी मे गया है । कब लौटेगा किसी को पता नही ।"

"पेशगी कितना दिया था ?"

"तीन सौ सत्तर रुपए ।"

"तुम रहे पोगा ही । अब उसे भूल जाओ, किसी दूसरे का इतजाम करो । वह तीन सौ सत्तर भी भूल जाओ । पर तुम्हे क्या--तुम तो पहले से ही भूले हो ।"

मैंने ओठ बद करके उन्हे दाएँ-बाएँ फैलाया और आँखे सिकोडी । हम डेलीवाले ऐसे ही मुस्कुराते थे । कहा, "जीजा जी, ऐसा नही है । तीन सौ सत्तर की जगह पाँच सौ न वसूलूँ तो कहिएगा ।"

वे मेरे जीजा यानी मेरी बहन के पति परमेश्वर नहीं हैं, फिर भी मैं उन्हे जीजा जी कहता हूँ । उनको मेरे गाँववाले पडोसी की लडकी ब्याही है । थोडा फ्लैशबैक मारा जाए तो कहा जा सकता है कि उनका ब्याह उस लडकी से हुआ है जो बचपन मे मेरी दोस्त थी; कविता की रसभरी जबान मे सहचरी । हम खेत की मेडो पर और बागो मे साथ-साथ दौडे थे, खलियान मे पुवाल के ढेर मे कब्र बनाकर, अग-से-अंग मिलाकर, एक साथ दफन हुए थे, एक साथ बालो से तिनके झाडते हुए फरिश्तो की तरह ऊपर उठे

थे । बाद मे मेरी वह सचमुच की सहचरी बन सकती थी पर कुछ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक कारण इसके खिलाफ पड गए ।

सामाजिक कारण यह था और है कि हमारे गाँव-घर के लोग बहुत नजदीक के और जाने-बूझे घरो मे शादी-ब्याह करना नापसंद करते हैं । गाँव-घर का तरीका है कि लोग एक-दूसरे की अच्छाइयो पर कडी नजर रखते हैं, बुराइयो पर भी । अत जैसे ही आसपास किसी की किसी मे शादी का जिक्र उठा, वैसे ही पहला ऐतराज यह होता है कि लडके की बुवा किसी रामऔतार काछी से फँसी है और लडके की माँ का गला हमेशा फटे बाँस-जैसा भाँय-भाँय किया करता है । मेरे मामले मे दोनो बाते लागू थी । किसी रामऔतार काछी का कत्ल और मेरी बुवा का स्वर्गवास हो जाने पर भी ऐतराज अपनी जगह कायम है । आसपास के घरो में किसी का बाप गंजेडी है, किसी का भाई देसी तमचा बाँधकर चलता है, किसी के चाचा की देह पर सफेद दाग हैं । इसलिए इन सब घरो को खारिज करके किसी बिचौलिए की मार्फत बीस कोस दूर शहर के किसी अपरिचित खानदान मे पनपे किसी चुगी के अमीन को दामाद की हैसियत से तरजीह दी जाती है जिसका बाप भले ही वही चुगी का चपरासी हो पर जिसके मामा का चचेरा भाई यकीनन सेल्स टैक्स ऑफिसर होता है । शादी मजूर करने या न करने की, शादी में स्कूटर या गद्देदार पलँगो का जोडा या दोनो माँगने की जिम्मेदारी सेल्स टैक्स ऑफिसर साहब की होती है । उसके बाद लडकी उसी स्कूटर या पलँग के पीछे जले या मरे, इसके लिए कोई क्या कर सकता है ? सब अपना-अपना मुकद्दर लेकर पैदा होते हैं ।

आर्थिक कारण फिर फ्लेशबेक मे । लडकी के बाप पहले मेरे बाप-जैसे ही मामूली खेतिहर थे । अचानक उनके बडे लडके की दोस्ती कृषि विभाग से हो गई । तब जो गेहूँ हमारे घर से सरकारी खरीद मे मिट्टी-मोल बिकता था वही उसके घर से उन्नतिशील बीज बनकर दुगुनी-तिगुनी कीमत पर उसी सरकार मे बिकने लगा । उसके मुनाफे मे उन्नतिशील बीज के साथ ही उसने शीशम, पाकड, नीम आदि की कमखर्च-बालानशी नर्सरी लगाई और उसकी पौध को दो-तीन साल बिकास खड को वनमहोत्सव के लिए थोक ढग से बेचा । फिर उसके मुनाफे से उसने गन्ने का अनुमोदित बीज उगाना शुरू किया । उसे चीनी मिल के क्षेत्र मे गन्ना किसान सहकारी समिति की मार्फत ताबडतोड बेचा । इसके बाद उसने गाँव से मिली हुई पक्की सडक के किनारे पी डब्लू डी की जमीन पर पाँच पक्की दुकाने बनवानी शुरू की, पी डब्लू डी वाले उन्हे गिराने पर आमादा हुए तो मुंसिफ के कोर्ट से स्थगन आदेश लाकर पहले उसने उन्हे खिझाया, फिर कुछ ले-देकर उन्हे रिझाया और दुकाने बनाकर किराए पर उठा दी । अब दो ट्रके और एक मिनी बस भी खरीद ली है । हमारे भूतपूर्व खेतिहर पडोसी ज्यादातर कहते रहते थे, और अब भी कहते हैं कि मेहनत से क्या नही हो सकता । मैंने उनसे जिस दिन कहा था 'और घूस से भी,' उस दिन हमारे घर के खिलाफ एक और ऐतराज जुड गया । उन दिनो लडकी की शादी की बातचीत

परमात्मा जी से चल रही थी, उसमे कुछ और सरगर्मी आ गई ।

अब राजनीतिक कारण परमात्मा जी हमारे गाँव से दस-बारह मील की दूरी के एक गाँव के आदिम निवासी थे, छोटे-मोटे भूतपूर्व जमींदार । रहते शहर मे थे और वकालत करते थे । देश मे आपातकाल जाने के बाद जब जनता पार्टी का शासन आया और पुरानी प्रधानमत्री इंदिरा गाँधी का कनकौवा कटा तब अचानक उन्होंने ऐलान कर दिया कि वे 'इंद्रा जी' के हाथ मजबूत करेगे । यही नही, तीन साल बाद जब इंदिरा जी के नूरेचश्म लखनऊ होते हुए अपने चुनाव क्षेत्र मे जाने लगे तो हमारे गाँव के पास सडक पर दो फाटक नवाने की जिम्मेदारी परमात्मा जी पर आ गई । तभी हमने उन्हे एक भूतपूर्व जमीदार, एक वकील और एक होते-होते-न-हो-पानेवाले नेता के रूप मे जाना । अभी ढाई साल हुए, उनकी पहली पत्नी जैसे ही मरी, बिचौलिए उनकी शादी का ज़िक्र उस लडकी के लिए करने लगे जो बचपन मे पुवाल के ढेर मे सोने की शौकीन थी और अब इधर सडक पर बनता हुआ फाटक छूने और उसके पास खडी ऐंबेसेडर गाडी को बार-बार देखने का शौक पाल चुकी थी ।

अब बचा मनोवैज्ञानिक कारण । वह यह है कि उस लडकी से शादी करने की मेरी खास तबीयत थी ही नही । मेरे घर मे उस खानदान के खिलाफ सबसे बडा ऐतराज यह था कि लडकी घमडी है और उसका चाल-चलन भी कुछ ऐसा-वैसा ही है । उसके चाल-चलन के बारे मे अपने घर मे पहली बार यह वक्तव्य मैंने ही दिया था । अब हम लोग इस बात से बहुत खुश थे कि उठाईगीरी करके हमारे पडोसी भले ही रईस हो गए हो, अपनी लडकी के लिए उन्हे यह बूढा खबीस ही मिला ।

वैसे, लडकी बहुत खुश थी । शादी के बाद वह अपने हर तीसरे जुम्ले मे अपनी मोटर का जिक्र करती, परमात्मा जी के लिए कहती, 'बडे हुक्मी हैं,' यानी उसका हर हुक्म मानते हैं । सबूत के तौर पर उसने मेरा परिचय परमात्मा जी से करा दिया था और बाद मे मुझे उनके काम मे लगवा भी दिया था । परमात्मा जी को सतोष था कि उन्होने एक बेरोजगार नौजवान की मदद की है । मुझे सतोष था कि उनके मकान के चौपट होते हुए काम को मैंने कायदे से सँभाल लिया है । हम दोनो ही अलग-अलग मौको पर, जो कोई भी सुनने को मिल जाए उसे अपने-अपने सतोष की बात सुनाया करते थे ।

गाँव के झगडे-फसाद मे जब लोगो ने परमात्मा जी की खटिया खड़ी करनी शुरू कर दी तो वे शहर से आकर रहने लगे थे । यह शादी के पहले की बात है । शौकिया वकालत भी शुरू कर दी थी जो सडक पर स्वागतम्वाले फाटक बनवाने के दिनो से और भी अच्छी चल निकली थी । अब हर साल वे गाँव के कुछ खेत और बाग बेचते थे और शहर मे मकान बनवाते थे । तीन बन चुके थे, यह चौथा बन रहा था । पहली बीवी से तीन बच्चे थे, उन्हे उम्मीद थी कि दूसरी से चौथी सतान भी होगी ।

मैं कहता रहा

"लकडी का काम इस तिडीवाज वढ़ई से न सध पाएगा । आप, जीजा जी, सज्जन पुरुष हैं । उसने जैसा कहा, आपने मान लिया । यहाँ साइट पर खडे-खडे हम लोगो को जो पता रहता है वह आपको नही है । अव मानसिंह, मलखानसिंह-जैसे डकैत रायफल लेकर नही घूमते, इन नई कालोनियो में वढई, प्लवर, इलेक्ट्रिशियन के रूप मे औजारो का झोला लेकर चलते हैं । किसी का भरोसा नही ।"

"उसे लाए तो तुम्ही थे ।"

"मैं कव लाया था ? आपके आर्किटेक्ट ने आपको घपले में डाल दिया । जो भी हो, रुपिया तो मैं वढई के वाप से वसूल लूँगा । और आगे के लिए मैंने वंसल से वात कर ली है । निर्माण निगम मे लाखो का ठेका लेता है । उसका जैसा महीन काम कोई नहीं कर सकता । कभी जाकर वहाँ के मैनेजिंग डाइरेक्टर का कमरा देख आइए । तवीयत वाग-वाग हो जाएगी । कल उसे पकडकर कोठी पर लाऊँगा । वैसे वह छोटे-मोटे काम में हाथ नही डालता, पर आपके लिए ।"

"जो चाहो सो करो । मैं तो, क्या वताऊँ, इस मकान मे रो दिया । पहले भी कोठियाँ वनवाई हैं, पर तव सव काम अपने-आप फटाफट होता था । अव न जाने क्या हो गया है जमाने को !"

"अव लोगों की नीयत मे खोट आ गया है सरकार," कर्मयोग के अवतार वने हुए मिस्त्री ने आँख से दीवार की सीध नापते हुए दीवार ही से कहा ।

परमात्मा जी एक टुटही खटिया पर वैठ गए । खटिया मेरी थी, उन्ही के वैठने से टूटी थी । वोले, "इस तरह पार नही लगेगा । इसीलिए मैंने अव इस मकान का चार्ज इंजिनियर साहव को दे दिया है ।"

मिस्त्री ने ललककर कहा, "अपने इंजिनियर साहव ?"

परमात्मा जी ने ऊपर-नीचे सर हिलाया । मिस्त्री ने कन्नी तसले मे रख दी । वीडी निकालते हुए, काफी देर तक वातचीत की प्रस्तावना वनाते हुए वोले, "वडे रईस आदमी हैं, और वडे दवग—तभी तो सरकार पीछे पडी है ।"

परमात्मा जी ने यह चारा नही पकडा, मुझसे वोले, "यह लोहा इधर-उधर विखरा क्यो पडा है ? एक जगह इकट्ठा क्यों नही रखा देते ?"

मेरे दिमाग मे एक दवग इंजिनियर तना हुआ खडा था । इसलिए इस टटपुँजिया आलोचना का जवाव देना मेरे लिए जरूरी न था । पर अपने मन को सुस्थिर करने के लिए मैंने दूसरा दरवाजा खोला, कहा, "जीजा जी, विजली का ठेकेदार कह रहा था ।"

"अव भाई, यह सव इंजिनियर साहव को ही समझाना । तुम लोग जो तय करोगे ठीक ही होगा । अव जरा दिखा दो, इधर तीन दिन में क्या-क्या हुआ है ।"

'तुम लोग' से कुछ सुकून मिला, यानी अभी कुछ दिन मैं रोजगार-समाचार पढ़ने से वचा रहूँगा ।

आगे चलकर जो ड्राइगरूम होगा, जिसमे दीवारो पर टँगे हुए मेनका-विश्वमित्र, राम पंचायतन के पॉचो देवी-देवता मय हनुमान जी, गगाधर शकर, सदासहाय श्रीलक्ष्मी जी, मकबूल फिदा हुसेन की दुर्गा अर्थात इंदिरा जी और परमात्मा जी के पिता स्वर्गीय ब्रह्मा जी उर्फ श्री ब्रह्मस्वरूप फोटू के फ्रेम से रग-बिरगे गलीचो और मलाई-जैसे मुलायम सोफो का मुतवातिर मुआयना करेगे, जिसमे इंजिनियर साहब बैठकर अपने और सरकार के बीच चलनेवाले सॉप-नेवले के खेल का ऑखो देखा हाल बयान करेगे, जिसके पास आते वक्त नेता-जैसे जीव पचास गज पहले ही अपनी प्लास्टिकवाली चप्पल उतार देगे और दरवाजे से दो गज पहले ही मलेरिया के मरीज की मुद्रा मे धरती पर धम्म-से बैठ जाएँगे, उसी भावी ड्राइंगरूम के हाहाहूती कमरे मे गाइड की हैसियत से मुझे आगे करके परमात्मा जी ने धीर-गभीर चाल से प्रवेश किया । पीछे से मेमसाहब ने खिंची हुई आवाज मे, जैसे गुलेल से ढेला फेका गया हो, कहा, "अब काम क्या होगा साहब ? सारा बिलासपुरी लेबर घर चला गया है । यहॉ तीन मिस्त्री पर बस हम तीन मजूर बचे हैं । इन्हे जोतकर कितना काम करा लोगे ? तीन मिस्त्री पर छह मजूर चाहिए । सामने मिट्टी की भराई पर दो और । छह दो कितने हुए ?"

"आठ ।" नेता ने कहा । फिर सुनाने लगे

"हम लोग भी गॉव चले गए थे । सिर्फ एक मजूर बचा था । इसलिए आज दो मिस्त्री भी घर बैठे रहे । अब बचे "

मिस्त्री दो-तीन दिन से मौज कर रहे थे । मैं चाहे जितना हुसकाता, गरियार बैल की तरह चल ही नही रहे थे । हर आधे घटे बाद उन्हे चाय की तलब सताती, पास की दुकान से चाय लाने को वे नेता को भेज देते, तब तक काम रुका रहता और मिस्त्री बीडी पीते हुए मेमसाहब से बिलासपुर जिले के हालचाल पूछते रहते । कभी एक ठेकेदार के साथ वे माताटीला बॉध पर काम करने गए थे । चूँकि वह झाँसी जिले मे है और झाँसी यहॉ से बिलासपुर की जानिब है, इसलिए वे मेमसाहब से एक खास रिश्ता महसूस करते हुए बार-बार माताटीला का जिक्र करते और बुदेलखड की पहाडियो पर रेगनेवाले बिच्छुओ की खौफनाक कथाएँ सुनाते । हर दो घटे बाद गाँजे की चिलम सुलगती । इस मुफ्तखोरी पर मैं मिस्त्री से नाराज होता रहता और वे हमे घर के बुजुर्ग की तरह समझाते रहते, "मुसी जी, यह जो मकान का काम है न, यह बडे धीरज का काम है । तुम चाहो कि कनकौआ-जैसा सर्र से उडाकर इसे आसमान मे पहुँचा दे तो वैसा नही होता ।"

परमात्मा जी काम के धीमेपन की आलोचना करते और प्लास्टर के काम मे खुचड निकालते हुए मिस्त्री को हरामखोरी की हानियाँ समझाने लगे । नैतिकता के इस पहलू पर गौर न करके मिस्त्री ने उन्हे भी कनकौआ-जैसी सर्र से उड़ानेवाली उपमा समझाई । परमात्मा जी ने आवाज बदलकर कहा, "इस तरह कैसे चलेगा मिस्त्री ?"

"तो सरकार, हमे जवाब दे दिया जाए ।"

सन्नाटा । जिसे मैंने तोडा "अब ज्यादा बकवास न करो मिस्त्री । किससे बात कर रहे हो ? कुछ होश है ?"

"मालिक से बात कर रहा हूँ मुसी," कहकर मिस्त्री लद्द से फर्श पर बैठ गए, कन्नी को झन्न से एक ओर फेक दिया, दूसरी ओर मुँह करके, भावातिरेक मे डूबते-जैसे बोले, "मालिक को काम पसद नही तो उसे करने से क्या फायदा ।"

सॉस खीचकर परमात्मा जी ने एक शहतीर को देखना शुरू कर दिया । वह कुछ टेढी हो गई थी पर मैं जानता था कि वे इस वक्त मिस्त्री से कुछ न कहेगे । दुबारा, और पहली से कुछ ज्यादा गहरी सॉस खीचकर, उन्होने दो रुपए का नोट निकालकर नेता से कहा, "जाओ, आठ पान ले आओ–तबाकू अलग से ।"

मेमसाहब बाहर खडे-खडे बोली, "मैं न खाऊँगी । खाने से उबकाई आती है ?"

परमात्मा जी ने मेरी ओर सवालिया निगाह उठाई, बोले, "उबकाई आती है ? ऐसी बात है ?"

पान के संधिपत्र ने मिस्त्री को ठडा कर दिया था । जवाब उन्होने ही दिया, "गॅवार औरत है सरकार, इसी को जाहिल कहते हैं ।" परमात्मा जी ने उनकी तरफ देखा तो वे मुस्कुराए, बोले, "आप सही समझे ।" फिर धीरे- से कन्नी उठाकर फर्श खुरचने लगे ।

परमात्मा जी ने कहा, "अब उबकाई शुरू हो गई है तो मेमसाहब भी हाथ से गईं ।"

"नही सरकार, यह बिलासपुरी काठी है, अभी छह-सात महीने और चलेगी । मकान पूरा कराके ही जाएगी । क्यो ?"

"चपर-चपर बतियाना तुम्हे बहुत आता है मिस्त्री ।" कहकर मेमसाहब दूसरी ओर एक अधबने कमरे मे चली गई । परमात्मा जी बोले, "देखता हूँ कि ये लोग अपनी कोठरी से उठकर उस कमरे मे चूल्हा जलाने लगे हैं ।"

"कोठरी मे बडा ताप लगता है साहब !" मेमसाहब की आवाज आई ।

मिस्त्री ने कहा, "अभी तो सब अधबना पडा है । जब सरकार का पूजाघर वहाँ जगमगाएगा तब ये मेम-शेमसाहब क्या, मुसी जी तक नही घुस पाएँगे । अभी तो मजूर लोग जिधर जैसा चाहते हैं, वैसा करते हैं । जमाना ज्यादा रोक-टोक का नही है सरकार ।"

"तो क्या वहाँ टट्टी-पेशाब भी करने दिया जाए ।"

वैसा तो खुद मिस्त्री ही करते थे । इधर-उधर न जाकर वे पीछे ऑगन मे दीवार के पास नियमित रूप से दिन मे तीन बार जाते थे । मैं टोकता था तो बडी विनम्रता से सुन लेते थे । इस वक्त बोले, "गॅवार है साले, जाहिल । पर महीना-डेढ महीना की बात है । जहाँ कोठी तनकर तैयार हुई, कोई चिडिया तक मूत जाए तो कहिएगा ।"

नेता पान ले आए । मिस्त्री, नेता और फिर मुझको–इस क्रम से पान खिलाकर

परमात्मा जी ने खुद दो पान खाए । बोले, "देखो भाई मुझे तो भाईचारे से काम कराना अच्छा लगता है । हम लोग पुराने जमीदार रहे हैं । अपने हलवाहे को भी काका कहते थे । अकेले न चाय पीएँगे न पान खाएँगे ।"

"चाय तो पी नहीं मालिक," नेता बोले ।

परमात्मा जी ने दो का दूसरा नोट निकाला, कहा, "लो पी लेना ।"

"इससे क्या होगा मालिक ? तेरह सौ रुपया कल रेल मे धरा लिया लुटेरो ने । अब मालिक के हाथ लगाए बिना ।"

"कब ? कहाँ ? कैसे ? क्या हुआ ?" के जवाब मे मैंने पूरी घटना सुनाई । मेरे लिए यह ऑखो-देखा-हाल-जैसा था ।

परमात्मा जी ने कहा, "तब तो नेता को कुछ एडवास देना ही होगा ।"

मिस्त्री बोले, "पॉच सौ काफी होगे सरकार ।"

मैंने कहा, "इतना बहुत है । दो-तीन सौ तक ठीक रहेगा ।"

परमात्मा जी बोले, "तुम हो पोगा । इन्हे पचास रुपए दे दो । पॉच सौ पाना है तो मजूरी करके कमाएँ, जुआ खेलना बद करे ।"

जिन गुणो के कारण उनका नाम नेता पडा था, उन्हे प्रकट करते हुए नेता ने कहा, "पचास का तो मैं पान चबाकर दो दिन मे थूक देता हूँ । देना है तो पाँच सौ दे, कोई भीख थोडे ही मॉग रहा हूँ ।"

"तुम्हे साले कोई भीख भी नही देगा ।" मैंने तमककर कहा पर परमात्मा जी बोले, 'जाने दो ।' बात साठ पर टूटी । परमात्मा जी मुझे समझाने लगे, "उन दोनो मिस्त्रियो को भी कल से बुला लो । चार मजदूर भी कल बाजार से पकड लाओ । काम फटाफट होना चाहिए ।"

"हमारे साथ यहाँ का मजदूर नही चल पाएगा सरकार ! बिहारी लेबर तक रो देता है । काम तो बस बिलासपुरी करता है ।" मिस्त्री बैलो की नस्ल जैसी बयान करने लगे । परमात्मा जी ने अनसुना कर दिया ।

पर मोटर तक आते-आते मिस्त्री से उनकी एक और झडप हो गई । मिस्त्री ने उनके कान तक पहुँचकर, पर मुझे सुनाते हुए कहा, "उजरत बहुत कम है सरकार । कही भी रेट पूछ लीजिए । अँधेरा हो जाने तक हम लोग काम करते हैं । कम-से-कम चार रुपिया बढना चाहिए ।"

परमात्मा जी बमक पडे, "तुम मुझे पोगा समझते हो ?"

"ऐसी बात न कहे सरकार । मैं सरकार की तीन पीढ़ी को जानता हूँ । बाप रे बाप । इतना जालिम खानदान रहा है । पेशाब मे चिराग जलता था ।"

परमात्मा जी कडाई से बोले, "मैं भी कुछ कम जालिम नहीं हूँ । क्या समझे ? भाईचारे से बात करता हूँ तभी तुम लोग बेवकूफ बनाने की कोशिश करते हो ? क्या मैंने वह ड्राइगरूमवाली बीम देखी नही है'? तिरछी करके धर दिया है । क्या समझे ?

'ऊपर से मजदूरी बढवाने की बात करते हो ।"

मिस्त्री चुप रहे । परमात्मा जी बमकते रहे, "एक मिस्त्री ने जरा दीवार टेढी कर दी थी । हमारे बाबा ने उसकी उँगलियाँ कटवा दी ।"

अब मिस्त्री भी अकडकर बोले, "हमारी आप गर्दन काट ले सरकार । पर काम मे कोई खोट नही निकाल सकता ।"

परमात्मा जी तमतमाए हुए मोटर मे बैठ गए । उँगलियाँ कटवाने का हुक्म-सा देते हुए बोले, "कितना मिल रहा है ?"

मैंने कहा, "इक्कीस रुपिया रोज ।"

"एक रुपिया बढ़ा दो । मजदूरो को पचास पैसा ।" कहकर उन्होने अपने पर काबू पाने के लिए गहरी साँस ली ।

मिस्त्री लोग तेईस-चौबीस रुपए रोज पाते थे । पर मुझे पता था कि अपने मिस्त्री उससे कम पाकर भी यहाँ क्यों टिके हैं । जो भी हो, धन्यवाद देने का अपना निजी तरीका अपनाते हुए मिस्त्री रूखे मुँह से बोले, "आप से कुछ कहे भी तो क्या कहे । यह भी न दीजिए । आया हूँ तो कोठी बनाकर ही जाऊँगा ।"

परमात्मा जी की गाडी चलने को हुई । उन्होने कहा "तम लोग समझते नही हो । मैं दूसरो-जैसा नही हूँ । जालिम जरूर हूँ पर मझमे एक अच्छाई है । मैं गरीबो का पेट नही काटता ।"

उनकी मोटर के पीछे उडी धूल काफी ऊँचाई तक गई । उसी वक्त जो कभी जगमगाता हुआ पूजाघर होगा, उस कमरे से मेमसाहब के चूल्हे का कसैला धुआँ खिडकी की राह हवा मे तैरता हुआ निकला और सामने के पेड की फुनगी पर धूल से बात करने लगा ।

इमारत मे मोजेइक का फर्श डाला जा चुका था पर अभी उसकी कटाई नही हुई थी । जब कटाई, रगडाई, घिसाई के बाद इस पर पॉलिश हो जाएगी तब यह किसी सुपरस्टार के चेहरे-जैसा झलझलाने लगेगा । पर अभी यह खुरदरा था और इस पर हवा और धूल की इतनी लताड पड रही थी कि लगता था, इसे सूअर की लीद से लीपा गया है । इस वक्त यह एक रईस की कोठी का जगमग फर्श नही था, चुनाव सभाओ मे लतिआया जानेवाला जाहिल उम्मीदवार था जो कुछ ही दिनो मे चार-चार एअरकडिशनरोवाले कमरे मे मिनिस्टर की कुर्सी पर बैठेगा और चापलूस अखबारनवीसो को बरदत की पगति दिखाता हुआ अललटप इटरव्यू देगा । बारह साल मे घूरे के भी दिन पलटते हैं । पर यह घूरा मुकद्दर का सिकदर था, इसके दिन तीन-चार महीने मे ही पलटनेवाले थे ।

ऐसे विचारो मे विचरता हुआ मैं जब खटिया से उठा तो सूरज निकलने को हो रहा था । सामने बिखरे हुए बीडी के टुकडो को चप्पल के तल्ले से दूर करके मैं

जीवन-सग्राम मे उतरा । बाहर आकर इधर-उधर नजर दौडाई । हमारे दाईं ओर दो-तीन प्लाट खाली पडे थे जिनमे गुजरती बसत ऋतु के असर से कुकरौंधा, करुआ, भटकटैया और अडूसे के पौधे लहलहा उठे थे । पर कोई भी दो बित्ते से बडा नही था । कही-कही कौडिल्ला भी फैला था जिसके सफेद फूल दूर से ही चमकते थे । कौडिल्ला की ठडाई गर्मी मे बडी हुनरमंद साबित होती है, पर इन प्लाटो का कौडिल्ला छूने लायक न था । कम-से-कम दो दर्जन लोग इन प्लाटो पर पौधो की झूठमूठ आड लेकर रोज सुलभ शौचालय करते थे और उधर देखते ही दूसरी ओर देखना पडता था । इस वक्त भी मुझे एक प्लाट के दक्खिन-पच्छिम कोने की रिजर्व सीट पर लाल रग की मैली बुश्शर्ट लहराती दिखी । मैं समझ गया कि नेता अपनी जगह बैठे हुए हैं । तब मैंने मेमसाहब का हालचाल लेने के लिए दूसरी ओर निगाह दौडाई ।

मध्यप्रदेश के अलग-अलग इलाको से आनेवाले और बिलासपुरी के बिल्ले से पहचाने जानेवाले इन मजदूरो की बराबरी किससे की जाए ? मैंने मन-ही-मन सवाल किया तुम्ही बताओ मेमसाहब, तुम जो इस अधूरी इमारत के कोने से लगे बबे पर प्लास्टिक के पाइप से अपनी कचन-काया पर पानी की तेज धार गिरा रही हो, देह की एक-एक मासपेशी को, बगल और छाती और गले और गाल को रगड-रगडकर दिन-भर के लिए धूल, चूने, सुर्खी की झुरभुरी परतो के लिए तैयार कर रही हो । तुम, जो हँसली, हमेल, करधनी खनकाती हुई, उनके नीचे की त्वचा को सहला रही हो ताकि वहाँ साँवली लकीर न पड जाए, तुम, जो अपने सीधे मेरुदड को धनुष-जैसा तानकर, छातियो को होशियारी से ढकती हुई, गीली धोती को दाँतो से दबाकर सूखी धोती पहनने जा रही हो, तुम, जो सूखी धोती पहनते ही पीठ और बाँहो के ऊपर उसमे गीले धब्बे छोड रही हो, तुम, जो इस एम ए पासशुदा और यल यल बी पास करने की घिस-घिस मे फँसी कबाड़ ज़िंदगी को इतने सवेरे हर रोज सूर्योदय के साथ उभारती हो; तुम्ही बताओ मेमसाहब, तुम्हारी बराबरी कहाँ, किससे की जाए ?

किसी पद्माकर की नायिका से ? पर वह तो गए दिनो की मरी कविता के साथ ही गुजर गई । कभी रहा होगा जब वह किसी राजमहल के अत पुर मे, सगमरमरी चौक के बीचोबीच जडाऊ चौकी पर खडी होकर, अगो से रोशनी की कौंध छिटकाती हुई अपनी रत्नजडित हरी कचुकी उतार रही होगी, दासियाँ सेवा-टहल के लिए उसे घेरकर खडी होगी । वह उसी जडाऊ चौकी के साथ न जाने कब की गायब हो चुकी है ।

तब क्या ढोर-डागर से ? जिनके गिरोह मे तुम्ही नही, तुम्हारा नेता भी शामिल है । किसी भी खुली जगह मे सुलभ शौचालय कर लेना, कही भी कुछ भी खा लेना, जहाँ ठौर मिल जाए वही आँख मूँदकर पड रहना, जहाँ जिस कीमत पर जोत दिया जाए, वही, उसी कीमत पर, औरो के साथ जुत जाना ।

या शौकिया घूमनेवाले परमहसो से ? पेड की छाँह को अपना भवन मानना, दोनो हाथो की अँजुरी का बर्तन रखना, मुडी हुई बाँह का तकिया लगाना ?

या खुद भोले बाबा शकर से ? आसमान से भी ऊपर बसे हुए विश्वकर्मा जिनके ताबेदार हैं, जो अपने ठाठ-बाटवाले भक्तो के लिए सोने के सतमंजिले महल बनवाते हैं, जो खुद बर्फीले तूफानोवाले कैलास पर, जहाँ दूब का तिनका तक नही उगता, नगी चट्टानो पर पडे रहते हैं ।

इनमे से किसी से भी नही । क्योंकि कोई घर न होते हुए भी दुनिया की तुम सबसे अच्छी घरवाली हो, दिन-भर मशीन की तरह काम मे लगी रहती हो, उसी के साथ हँसती हो, गाती हो, माघ-पूस की ठिठुरन मे भी, सूरज जब कही अतल मे दुबका पडा होता है, प्लास्टिक के पाइप तक को तराश देनेवाली जलधारा से अपनी देह सीचती हो, जहाँ हमारी कोठी बन रही है उसी के पास ईंट के चट्टे से बनाए गए एक सुअरबाडे-जैसी घिरी जगह मे ईंटो से दबाई हुई काली-काली पालीथीन की चादर की छत के नीचे अपने नेता के साथ रहती हो, कभी सब्जी या दाल से, कभी प्याज से और ज्यादातर नमक से रोटी खाकर दिन मे हाथ के धक्के से पहाड गिराने का हौसला दिखाती हो, रात को सोने के पहले उन्ही हाथो से पूरी देह मे अडी का तेल मलकर, अपने नेता के हाथ-पैर दबाकर वही सो जाती हो । और आजकल उबकाई की याद करके पान तक खाते हुए डरती हो ।

अजीब थी मेरी हालत भी कि सबकुछ जानते हुए भी, अपने से कोफ्त होते हुए भी, मेरी चोर निगाह मेमसाहब का पीछा नही छोड रही थी । सवेरे-सवेरे, जब चैत का सूरज साफ-सुथरे आसमान मे उभरनेवाला था, मैं बिना मुँह-हाथ धोए अपने सबसे आरंभिक नित्यकर्म मे खामोशी से लगा था; वे किस तरकीब से, अपने खुलते हुए अंगो को एक बार भी खोले बिना, गीली धोती से सूखी धोती मे उतरकर आ रही हैं, इसी पर गौर कर रहा था ।

तभी वे सूखी धोती लपेटते-लपेटते 'अह्-अह्' करने लगी । बबे के पास वैसे ही बैठ गईं । जिस पक्के गड्ढे से मकान की तामीर के लिए पानी लिया जाता था, उसी के किनारे कै करने लगी । उनकी पीठ और कधे काँप रहे थे । मैं उनकी तरफ बढ़ा । दूसरी तरफ के प्लाट पर दो मजदूरिने अभी तक चुपचाप नहाती हुई खुले मैदान मे गीली साडी बदलने की वही सरकसी कला आजमा रही थी जिसके दौरान मेमसाहब 'अह्-अह्' के लिए मजबूर हो गई थी । उनमे एक चौदह-पद्रह साल की ठिगनी-सी बच्ची थी जो उसी तरह साडी लपेटे, उसकी काँछ खोसे हुए किसी तजुर्बेकार मजदूरिन का गुटका सस्करण लग रही थी । उसने पुकारकर मेमसाहब से और फिर शायद मेमसाहब ही के बारे में अपनी सीनियर से कुछ कहा । सीनियर तजुर्बे, बुजुर्गी और बहनापे की चाल चलकर मेमसाहब के पास आई और उनकी गर्दन पर हाथ फेरने लगी । थोडी देर मे मेमसाहब ने पाइप से बहता हुआ पानी सीधे मुँह मे लेकर कुल्ला किया और उसे थोडी देर आँख और गाल पर बहने दिया ।

मुझे पता नही चला कि मैं इसी बीच मेमसाहब के पास कब और कैसे पहुँच गया

था । बडे सरपरस्ताना अदाज मे उनसे पूछा, "क्या हुआ ?"

सीनियर महिला ने आँखे सिकोडकर और सडे दाँत दिखाकर मेरी ओर ऐतराज की निगाह से देखा । बया के उखडे हुए, खुक्ख घोसले-जैसे स्तनो को उसने ठीक से ढँकने की भी कोशिश न की । उसकी निगाह ने उसकी कुरूपता को तो दो सौ फीसदी ज्यादा कुरूप बनाया ही, खुद मेरी मौजूदगी को वहाँ चार सौ फीसदी ज्यादा कुरूप बना दिया । मैं अचकचाया खडा रहा । तब मेमसाहब ने अपनी लाल-लाल आँखे एक सेकड के लिए मेरी ओर घुमाई और हिकारत के साथ बिना मुँह खोले बोली, "ऊँह ।" मेरे पीछे मकान की साइट पर मिट्टी का ढेर, लकड़ी के कुदे और लोहे की सरिया पडी थी जिन पर मजदूर लोग बेहिचक तबाकू की पीक गिराया करते थे । उस एक 'ऊँह' से इस सामान की सूची मे मैं भी शामिल हो गया ।

नेता की लाल बुशशर्ट मेरे पीछे फरफराई । बोले, "यही हिलगे रहोगे मुसी जी ? निसातगज चलकर मजूर नही गिनाने हैं ?"

मैंने कहा, "तुम्हारी ही राह देख रहा हूँ । चार घटा तो तुम्हें टट्टी मे ही लगता है ।"

"मुंसी जी, देख रहे हो जनाना की तबैत ठीक नही है । तुम चले जाओ । हम रोटी ठोकेगा ।"

मेमसाहब की आवाज का झनाका तब तक लौट आया था । नेता से बोली, "चला जा । बडा आया जनाना की तबैतवाला ।"

मेमसाहब की आवाज के शब्दबाण पर बैठकर हम दोनो पद्रह मिनट मे मजदूर-मडी पहुँच गए । मजदूर-मंडी के बीचोबीच, जहाँ कबाडा साइकिलो का बेतरतीब फैलाव था, और ही-ही-ही-ही करते हुए फटीचरो का हुजूम था, चीकट झोलो से जहाँ कन्नियाँ और गुनिया बाहर झाँक रही थी, मैंने नेता को भेज दिया, कहा, "मैं तुम्हारी मेमसाहब के लिए दवा लेकर आता हूँ ।"

नेता खुश हुए, बोले, "वो तो ओक-बोक करके ठीक हो गई । दिन-भर काम करेगी, बिलकुल फिट हो जाएगी । अब काहे की दवाई ?" इस तरह वे अपने ढग से कृतज्ञता-प्रकाशन करके मज़दूर-मडी मे प्रवेश कर गए । मैं दवा खरीदने के लिए कमर कसकर नुक्कड पर एक दुकान की ओर बढा ।

अपने यहाँ बाजार मे सौदा-सुलफ करना कोई मामूली काम है ! सीधे-सादे आदमी को नौ साल का छोकरा तक बकरा बनाकर खभे से बाँध सकता है । दस पैसे की धनिया तक खरीदो तो कोई तुम्हारे हाथ मे सडी पत्तियो का गुच्छा पकडाकर चलता बनेगा । कुछ बोलो तो गाली-गलौज, छुरेबाजी तक की नौबत । राजनीतिशास्त्र मे पढ़ा है कि स्वतत्रता की कीमत अनवरत सतर्कता है । वही बात खरीदारी पर भी लागू है । पसगा मारनेवाले तराजू, नकली बाँट । सडियल माल और गुस्ताख दुकानदार । अनवरत सतर्कता, चुस्त-चौकन्ना दिमाग और एक चुटकी अकड—इसी नुस्खे के सहारे आप

बाजार जाकर बिना किसी खरोच के वापस आ सकते हैं । जो भी हो, पहले मैंने वही सब्जी की दुकान से दो नीबू खरीदे । कुँजडिन मोटी-तगडी और खनकदार आवाजवाली थी, पर यह सौदा बिना किसी झगडा-झंझट के निबट गया । फिर दवा की दुकान पर पहुँचा । वहाँ काउटर पर एक मरियल आदमी दवा बेचता हुआ किसी गाहक से रेजगारी को लेकर झिक-झिक कर रहा था, उसी के पीछे एक दूसरा आदमी कुर्सी पर बैठा हुआ एक बुजुर्ग की नब्ज टटोल रहा था । दुकान पर 'गुप्त रोगो का शर्तिया इलाज' वाला विज्ञापन, जिसमे एक तगडे मुछदर डॉक्टर की तस्वीर थी । नब्ज देखनेवाला डॉक्टर तगडा न था पर मुछदर जरूर था, गौर से देखने पर लगा कि जेसा भी हो, है वही ।

मैंने डॉक्टर को पुकारकर कहा, ''क्यो डॉक्टर साहब, गुप्त रोगो के अलावा खुले रोगो का भी इलाज है आपके पास ?''

ऐसी तहजीब अब इस शहर मे नही मिलती । डॉक्टर ने कहा, ''उधर से अदर आ जाइए । बोलिए, क्या तकलीफ है ?''

मैंने कहा, ''उबकाई की कोई दवा चाहिए ।''

डॉक्टर ने काउटरवाले मुर्दे से कहा, ''आपको एवोमिन दे दीजिए ।''

मैंने पॉच रुपए का नोट निकालकर काउटर पर रख दिया, चार टिकिया माँगी । जब वह आलमारी मे दवा खोजने लगा तो मैंने यूँ ही रौब मारकर कहा, ''असलीवाली देना । हम चूना-छाप दवाई लेनेवाले नही हैं ।''

मेरा यह वक्तव्य बहुत उचित और सामयिक साबित हुआ । उसने जो दवा निकाली थी उसे एक डिब्बे मे डाल दिया, दूसरे खाने से चार टिकियाँ निकालकर काउटर पर फेकते हुए कहा, ''रेजगारी निकालिए ।''

ज्यादा नही, कुल सात-आठ मिनट झगडा हुआ । यह कहकर कि रेजगारी नही है तो दवा मत लो, उसने टिकिया काउटर पर से हटाना चाहा, पर तब तक वे मेरे हाथ से होकर मेरी जेब मे जा चुकी थी । तब उसने फैल मचाई, मैंने रेजगारी की जमाखोरी का आरोप लगाकर पुलिस के छापे की धमकी दी । फिर उसने पाँच रुपए से दवा का दाम काटकर कुछ कूपन देने की बात उठाई, जवाब मे मैंने उसे एक गोल-गोल नीबू पकडाना चाहा, फिर उसने पॉच का नोट छोड देने और घटा-भर बाद आकर बाकी पैसे उठाने का सुझाव दिया जिस पर मैंने खुद घटा-भर बाद वापस आकर खुली रेजगारी मे दवा की कीमत चुकाने का वादा किया । अत मे पाँच रुपए का नोट तोडकर उसने बाकी पैसे वापस किए और दुकानदार को वाजिब ढग से आगाह करते हुए मैं मजदूर-मडी की ओर चला आया ।

मजदूर-मडी उस चौराहे का नाम था जहाँ आसपास के मजदूर साढे सात-आठ बजे तक इकट्ठा होते और उस दिन के लिए मजदूरी पाने का इतजार करते । इनमे उडीसा,

बिहार या मध्यप्रदेश के मज़दूर लगभग नही के बराबर होते थे क्योंकि वे ज़्यादातर ठेकेदारो के छोर से बँधे होते थे । यहाँ पर ज्यादातर छुट्टा मजदूर थे जिनकी हैसियत घटिया और साख दो कौडी की थी । कन्नी और बसूली लिए नकली, अधकचरे राजगीर, मोतियाबिंद भरी आँखोवाले रगाई-पुताई के उस्ताद, सवेरे से ही ताडी चढानेवाले कुछ शहरी निठल्ले—इनसे लेकर मलेरिया की मार झेलकर उठे हुए नौजवान खेतिहर, गाँव के भूस्वामियो और साहूकारो के डर से भागे हुए कर्जखोर तक—और पारंपरिक मजदूरो के घर के अपढ छोकरे । इन सबको रोजी की तलाश थी पर नियमित रोज़ी किसी फिल्म की शोख और लचीली नायिका का नाम था जिसकी ये सिर्फ दूर से तस्वीर-भर देख सकते थे । इन्हे काम पर लेने के लिए हम-जैसे तभी इधर जाते थे जब असली, ठेठ पेशेवर मजदूर सरदार कहे जानेवाले ठेकेदार रूपी गधे के सर से सीग बनकर एकदम गायब हो जाते थे । वैसे फसल-कटाई के बाद दो-चार रुपए की बरकत के लिए यहाँ कभी-कभी असली मजदूर भी आ जाते थे, और अपने झुड से कटे हुए इक्का-दुक्का बिलासपुरी भी ।

शहर के इन फ्रीलांस मजदूरो के बारे में मिस्त्री की राय बेहद खराब थी । उन्होने मुझे पहले ही समझाया था, "गदे नाले की ढलान पर बसे हुए उचक्को को मत गिना लाना मुसी जी । ये अपनी आधी कमाई चाय के गिलासो मे सुडक जाते हैं, तगडे हुए भी तो क्या—हाथी की लीद-जेसे हैं, न लीपने के, न पोतने के । और वे गाँववाले भगोडे ! वे भी किसी से कम नही । उनकी देह में इनके मुकाबले ज्यादा कस है, यह माना । पर हर घंटे मे तीन-तीन बार चिलम फूँकेगे, आपस मे ही-ही-खी-खी करेगे, घर-घर के किस्से बखानेगे और पूरा दिन यूँ ही खुक्ख कर देगे । ये दोनो ही एक-जैसे हैं । जैसे उदई वैसे भान, न इनके चुटिया, न उनके कान ।"

नेता को मैंने इस भीड मे एक बच्चा-मजदूर के पास खडा हुआ पाया । नेता जोर-जोर से बोल रहे थे । लडका हाथ के इशारे से, चेहरे को टेढा-मेढा बनाकर, उन्हे कुछ समझाने की कोशिश कर रहा था । नेता ने मुझसे कहा, "   बाप ने मारा ।"

वह चौदह-पद्रह साल का होगा । बडे-बडे बाल, तेल से चिकने और घुँघराले, चुचका हुआ पर मुलायम चेहरा, गेहुँआ रग, गाल कुछ भरे होते तो रामलीला मे राम बनाकर बैठालने लायक होता ।

वह एक हाफपैंट पहने था, जिसकी निचली सीवन से धागे निकलकर उसकी जाँघो पर झालर-जैसे फैल रहे थे । जो बुशशर्ट पहने था वह कीमती कपडे की थी, बडे फैशनेबुल काट से सिली थी, शायद किसी लबे-चौडे नौजवान की माडेलिंग के लिए सिलाई गई होगी। मगर उन कधो से उतरती-उतरती आज इन कधो पर हाथी की झूल-जैसी झूल रही थी, यकीनन किसी मालकिन द्वारा झाड़ू-पोछा करनेवाले को मालिक की उतरन का इनाम ।

मैं उसकी कमल ककडी-जैसी दुबली कलाई देखता रहा और उसकी इशारेबाजी

'सुनता' रहा । आँखो को जिस तकलीफ से सिकोडकर मुँह की टेढ़ी-मेढ़ी हरकत से 'गो-गो'-जैसी आवाज निकालकर वह नेता से कुछ कहना चाहता था वह तो मैं नही समझा, पर इतना समझ गया कि लडका गूँगा है पर पूरी तौर से बहरा नही है । कुछ देर तक नेता की बकवास और लडके की हरकतो मे मुझे मालूम हो गया कि नेता उसके बाप को पहले से जानते हैं । यह भी मालूम हुआ कि बच्चा-मजदूर छह महीने से चार-पाँच घरों मे झाड़ू-पोंछा का काम कर रहा था, डेढ़ सौ रुपया महीना पैदा कर लेता था । नेता ने मुझे जो बताया उससे यह पता भी चला कि लडके के बाप से उसका सिर्फ तीन-सूत्री रिश्ता था हर चार घटे बाद उसके लिए बीडी का बडल खरीदकर लाना, हर तीसरे दिन बाप के हाथो लात-जूता खाना और हर महीने की शुरुआत मे कमाई का एक-एक पैसा बाप के ही हाथो मे धर देना ।

कल रात, दूसरे सूत्र को कार्यान्वित करते हुए बाप ने पिटाई के साथ-साथ एक नया काम भी दिखाया था । उसने उसे मरे चूहे जैसा लटकाकर घर के बाहर फेक दिया था और सख्त हिदायत दी थी कि वह दुबारा घर के पास न दिखाई पडे ।

"घर कहाँ है ?" मैंने पूछा । मुझे अपने मन मे लडके के लिए कुछ कुस्स-फुस्स-जैसी होती जान पडी, सोचा कि अगर मैं रईस होता तो सबसे पहले इसकी कबीर बेदी मार्का बुशशर्ट उतरवाकर इसको एक अच्छी कमीज पहनाता, पर डेली पैसेंजरी में कमाए गए विवेक और व्यवहार का सहारा लेकर मैंने अपने चेहरे को सख्त बनाए रक्खा ।

नेता ने ही जवाब दिया । मालूम हुआ कि किसी अधबने घर की दीवार से सटे हुए ईंट के चट्टे पर पालीथीन की काली चादर तानकर जो चिरपरिचित सूअरबाड़ा बनाने का चलन है, यही कही वैसा ही उसका एक घर है । वाह रे जमूडे । (मैंने उसके गैरहाजिर बाप से बेआवाज बनकर कहा) यह तो अब है, अगर तेरे पास सचमुच ही कोई घर होता तो एक बडल बीडी के पीछे तूने लडके ही को फूँक दिया होता ।

नेता की च्य -च्य में खलल डालकर पहले हमने तीन मजदूर साथ ले चलने के लिए गिने । वे पास के ही गाँवों के थे, चिलम नही, बीडी पीनेवाले थे और कामकाजी दिखते थे । तब नेता ने कहा, "दस रुपए पर इसे भी गिन लो मुंसी ।"

मैंने चेहरा सख्त बनाए रक्खा, बोला, "अनाथालय उधर सआदतगज की तरफ है ।"

नेता बोले, "अच्छा, आठ दे देना । इसकी देह पर न जाओ मुसी । असली विलासपुरी है ।"

"नाम क्या है बे ?"

नेता ने कहा, "सुरेस।"

"असली नाम बताओ न । क्या नाम है ? रगीलाल कि सगीलाल ?"

नेता ने कहा, "काहे को उलझ रहे हो मुसी जी । सुरेस कहता हूँ तो सुरेस ही मान लो । चल रे सुरेस ।"

यूनानो-मिस्र-रोमा-जैसी गुलामो की हाट से हम बाहर आए । हम छह आदमियो के अटपटे गिरोह के कुछ दूर चलते ही अचानक नई शिक्षा-नीति और इक्कीसवी सदी की तैयारीवाला इलाका आ गया । दुकानो की कतारों की जगह छायादार सडक और उसके किनारे बने खुशहाल बँगले नज़र आए ।

मैंने नए मजदूरों के साथ अपने रिश्ते और हैसियत का ऐलान करने के लिए कहा, "स्पीड बढाए चलो साले ।" आवाज मे थोडा हल्कापन भी घोल दिया ताकि अगर कोई नया मज़दूर उसे गाली समझकर उखडने लगे तो उसे मैं मजाक कहकर बहला सकूँ ।

हम छह के बीच तीन साइकिले थी । एक का मडगार्ड नदारद, दूसरी मे ब्रेक लगाओ तो साइकिल सुवरिया-जैसी चिचिहाती, तीसरी मे रबर के पैडिल की जगह लकडी के टुकडे ठुँके हुए—यह मेरी साइकिल थी ।

3

अचानक मेरी हैसियत घट गई पर मेहनत उसी अनुपात मे नही घटी । परमात्मा जी ने काम मे तेजी लाने के लिए एक अग्रेजीदाँ गिरगिट को पकड लिया जो वास्तव मे इंजिनियर था और खासतौर से परमात्मा जी के लिए आला दर्जे की ठेकेदारी पर उतर आया था । मेमसाहब ने, जो नीबू की खटास और एवोमिन के टोटके के सहारे इन दिनो ओक-बोक से बची रही थी, एक दुर्लभ मुस्कान और उससे भी ज्यादा दुर्लभ कानाफूसी से मुझसे कहा, "मुसी जी, अब तुम्हे फुरसत-ही-फुरसत है । नहाती हुई जनाना लोगो को अब जी भरकर देखो ।"

अभी तक इस भवन-निर्माण-परियोजना का असली विभागाध्यक्ष मैं था, वैसे कहने को दो विभागाध्यक्ष थे । एक तो मैं सामान्य प्रशासन विभाग मेरा था । भडार नियत्रण, कार्मिक खड, वित्तीय प्रबध आदि के लगभग सारे अनुभाग मेरे नीचे थे । मेरे अधिकार और दायित्व बडे व्यापक और जटिल थे । मैं मुख्यालय का इचार्ज था और दौरा भी करता था । दौरे मे कभी नोवा-टीक बोर्ड की चमाचम दुकान पर फोकट का कैंपा कोला पीते हुए खरीददारी और कभी कैरियर पर सगमरमर की छर्रीवाली बोरी बाँधे हुए एक लटी हुई साइकिल पर मीलो किर्र-किर्र चलना तक शुमार था । दुकान पर गलत नट-बोल्ट लौटाने और पैसा वापस लेने की कोशिश मे तू-तडाक करना, पेशगी रुपिया हजम कर जानेवाले कारीगरो से वसूली करने के लिए खुले सडास और छुट्टा सुअरोवाली गलियो मे घूमना और कभी-कभी परमात्मा जी की मुख-शुद्धि के लिए कुत्ते की चाल जाकर और चौराहे पर पान-तबाकू खरीदने के बाद बिल्ली की चाल वापस आना भी दौरे मे शामिल था । जो भी हो, काम मे मजा आता था, घरेलू नौकरी थी । माना कि जो तनख्वाह थी वह किसी से बताने लायक न थी, पर यही क्या कम था कि डेली पैसेजरी की अलाय-बलाय से छुटकारा पाकर शहर के इस दलदल मे जहाँ बडे-बडे तीसमारखाँ धँसकर उभर नही पाते, मैं एक किनारे पुख्ता जगह पर अपना खूँटा मजबूती से गाड रहा था ।

दूसरे विभागाध्यक्ष एक आर्किटेक्ट थे जो निर्माण का सारा टेक्निकल काम देखते थे । उनकी टेक्निकल देख-रेख का मतलब था हर तीसरे दिन स्कूटर से मौके पर आना,

उसके किर्र-किर्रवाले हार्न का बटन तब तक दबाए रहना जब तक मिस्त्री और दूसरे नायब मिस्त्री उन्हें घेरकर खडे न हो जाएँ, फिर अधमॅंदी आँखो से अधबनी इमारत की ओर शायराना अदाज से ताकना और मेरी नाकारा मौजूदगी को नकारते हुए गर्दन को दूसरी ओर मोडकर मिस्त्री के साथ कुछ विचारो का आदान-प्रदान करना । मिस्त्री उनके साथ पहले भी काम कर चुके थे और उनके साथ वह आदान-प्रदान बहुत सक्षिप्त और तारवाली भाषा मे होता था । उनकी कोशिश होती थी कि मैं उनकी तकनीकी उत्कृष्टता के आगे अपनी निकृष्टता का बोध प्राप्त करूँ, मेरी कोशिश होती थी कि मैं इसे दो मजदूरो की बातचीत समझकर उन्हे वैसी ही हिकारत से देखूँ जो एक नए आई ए एस अफसर को किसी पुराने, घिसे-पिटे टेक्नोक्रेट के लिए दिखानी चाहिए ।

जो भी हो, अब यह सफरी सूट पहननेवाला, अपनी नई मोटर साइकिल की फट्फट् से हवा मे हथौडे की चोट पैदा करनेवाला नया अग्रेजीदाँ इंजिनियर-सही-ठेकेदार-बटा व्यवसायी हमारे बीच आ गया था । उससे पुराने प्रशासनिक ढाँचे के चूल हिल गए थे । आते ही उसने कई शाखाओ के पुराने लोगो की छुट्टी कर दी । वे मेहनत के नतीजे को देखे बिना मेहनत करनेवाले सीधे-सादे प्राणी थे । उनकी समझ मे रोटी का मतलब गेहूँ से बनी और आग पर सिकी एक टिक्की-भर था, उसकी खूबसूरती और नफासत और मुलायमियत आदि से उनका कोई सरोकार न था । ऐसे प्राणियो को हमारे इंजिनियर ने सलाह दी कि हमारी पसद का महीन काम तुम्हारे बूते का नही है । जाओ, उधर ठाकुरगज की तरफ तेली-तबोलियो के जो छोटे-छोटे घर बन रहे हैं, वहाँ तुम्हारी खपत हो जाएगी । यह बताकर कि ये काम कम करते हैं, मजदूरी ज्यादा लेते हैं, उन्होने कई पुराने मज़दूरो को चलता कर दिया और उन्ही-जैसे दूसरे बिलासपुरी मजदूरो को, जिनमे दो पुष्ट-दुष्ट देहवाली लडकियाँ भी थी, पुराने मजदूरो की लगभग दो-तिहाई मजदूरी पर लगा लिया । ये उन्ही के ईट-भट्ठे पर काम करनेवाले मजदूर थे जिन्हे सरकारी कानून मे कोई बँधुआ नही कह सकता था और, अपनी पसद की जगह छोडकर, इंजिनियर उर्फ ठेकेदार का कोई भी काम करने के लिए वे बिलकुल आजाद थे । मामूली मजदूरो के अलावा बिजली, पानी, सैनिटरी फिटिंग, बढईगिरी आदि के लिए भी उन्होने अलग-अलग ऊँचे दर्जे के उप-ठेकेदार तैनात कर दिए । इन उप-ठेकेदारो की निगाह मे सारी दुनिया एक विराट जगल थी जिसमे सिर्फ एक बबर शेर था—जो कि हमारा इंजिनियर था, बाकी हम सब खरगोश और लोमडी तक नही थे—सिर्फ कीडे-मकोडे और भुनगे थे ।

पुराने लोगो मे सिर्फ मिस्त्री, जिन्हे इंजिनियर साहब पहले से जानते थे और उनके एक नायब मिस्त्री, जिन्हे मिस्त्री साहब पहले से जानते थे और परमात्मा जी की सिफारिश पर नेता, मेमसाहब और सुरेस रोक लिए गए । मैं तो घर का आदमी था । इनके लिए यह शर्त रक्खी गई कि वे इजिनियर साहब के कानून के मुताबिक चलेगे, यानी मजदूरी कम लेगे, काम ज्यादा करेगे । इन सबको यह शर्त मजूर थी, पर

मेमसाहब ने अपनी भी एक शर्त रक्खी । परमात्मा जी, इंजिनियर और सारी कौरव-सभा के सामने उन्होने अपनी झनकदार आवाज मे कहा, "और सब कुछ करूँगी, ठेकेदार के कहने से भट्ठे पर न जाऊँगी ।"

नेता ने सत्ता पक्ष की चापलूसी करते हुए कहा, " तुझे भट्ठे पर कौन भेज रहा है ?"

"तू चुप रह । भट्ठे पर ये क्या-क्या करते हैं, तुझे कुछ पता है ?"

ईंट के भट्ठे अलग-थलग और बस्ती से दूर होते हैं, इसका मुझे पता है । नदी की धारा मे नाव पर नकली कुहासा पैदा करके पाराशर मुनि ने धीवर-कन्या के साथ क्या किया था, इसका भी पता है । इसलिए असली कुहासे मे, गड्ढो और खाइयों के बीच, कुश-कास के झाडो से ढके ईंट के भट्ठो मे क्या होता या हो सकता है, इसका पता लगाने के लिए लखनऊ विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग मे कोई रिसर्च प्रोजेक्ट चलाने की जरूरत नही है । भट्ठे के मालिक पैसेवाले होते हैं, उनके साथी-सघाती, जो मौका पाते ही रेलवे से कोयले के डिब्बे-के-डिब्बे चकमा देकर ट्रको पर ढो लाते हैं, सत विनोबा के चेले नही हैं, वे खराब कपडे पहनने, पर उम्दा खाना खाने और उससे भी बडे पैमाने के दूसरे ऐश करने के शौकीन होते हैं । उन्ही की देख-रेख मे भट्ठो का पचास फीसदी कारोबार चलता है, और मालिक उनके साथ "जियो और जीने दो" का बडा ही मानवीय व्यवहार करते हैं ।

फिर, भट्ठे के मालिक की चुटिया हमेशा सरकारी अमले के हाथ मे रहती है । इसलिए उन्हे भट्ठे के आसपास उसकी आवभगत का भी सरजाम रखना पडता है । मौसम अच्छा हो तो पिकनिक और तफरीह की वहाँ अच्छी जगह निकल सकती है । वहाँ शहर के खुशमिजाज अदना अफसरो की, देहाती आबोहवा के मुताबिक, उम्दा खातिरदारी की जा सकती है । तफरीह मे पुष्ट-दुष्ट देहो की जरूरत भी पड सकती है ।

यह मैं जानता था और हूँ, पर नेता अनजान बने रहे । इंजिनियर ने परमात्मा जी से कहा, "बेहूदा औरत है ।" परमात्मा जी ने मुंसिफाना ढग से समझाया, "सिर्फ जबान की तेज है, दिल बडा मुलायम है ।" इंजिनियर साहब बोले, "मेरे हिस्से मे तो इसकी जबान ही पडी है । दिल की आप जाने ।"

मेमसाहब का दिल ही मुलायम नही था, उनमे और भी बहुत कुछ था । उनकी आँखे बडी-बडी और बेझिझक थी, भौंहे बिलकुल वैसी, जैसी फैशनेबुल लडकियाँ बडी मेहनत से बाल प्लक करके और पेंसिल की मदद लेकर तैयार करती हैं । रग गोरा, गाल देखने मे चिकने—छूने मे न जाने और कितने चिकने होगे, कद औसत से ऊँचा, पीठ तनी हुई, और दाँत—जो मुझे खासतौर से अच्छे लगते—उजले और सुडौल । उनके बाल कुछ भूरे थे । मेमसाहब की उपाधि उन्हे अपनी बातचीत के हाकिमाना अदाज से नही, गोरे चेहरे और इन लबे-घने-भूरे बालो के कारण मिली थी ।

मैंने कहा, "तुम यही काम करोगी । भट्ठे मे झोकने के लिए इंजिनियर साहब को

दूसरी कबूतरियाँ मिल जाएँगी ।"

जवाब मे इंजिनियर ने मुझे बाज की तरह देखा । पर मेरा विरोध किसी ने नही किया ।

परमात्मा जी ने सबके लिए चाय मँगाई थी । दो घूँट घटिया चाय के गिलास जब सबके हाथो मे पहुँच गए तो वे बोले, "हमारे इंजिनियर साहब डिसिप्लिन के बडे पक्के हैं । चाय आने के पहले ही खिसक लिए । वे लेबर-शेबर के साथ चाय नही पीते ।"

ड्राइवर को पुकारकर उन्होंने कहा, "वहाँ गाडी मे बिस्कुट का डिब्बा रक्खा होगा । सबको दो-दो बिस्कुट दे दो ।"

मुझसे बोले, "इजिनियर साहब देख ले तो कहेगे, हमारे मजदूरो की आदत खराब कर रहे है ।"

पुष्ट-दुष्ट देहवाली एक लडकी अपनी पीठ हमारी तरफ किए हुए दीवाल से टिके खिडकी के फ्रेम से चिपकी हुई चाय सुडक रही थी । बिना मुडे हुए बोली, "वो इमरती देता है, बिस्कुट से क्या होगा ?"

"तो इमरती भी हो जाए जीजा जी ।" मैंने ललककर कहा । जीजा जी ने अनसुना कर दिया । गर्मी की धूल, धुध और शाम के साढे छह बजे खुले मैदान के चूल्हो से उठनेवाले धुएँ मे थके हुए मजदूर भी चुपचाप चाय-बिस्कुट मे रमे रहे । इमरती का उपहार पानेवाली लडकी ने सिर घुमाकर कनखियो से परमात्मा जी की, और फिर मेरी ओर देखा । किसी पर भी बिजली नही गिरी । परमात्मा जी की बातचीत रूपी ताली एक हाथ से बजती रही, "अपना तो वही गाँववाला तरीका है । हलवाहे को भी काका कहते थे । सबके साथ उठना-बैठना, बडे को पालागन, छोटे को खुश रहो । पर इंजिनियर साहब की बात दूसरी है । वे अफसर आदमी हैं ।"

अब मिस्त्री का बोल फूटा, "आप लोग राजा-महाराजा रहे हैं सरकार । आपकी बात हाकिम लोगो मे थोडे ही आ सकती है ।"

"नही, ऐसा नही । पर अपने-अपने खानदान का चलन होता है । हमारे बाबा बडे जल्लाद किस्म के आदमी थे, पर उनका एक उसूल था, जहाँ तक हो, सबका भला करते चलो ।"

जल्लादी और गरीबपरवरी का एक ही अर्थ हो सकता है, इस आचार-शास्त्र के सिद्धात को काढानुमा चाय के घूँट के साथ मैं पचा भी न पाया था कि परमात्मा जी ने मुझसे पूछा, "बिस्कुट कैसा है ?"

मैंने सर हिलाकर दाद दी । वे बोले, "अरारूट का यह पतलावाला बिस्कुट अब बाजार मे नही आ रहा है ।"

मैंने कहा, "पर मजदूरो के लिए वे मोटेवाले बिस्कुट ठीक रहते हैं । दो मे ही डकार आ जाती है ।"

"डकार के लिए साले अपनी रोटी खाएँ । मुझे विस्कुट खिलाना होगा तो विस्कुट ही खिलाऊँगा । क्यो ?"

"क्यो" का जवाव किसी ने नही दिया, क्योंकि इस चाय-विस्कुट की गार्डेन पार्टी का राज सभी को मालूम था । सभी मजदूर जानते थे कि उन्हे आज रात दूसरी शिफ्ट मे जोतने की तैयारी हो रही है । इमरती खानेवाली साँवली लडकी को छोडकर जिसे असली ड्यूटी शायद रात को ही देनी पडती थी, कोई भी मजदूर अपने मन से गत को खटने के लिए तैयार न था । उसके साथ की दूसरी साँवली लडकी चाय की वात सुनते ही मुँह विदकाकर कही टरक गई थी ।

दरअस्ल, मकान, कोठी, बँगला—उसे कोई भी नाम दूँ— यानी परमात्मा जी के इस चौथे घर के, जो वजाहिर उनकी होनेवाली चौथी सतति की प्रत्याशा मे वनाया जा रहा था, दो हिस्से थे । आगे का हिस्सा लगभग पूरा हो गया था, पीछेवाले पर अव ऐसी तेजी से काम शुरू हो गया था जिसे सरकारी योजनाओ के चश्माधारी मरियल कारकुन तक "युद्ध-स्तर" कहते हैं । और यह काम हमारे नए ठेकेदार उर्फ इंजिनियर साहव चुस्ती से करवा रहे थे ।

"चुस्ती से" इसलिए कि चुस्ती ही उनका जीवनदर्शन जान पड़ती थी । वही उनका नाज, उनका अदाज, उनकी राजनीति और उनकी रणनीति थी । शक्लोसूरत मे चुस्ती, पोशाक मे चुस्ती, दिलोदिमाग मे चुस्ती, कोहनी के पास से छोटी उँगली तक कोई उनका हाथ जरा मजबूती से निचोड दे तो एक गिलास चुस्ती उससे चूकर निकल सकती थी । तभी वे मजदूरो को चुस्त रहने की हिदायत देकर अभी चले गए थे और आज की रात इमारत के दूसरे हिस्से मे सीमेट कांक्रीट की छत एक साथ डलवाने जा रहे थे । सीमेट, छर्री आदि को मिलाने के लिए मिक्सर आज दोपहर को ही आ गया था और पडोस की इमारत से तार खीचकर उसे विजली से चलाने का इतजाम भी हो चुका था ।

पहले इस काम के लिए मजदूरो का एक दूसरा जत्था आनेवाला था पर ऐसा नही हो पाया । वह इजिनियर साहव की ही एक इमारत मे चुस्ती दिखाने के लिए भेज दिया गया था । इसलिए दिन-भर काम किए मजदूरों को चुस्ती और चौकसी का चवेना चववाकर रात के काम के लिए तैयार किया जा रहा था । इंजिनियर साहव कह गए थे रात का वक्त होगा, बढिया ठडक रहेगी, छत पर अभी विजली नही है तो क्या हुआ, गैसे भिजवा रहा हूँ । दो घटे मे यह काम भी फटाफट कर डालो ।

परमात्माजी केजाने और दूसरी पाली का काम शुरू होने के बीच जो दो घटे की साफ हवा मिली उसने मुझे चारपाई पर चैन से लिटा दिया । फिर सचमुच ही वडी प्यारी हवा वही, उत्तर की ओर कुछ मटमैले वादल भी क्षितिज पर हिलते हुए दिखे । मैं खाट पर पीठ चिपकाकर अर्धचीकट तकिया पर खोपडी टिकाए हुए आराम से लेटा रहा, सपने देखने लगा ।

ये खुली आँखो के सपने हैं । वैसे इनका जो लुत्फ सीधी, लवी, निर्जन सडक पर आराम से साइकिल चलाते हुए है वह चारपाई पर पडे-पडे नही । इस आसन मे, जो शवासन का पडोसी है, ऐसा भी हो जाता है कि खुली आँखो से देखा जानेवाला मेरी अजीबोगरीव करामातो का सपना धीरे-धीरे सचमुच ही नीद मे घुल जाए या उन खिझानेवाले और कभी-कभी डरानेवाले सपनो के नीचे दब जाए जिनसे बचने के लिए मैं नीद को ही एक उबाऊ लाचारी मानने लगा हूँ । रास्ता चलते हुए, साइकिल पर हो या पैदल, खुली आँख के सपने के टूट जाने पर नीद के सपनोवाला खतरा नही है । वह टूट जाए तब भी बहुत कुछ बचा रहता है—सूनी सडक, या गाँव का हरा-भरा ऊवड-खाबड रास्ता और सबसे ऊपर, मैं खुद ।

मैं जानता हूँ कभी-कभी इन जागते हुए सपनो मे मैं सर हिलाता, आँखे मिचमिचाता, उँगलियाँ घुमाता या जोर-जोर से बात करता हुआ पाया जाता हूँ । बात भी कोई सहज भाषावाली नही; "पस्पेक ता बीन मा ने बस्सा, चोदेत ना के पुसीत"। यह वह भाषा है जिसमे मैं स्पैनिश या फेंच के विद्वान् की हैसियत से शहर की किसी थुकैली गली से निकलता हुआ सयुक्त राष्ट्र सघ की महासभा को सबोधित करने की मुद्रा मे बोल सकता हूँ । बोलता पाया भी गया हूँ और एकाध बार परिचितो ने टोककर पूछा भी है, "सत्ते भाई, यह किससे बात कर रहे हो ?" ऐसे मौके पर यह सच्चाई बताना मुश्किल है कि मैं सयुक्त राष्ट्र सघ की महासभा के सामने स्पेनी जबान मे भाषण दे रहा हूँ । कहना पडता है, एक नाटक का पार्ट याद कर रहा हूँ ।

इस समय जो घटना घटी या घटनेवाली थी उसका पहला दृश्य सीधा-सादा था । उसमे कोई उलझाव नही था, सिर्फ थोडी ढुशुम्-ढुशुम् थी । एक घना, लबा-चौडा बाग, उसके दूसरे छोर पर बजर जमीन, पलाश, कुश-कास का फैलाव, वहीं ईंटों के चट्टे हैं । पेडो के एक झुरमुट मे एक खूबसूरत झोपडी बना ली गई है । उसमे छह-सात शहराती आदमी दारू पी रहे हैं, कबाब खा रहे हैं । इंजिनियर साहब खुद नही पीते, दूसरो को पिला भर रहे हैं । मेमसाहव का प्रवेश, उसके पीछे ठिगने कद और वडी-वडी मूँछोवाला वही आदमी है जो हमेशा इंजिनियर साहब के साथ रहता है । हाथ मे कार्बाइन । मेमसाहब आते ही चीखकर कहती हैं 'यह मुझे यहाँ धोखा देकर लाया है । मैंने पहले ही कहा था, भट्ठे पर न जाऊँगी ।' लोग हँसते हैं । वे पलटकर वाहर निकलना चाहती हैं । पर कार्बाइनवाला आदमी अपने फौलादी हाथ से उनकी कलाई जकड लेता है । गौर कीजिए फौलादी हाथ । यही कहा जाता है न ? खीच-तान, द्रौपदी-चीर-हरण का शुरुआती दौर ।

अब, इस सब मे मैं कहाँ हूँ ? यही तो सपने का रहस्य है । कही नही और सब कही हूँ । अचानक, तूफान की तरह, मैं झोपडी मे घुसता हूँ । आज मुझे मुक्केबाजी और भारतीय कुश्ती के दाँवपेच नही दिखाने हैं । यह जूडो और कराटे का दिन है । मैं काफी देर ढुशुम्-ढुशुम् करता हूँ या अपने को ऐसा करते देखता रहता हूँ । थोडी देर मे ही

झोपडी के अदर हनुमान का लका-विध्वसवाला दृश्य झलकने लगता है । टूटे ग्लास और फूटी प्लेटे, औंधे पडे हुए लोग, कुछ कराहते हुए । इंजिनियर साहव नदारद । कार्बाइन का मालिक कोने मे, वेहोश । मेमसाहव मेरे कधे से टिकी हुई, आँखे मूँदे ।

एक सस्ता सिनेमाई दृश्य, जो मेरे पराक्रम और विजय के वावजूद तवीयत मे हरियाली नही उभारता । करवट वदलकर मैं थोडी देर मन को सुन्न करने की कोशिश करता हूँ । पर मन मे परमात्मा जी विराजमान हैं । उन्हे लेकर, खुली आँखो, जो सपना उभरकर आता है वह ज्यादा जानदार है ।

हाई कोर्ट मे मैं काला कोट पहने किसी हत्या के मामले मे वहस कर रहा हूँ । कहने की जरूरत नही, शहर के नामीगरामी वकीलो मे मेरी गिनती है । मैं वहस कर रहा हूँ ओर जज ही नही, कई सीनियर वकील भी पीछे की सीट पर वैठकर मेरी वहस वडे सम्मान और उत्सुकता के साथ सुन रहे हैं । कोर्ट से सीधे मैं कार द्वारा अपने वँगले पर आता हूँ । कार परमात्मा जी की ऐवैसेडर ही है, वँगला भी वही है जिसमे वे रहते हैं । शायद परमात्मा जी अव नही हैं । शायद मैं ही परमात्मा जी हूँ । उनकी वीवी सावित्री शायद मेरी ही वीवी है । पर ऐसा कैसे हो सकता है ?

सर को झटका देकर मैं चारपाई पर सीधा वैठ जाता हूँ । देखता हूँ कि परमात्मा जी की कार दुवारा हमारी ओर आ रही है ।

इस वृत्तात मे मैंने उन्हे एक जगह इंजिनियर-सही-ठेकदार-वटा-व्यवसायी कहा है । आगे की कथा सुनाने के पहले यही इसकी व्याख्या कर दी जाए । हम लोग अव तक इंजिनियर साहव के चमत्कारी जीवन-चरित की काफी जानकारी पा चुके थे । हमारे दिमागी आसमान मे उनकी सफलता का जेट विमान सुदूरतम ऊँचाइयो से भी ऊपर उड रहा था और उनके सफेद धुएँ की पूँछ हमारी खोपडी मे नीचे से ऊपर तक लवाकार हिलग रही थी । जिनसे हमे उनके जीवनवृत्त का कुछ पता मिला, उनमे पहले तो मिस्त्री ही थे जो कि उनके साथ टेढा जीवन नीच विचार लेकर भूतकाल मे कुछ अच्छे साल गुजार चुके थे । दूसरा सूत्र खुद परमात्मा जी थे जिन्होने उनके और उन्होने जिनके लिए कुछ वडे-वडे काम किए थे । तीसरा सूत्र कभी कभी हाथ मे आ जानेवाले दैनिक अखवार थे जिनमे, एक को छोडकर, सभी सरकार द्वारा उनके ऊपर ढाए गए जुल्मो की गाथा छापा करते थे । चौथा स्रोत एक ठिगने कद और चौडे जवडे वाला कुर्ता-पायजामा-अँगोछाधारी जवान था जो ज्यादातर इंजिनियर साहव की मोटर साइकिल की पिछली गद्दी पर वेठकर चलता था, उसके हाथ मे एक छोटा-सा हथियार भी होता था जिसे हमारे जैसे जानकार जानते थे कि इसका नाम कार्वाइन है । इस जवान का नाम पप्पी था । नाम के फिल्मीपन से हमे पूरा भरोसा था कि वह उसका स्कूलवाला नाम नही है, वैसे हमे यह भरोसा न था कि उसने कभी स्कूल देखा है ।

असली स्रोत खुद इंजिनियर साहब हो सकते थे पर उन्हे हम लोगो के बीच ज्यादा बोलने का शौक न था ।

वे सार्वजनिक निर्माण विभाग मे असिस्टेंट इंजिनियर थे । अब भी हैं । कुछ घूस-वूस ज्यादा ली, खैर, वह तो कोई खास बात नहीं, खास बात यह कि दो तीन मामलो में चुस्ती दिखाना भूल गए और सरकारी चपेट मे आ गए । कहा भी है, यानी यह खुद मैंने कहा है कि घपला करना या घूस लेना बुरा नहीं है, बुरा है उसकी चपेट मे आ जाना । इसी बुराई मे इंजिनियर साहब मुअत्तल कर दिए गए । पर एक घटे के भीतर ही वे अदालत से मुअत्तली के खिलाफ स्थगन आदेश ले आए । सम्मानित न्यायालयो को पहला और आखिरी पाठ यह याद करना होता है कि इसाफ किया ही न जाना चाहिए, ऐसा दिखना भी चाहिए कि जो हुआ है वह इसाफ ही हुआ है । यह याद रखते हुए और अखिल विश्व को इसकी याद दिलाते हुए सम्मानित अदालत ने निष्पक्ष भाव से यह भी व्यवस्था कर दी कि स्थगन आदेश के दौरान सरकार चाहे तो उनसे काम ले, न चाहे तो न ले । तदनुसार चोर चोरी कर रहा है और साह खटिया पर लेटा हुआ जाग रहा है । स्थगन आदेश मे साफ लिखा है कि उनसे काम लिया जाए या न लिया जाए, वे ड्यूटी पर शुमार किए जाएँगे और इस दौरान अपनी पूरी तनख्वाह के हकदार होगे । तब से अब तक चार साल, पाँच महीने, तेईस दिन बीत चुके हैं ।

मुकदमा बेशक पेचीदा है क्योंकि अब भी चल रहा है । सरकार ने तय किया था कि वह इजिनियर साहब को तनख्वाह भर देगी, उनसे काम न लेगी । उधर हमारे इंजिनियर जैसा जो भतीजा चाचा नेहरू की 'आराम हराम है' वाली ललकार पर बदन की नसे चटकाता हुआ उठ खडा है, उसे काम करने से कौन रोक सकता है ? इसलिए वे सरकार का नही तो अपना, और उसी के बहाने जनता का काम कर रहे हैं । आदत से वे काम करने के लिए अभिशप्त हैं । तभी वे तीन भट्ठे चला रहे हैं, एक ट्रासपोर्ट एजेंसी बनाकर ट्रके और टैक्सियाँ चलवा रहे हैं, बडे-बडे ठेके ले रहे हैं, चार-चार मंजिलवाले बाजार और दफ्तरो की इमारते बनवा रहे हैं, अब एक सिनेमा हाउस बनाने की योजना भी तैयार हो रही है ।

जब वे मुअत्तल नही हुए थे तभी, कृष्ण को बलराम बनाने, यानी काले पैसे को सफेद करने के लिए, उन्होने अपनी लगभग खूबसूरत बीवी के नाम से 'शुभकामना' नाम का ब्यूटी पार्लर कायम करा दिया था । उसमे वजन घटाने, छातियाँ मजबूत करने और कुल मिलाकर खूबसूरत बनने से लेकर 'योगा' का अभ्यास करने तक की व्यवस्था थी । उस इलाके की लडकियाँ, युवतियाँ और प्रौढाएँ शायद वजन घटाने और छातियाँ मजबूत करने आदि की ज्यादा इच्छुक नही थी, इसलिए उस ब्यूटी पार्लर मे ज्यादातर पूरे दिन उसकी मालिकिन ही अपना वजन घटाने आदि की क्रिया मे तल्लीन रहती थी और अपनी एक नौजवान सहायिका के वजन और उसकी छातियो के ठोसपन पर अपने को, सक्रिय तुलनात्मक प्रयोगो के आधार पर. ढालने की कोशिश करती रहती थी ।

पर इंजनियर साहब को अपनी बीवी की इन कोशिशों, उत्तेजनाओ और कुंठाओ से कोई खास सरोकार न था । उनका असली सरोकार उस आठ सौ रुपए की दैनिक आमदनी से था जो कमला, विमला, इला, विला, शीला, लीला, नीला आदि फर्जी अप्सराओ की गाहकी की मार्फत आती थी और जिस पर लगभग तीन लाख रुपया सालाना की रकम पर प्रतिष्ठान के जायज खर्चों का बाजाप्ता रिबेट लेकर और इन्कमटैक्स देकर घूस और कमीशन और चोरी और सीनाजोरीवाली आमदनी को, जिसका ख्वाब उन्होने शायद इंजिनियरी के पहले दर्जे से ही देखना शुरू किया था, कृष्ण से बलराम बनाया जा रहा था ।

बहरहाल, मुअत्तल होते-होते इंजिनियर साहब ने राज्य सतर्कता आयोग, सी बी आई , स्थानीय पुलिस, विभागीय भ्रष्टाचार विरोधी सगठन और स्थानीय लोकमत को अपने ठेंगे पर रखकर इतमीनान से रईस बनने के लिए काफी पैसा जोड लिया था, यह दूसरी बात है कि असिस्टेंट इंजिनियर की सामाजिक-आर्थिक हैसियत की दभी ईमानदारो मे फैली धारणा का आदर करते हुए वे अपनी टोयोटा ससुर के घर पर, फियट चचेरे भाई के यहाँ और एबैसेडर एक ठेकेदार के यहाँ रखते हुए खुद प्राय मोटर साइकिल पर चलते थे । पर उसका भी एक नक्शा था । ऐसे कितने मोटर साइकिल सवार होगे जिनके पीछे लबी मूँछोवाला अँगोछा-पायजामा-कुर्ताधारी आदमी कार्बाइन लेकर चलता है ?

उनकी मदद के लिए चार-पाँच वकीलो का एक पैनेल है जिसमे परमात्मा जी भी शामिल हैं । तभी, अपनी हैसियत के हिसाब से अदना काम होते हुए भी, परमात्मा जी की उलझन देखकर उन्होंने उनके मकान मे दिलचस्पी ली है । सरकार उनसे खीझी हुई है, इसलिए वे मजदूरो पर खीझे हुए हैं । पर सरकार उनसे जैसा सुलूक कर रही है उसका बिलकुल उल्टा सुलूक वे मजदूरो से कर रहे हैं । सरकार उन्हे तनख्वाह दे रही है, काम नही देती, तभी वे अपने आदमियो को सिर्फ काम देते हैं, तनख्वाह नही देते—या, कम-से-कम, कोशिश ऐसी ही करते हैं ।

परमात्मा जी आते ही बोले, "ये रुपए देना भूल गया था । मजदूरी के हिसाब मे डाल देना ।" कहकर उन्होने गिनकर एक हजार के नोट मुझे पकडा दिए । मैंने चारपाई खाली कर दी । कहा 'बैठिए जीजा जी ।' वे बैठ गए । बोले, "बैठने का टाइम नहीं है । जस्टिस बसल के यहाँ बैठ गया था । वही याद आया तुम्हे रुपए देने हैं । अब चलूँगा ।" पर वे बैठे रहे ।

अभी पौन घटा पहले परमात्मा जी की चाय, बिस्कुट और पूर्वजो के जुल्म की गौरव गाथा को मजदूर खामोशी से ले रहे थे और उनके 'क्यो' का परपरागत जवाब नही मिल रहा था । एक बार कहकर मिस्त्री ने दुबारा उनके राजामहाराजा होने का, या उनके पिता के बडा जाबिर या खूँख्वार जमीदार होने का जस नही गाया था । एक बार कहकर

मैंने भी उस वक्त उन्हे दुबारा जीजा जी का सबोधन नही दिया था, शायद इसी पौन घटा पुराने व्यवहार का बदला लेने के लिए उन्होने कहा, ''अब तक पॉच सौ तेईस बोरी सीमेट लग चुकी है । इंजिनियर साहब कहते थे कि सरकारी फार्मूला के हिसाब से अब तक के काम पर चार सौ से ज्यादा नही लगनी चाहिए ।''

''सरकारी फार्मूला तो यह है कि इतने मे चार सौ बोरी खर्च हो और उनमे से भी दो सौ उन्तालीस बोरी इंजिनियर साहब की सासद ाले मकान मे लगा दी जाएँ ।''

''फिर भी सीमेट कुछ ज्यादा ही लग रही है ?''

''कैसे ? आपको कैसे मालूम ? मकान तो मैं बनवा रहा हूँ ।''

जवाब मे परमात्मा जी मुझे गौर से देखते रहे, जैसे मैं सिनेमा के कोर्ट सीन मे खडा हुआ कोई झूठा गवाह हूँ जिसे वे वकील की पोशाक पहनकर अपनी बड़ी-बडी तीखी ऑखो से घूर रहे हो और उम्मीद कर रहे हो उनकी नुकीली चमक से सच का डठल पिघल जाएगा और सच मेरे गले से ऑवले की तरह उनकी हथेली पर चू पडेगा ।

पर मैं वह चीज नही हूँ । जानता था कि वे कहना चाहते हैं कि उनकी सीमेट मेरी साजिश से बिक रही है । इसीलिए जवाबी तर्ज मे मैं भी उन्हे घूरता रहा । बिला टिकट चलते हुए ट्रेन के टिकटचेकरो को न जाने कितनी बार मैंने इसी तरह घूरा है और उन्हे जेर किया है । थोडी देर मे पलक उन्ही की झपकी । बोले, ''किसी का भरोसा नही है ।''

मैंने सहमति मे सिर हिलाया । वे फिर बोले, ''सगा-से-सगा आदमी भी आजकल धोखा देने मे नही चूकता । जरा-सी ऑख झपकी नही कि कान का मैल तक निकाल लेगा ।''

मैंने कहा, ''क्यो जीजा जी''—इस वक्त उन्हे जीजा कहने मे हर्ज नही दिखा—''आप ऐसी बात इंजिनियर साहब के लिए तो नही कह सकते । इतना सच्चा, मेहनती, ईमानदार, काबिल नमूना आप इतने दिनो बाद खोजकर लाए हैं । वे आपको धोखा नही दे सकते, मैं भले ही ।''

''नही, नही, ऐसा नही । तुम दोनो मेरे लिए एक-से हो । वे मेरे मुअक्किल हैं, तुम मेरे ।''

इधर साल भर से मैं ऐसे शरीफ लोगो के बीच रह रहा था जो 'साला' तक को गाली समझते है । परमात्मा जी के आगे ज्यादा-से-ज्यादा पशु-पक्षियो के नाम को गाली बनाकर सुअर, गधा, उल्लू या कुत्ता का प्रयोग किया जा सकता था । पर 'उल्लू का पट्ठा' का प्रयोग असासदिक था । इस माहौल मे मुझे धोखा हो गया था कि मैं सारी पुरानी गालियाँ भूल चुका हूँ । पर इजिनियर साहब के साथ परमात्मा जी ने जैसे ही मेरी समानता की बात उठाई, मेरी-सारी बचपन की यादशुदा गालियाँ अपनी कैंचुल छोडकर फुफकारने लगी । बिना किसी खास आदमी का नाम लिए मैंने सैकडो गालियाँ दे डाली । और निश्चय ही, जैसे प्रधानमत्री के यह कहते ही कि कुछ देश हमारे देश की अखडता और जनतत्रीय मूल्यो को नष्ट करना चाहते हैं, हम समझ जाते हैं कि बात

पाकिस्तान या अमरीका की हो रही है, वैसे ही परमात्मा जी समझ गए कि मैं किसकी माँ-बहन को न्यौता दे रहा हूँ । वैसे मेरी बात का कुल मतलब इतना था   कोई मुझे चाहे जितना बुरा-भला कह ले पर, खबरदार, इस चोट्टे इंजिनियर के साथ मेरा नाम न लिया जाए । नही तो, हाँ   ।

परमात्मा जी उठकर खडे हो गए, बोले, "भाई, अपनी इज्जत अपने हाथ मे है । यहाँ और रुका रहा तो पता नही अपनी तोप का रुख कब उधर से मोडकर मेरी ओर कर दो । अब मैं चलता हूँ ।"

फिर अचानक हाकिमाना अदाज मे कहा, "देखो, गैसे आ गई हैं । जाओ, रात का काम शुरू करा दो । दो-तीन दिन मे बिजली का कनेक्शन भी मिल जाएगा । इंजिनियर साहब ने इतजाम कर दिया है । उसके लिए अब तुम्हे शिलिर-बिलिर करने की जरूरत नही है ।"

मिस्त्री और उनके साथ के दो नायब मिस्त्री इमारत के पिछवाडे काफी देर से रुके हुए थे । इतनी देर लघुशका नही चल सकती, यह सोचकर मुझे शका हुई कि वहाँ गाँजे की चिलम सुलग रही होगी । मजदूर सबेरे की ठोकी हुई रोटियाँ नमक, मिर्च और प्याज से खाने के लिए अपने-अपने दरबो मे चले गए थे । सिर्फ नेता सहन के एक कोने मे बैठे हुए लैया-चना चबा रहे थे । मैंने पूछा, "रोटी नही खा रहे हो ?"

"जनाना आज पडा हुआ है ।" इस सुदर खडी बोली के वाक्य का मतलब शायद यही हो कि मेमसाहब इस वक्त उससे नाराज हैं । पर मेमसाहब हैं कहाँ ? जानने के लिए मैंने दस मे से आकाश को छोडकर नौ दिशाओ मे निगाह दौड़ाई । जवाब के तौर पर बिजली के तार पर बैठी एक चिडिया ने किशमिशी आवाज मे 'किशमिश किशमिश'-जैसा एक तराना सुना दिया । नेता चबेना चबाकर, बबे का पानी पीकर, सडक की ओर टहल गए थे । मैं धीरे-से उठकर पडोस के खाली प्लाट पर लगे हुए ईटो के उस पाँच फुट ऊँचे चट्टे की तरफ बढा जिसके कोटर मे प्लास्टिक की धूल-भरी चादर के नीचे नेता की ख्वाबगाह थी । पर इस वक्त सारे ख्वाब मेरे थे ।

झिझक को शिष्टता मे बदलते हुए मैं बाकायदा खाँसता हुआ उस ख्वाबगाह मे घुसने को हुआ । उसी के साथ एक बकरी का बच्चा मेरी टाँग से टकराता हुआ बाहर निकला । भीतर ढिबरी जल रही थी जिससे बाहर का धुँधलका अँधेरे मे तबदील हुआ जा रहा था । अपने को छिपाने की कोशिश किए बिना मैं वहाँ कई मिनट खडा रहा । कुछ दूरी पर कुत्तो का एक गिरोह लगातार भूँक रहा था । उससे भी कुछ और आगे रामायण का कही अखड पाठ चल रहा था । फिर भी मेरे दिमाग मे सन्नाटा था ।

थोडा-सा झुककर, थोडा घुटनो को मोडकर, मैं बाअदब बामुलाहिजा अदर घुसा । सिर उठाने की गुजायश न थी क्योकि पूरी ऊँचाई पर उठते ही सिर टकराने का डर था । ढिबरी के धुआँधार धुँधलके मे मैंने मेमसाहब के लिए चारो ओर निगाह

दाडाइ । उन्ह छोडकर बाकी सबकुछ देखने को मिल गया ।

पत्थर के एक टूटे चौके पर दो-तीन मैली-कुचैली पोटलियाँ । एक कोने मे छितरा हुआ लगभग पाव भर प्याज । ब्रिटिश पेट का पाँच किलोवाला डिस्टेपर का एक डिब्बा, जिसमे शायद आटा हो । या क्या पता, चोरी का डिस्टेपर ही हो । मिट्टी के एक कुल्हड मे नमक के चद मटमैले डले । एक ईट पर रखी दो चीकट शीशियाँ, जिसमे कोई चिकनी चीज थी जिसे मैंने तजुर्बे से सरसो और अडी का तेल समझा । चट्टे की एक दीवार से सटा हुआ बिजली का एक तार अलगनी की तरह आर-पार बँधा था । उस पर अँगोछे जैसी लटकी एक हरी कमीज, एक धुली हुई कत्थई धोती, एक नीला ब्लाउज । दीवार की दो ईंटो के बीच ठूँसकर कील की तरह निकाली गई लोहे की छड पर टँगी हुई एक गिलट की करधनी । नीचे, पुवाल से ढके फर्श पर प्लास्टिक की चप्पलो का एक टूटा हुआ जोडा, जिसे चाहे घूरे पर दे मारो चाहे नेता की किस्मत पर –कोई फर्क नही पडेगा ।

फर्श के एक कोने से एक चुहिया ने सिर उठाया । ढिबरी की रोशनी उसके थूथन पर बूँद जैसी चमकी । उसी के बाद पुवाल के ऊपर एक कोने से दूसरे तक एक सर्राटेदार तीर छूटा । चुहिया दूसरे किनारे पर आकर जोर से उछली और दो ईटो के बीच छूटे हुए एक चौकोर सूराख मे घुस गई । ढीली-ढाली ईटो के उस पार खुली हवा थी, पर वहाँ भी गेहूँ का दाना न था ।

मेरा मन खराब हो रहा था । उसे बहलाने के लिए मैंने अखबार, रेडियो और टी वी. से रोज उगले जानेवाले मसखरेपन का सहारा लिया । यानी इस ढहती हुई बीसवी सदी मे मैं भी आगे का ख्वाब देखने लगा । सोचा, सर्राटा मारती हुई यह चुहिया ईंटो के उस पार बिना दाना-पानीवाली जमीन पर इसी रफ्तार से अगर बढती चली जाए तो यकीनन् पद्रह सेकेड मे इक्कीसवी सदी मे पहुँच जाएगी । इतनी प्रगति के बाद हम उसे चुहिया नही, मूषकी कहेगे ।

4

इमारत के इस कमरे मे—जो बाद मे परमात्मा जी का मास्टर बेडरूम होगा और जिसमे वी सी आर पर रोज रगीन सिनेमा देखा जाएगा—मेमसाहब ईट-पर-ईट रखकर आजकल रसोई राँधा करती थी । इस वक्त मैंने उन्हे यहाँ जमीन पर गुमसुम पडा पाया । उनके घुटनो मे अपनी एक दुबली-पतली टाँग फँसाए हुए गूँगा सुरेस भी पडा था । बाहर बरामदे मे जलती हुई गैस की रोशनी की एक पतली धार उन टाँगो के ऊपर से तिरछी निकल गई थी । कमरे मे घुप्प अँधेरा नही, धुँधलका था ।

उस तिरछी रोशनी के धुँधलके मे मेरी निगाह सबसे पहले सुरेस की कमलककडी जैसी कलाई पर पडी । कलाई मेमसाहब की कमर के उस हिस्से पर थी जिसके दक्खिन मे साडी और उत्तर मे कसा हुआ ब्लाउज होता है और बीच मे एक चिकनी कटावदार घाटी होती है । आजकल गाँवो मे शादियाँ-ही-शादियाँ हो रही थी जिनमे बजनेवाले रिकार्डों मे सबसे ज्यादा जाहिल और उससे भी ज्यादा मशहूर गाना था ''लौंडा तू है नसीबोवाला ।'' सुरेस के लेटने का यह नक्शा देखते ही यह गाना अचानक मेरे दिल मे पूरे वाल्यूम पर बज उठा । मैं मेमसाहब के पास जाकर धीरे-से पजो के बल बैठ गया और उनके भूगोल का मुआयना करने लगा ।

वैसे तो ये बैसाख के दिन थे पर वहाँ उकडूँ बैठकर मैं सावन का अधा हो गया, मुझे चारो ओर हरा-ही-हरा दीखने लगा । देखते हुए भी मुझे फर्श का मटमैलापन, उन दोनो के नीचे बिछी सीमेट की खाली, फटी हुई बोरियाँ, चारो ओर बिखरे हुए लोहे और लकडी के टुकडे, घरेलू सीवर लाइन के इस्तेमाल से बचे ट्यूब के टुकडे, छर्री के छोटे-छोटे ढेर, कुछ आडी-तिरछी पडी हुई बल्लियाँ—ये देखते हुए भी नही दीख पडी । द्रौपदी स्वयवर मे अर्जुन की निगाह जैसे कटोरे मे पडनेवाली मछली की छाया पर टिकी थी, उसी तरह मैं मेमसाहब की कमर से खेलती हुई उस कलाई की हड्डी को निहारता रहा । तब मुझे लगा कि वह कलाई, उससे जुडा हुआ छोटा-सा पजा, और उससे जुडी गठीली उँगलियाँ कमर से खेल नही रही हैं, उस पर सुरेस की उँगलियाँ बार-बार खुल-मुँद रही हैं, पजा छटपटा रहा है ।

उस पर मैंने धीरे-से अपना पजा रख दिया । पजे का एक हिस्सा सुरेस के पजे के रकबे के बाहर जाकर मेम साहब की कमर के कटाव को छूने लगा । उसी के साथ मैंने महसूस किया कि सुरेस के पजे और मेमसाहब की कमर—दोनो की गरमाहट मे बडा

फर्क है । सुरेस के पजे का ताप मेरी हथेली को झुलसा रहा था—उसे बहुत तेज बुखार था । उधर मेमसाहब की चिकनी त्वचा की गर्मी दूसरे ही पैमाने की थी । जो भी हो, डेली रेल यात्रा के पाँच-सात सालो के दौरान सार्वजनिक हेकडी और बेबुनियाद गुडागर्दी मे थोडी-बहुत दीक्षा पाने के बावजूद इस पहले झटके मे मुझे सुरेसवाली गर्मी ने ढेर कर दिया । सुरेस के चुचके चेहरे की ओर मेरी नजर घूमी, मेमसाहब फोकस से बाहर हो गईं ।

उधर मेमसाहब ने कुछ ऊँघती, कुछ कराहती आवाज मे कहा, "मिस्त्री, बोल दिया है । पीछे न पडो, नही तो उठकर तुम्हारी बसूली तुम्हारे मुँह मे ठूँस दूँगी ।"

इसमे खास नाराजगी नही थी, थकान थी । उनकी आवाज किसी बुढिया-जैसी थी जिसने छह महीने तक सग्रहणी झेली हो । मैंने हाथ नही हटाया, मुझे कुछ अज़ीब-अजीब-सा लगने लगा, जैसा पहले कभी नही लगा था । एक द्रव भरा गुब्बारा-जैसा मेरी छाती और गले के बीच फूलने लगा । मैंने कहा, "जसोदा, मैं हूँ ।" पहली बार उनका असली नाम मेरे मुँह से निकला ।

मेमसाहब ने जोर की साँस ली और कराहा । उसकी लहर उनकी कमर की घाटी तक फैलती जान पडी । फिर वह मेरी उँगलियो के पोर-पोर से चलकर मेरे फेफडो तक पहुँची जिससे वे भी वैसी ही गहरी साँस खीचने को शायद मजबूर हो गए । मेमसाहब का बेजान-सा हाथ उठकर मेरी उँगलियो पर गिरा, जड हो गया । कमर की घाटी मे इसानी हाथो की एक तिमंजिला इमारत बन गई । सुरेस का तपता हुआ, मेरा पसीजता हुआ, उसके ऊपर मेमसाहब का हाथ बेजान-सा, पर कही भीतर से चिनगारियाँ जैसी छोडता हुआ । कुछ देर मे ऊपरवाला हाथ उतना बेजान नही रहा, उसका दबाव मुझे महसूस हुआ । पर उत्तेजना के बजाय, न जाने क्यो और कैसे, उसने मुझमे यथार्थ का एहसास जगाया । मैंने पूछा, "सुरेस को बडा तेज बुखार है ? कब से ?"

मेमसाहब ने कुछ भी नही कहा, सिर्फ मेरा हाथ अपने जिस्म से दूर सरका दिया । मैंने फिर पूछा, "और तुम्हे क्या हुआ है ?"

"मर रही हूँ ।"

"तो मरो ।"

मैं उनके पास एक फटी बोरी पर बैठ गया । उकडूँ बैठे-बैठे मेरे पजो मे दर्द होने लगा था । पूछा, "यह मिस्त्री साला तुम्हे परेशान करता है ?"

"गँजेडी है ।"

कहानी का खलनायक कितनी आसानी से गँजेडी बनकर बच निकला ! अब कुल यही बचा था कि थोडा उचक्कापन दिखाकर, और उसी सिलसिले मे अपने और मेमसाहब के बीच भविष्य के रिश्तो का कच्चा खाका तैयार करके धीरे-से बाहर निकल जाऊँ । इधर-उधर टटोलकर मैंने उनके हाथ की उँगलियाँ पा ली, ढीली पकड से उन्हे थामे रहा । तटस्थ आवाज मे पूछता रहा, "बताती क्यो नही हो ? तुम्हे क्या तकलीफ है ?"

जरा भी नही जान पडा कि यह दिन भर फावडा चलानेवाली मजदूरनी की उँगलियाँ हैं । वे मुलायम और चिकनी थी । पोरो की हड्डियाँ उभरी न थी, जैसी कि मेरे बेहूदा हाथो की थी, मुझे उन उँगलियो का दवाव अपने हाथ मे महसूस हुआ, या शायद यह मेरा भ्रम ही हो, पर जव तक मैं अपने भ्रम के साथ ठीक से परिचित होऊँ, वे मेरी गिरफ्त से बाहर चली गई ।

अचानक मेमसाहव करवट बदलकर मुझसे दूर हट गई और सुरेस के उतना ही नजदीक आ गई । मैंने जव दुबारा पजा फैलाकर हारी हुई रियासत को हथियाना चाहा तो इस बार विपक्षी ने हमारा हमला किले की चहारदीवारी से बाहर ही रोक लिया । अब मुझे ख्याल आया कि मिजाजपुर्सी के बारे मे मेमसाहव ने मेरे सवाल का जवाव नही दिया है । मैंने अपना सवाल दोहराया ।

जवाव मिला "जाकर अपना काम देखो मुसी जी । काहे को मेरी दुर्गत कर रहे हो ?"

मैं खडा हो गया, जैसे कुछ हुआ ही न हो । और हुआ ही क्या था ? मैंने 'जसोदा' नामक मत्र का फिर से इस्तेमाल करते हुए कहा, "कही दर्द है ?"

"हाँ । पेट मे बडी पीर है ?"

"नेता से नही कहा ?"

"वह क्या करेगा ? कुछ समझता भी है ?" उस थकी हुई ऊँघती आवाज मे कुछ ऐसा था जिसने मुझे एक ही जगह दो आदमियो मे बदल दिया, एक मैं था, दूसरा नेता था । मैं ही जसोदा को यह अँधेरी पीर पहुँचा रहा था, मैं ही उसका झिडकी-भरा प्यार पा रहा था और उससे अलग खडा हुआ यह दूसरा मैं—सतोपकुमार उर्फ सत्ते महसूस कर रहा था कि यहाँ पर इस तरह खडा होना ऐसी असभ्यता है जो मेरी वरसो की पाली-पोसी असभ्यता तक को गवारा नही है ।

ऊपर छत पर कोई काम नही हो रहा था। जैसे बाढ आने पर सरकारी राहत का अभियान चल रहा हो, सिर्फ हो-हल्ला मचा हुआ था। इंजिनियर साहव ने, जो ऊँचे दर्जे की टेक्नालॉजी, प्रवधविज्ञान और देख-रेख की हवा बाँधी थी, वह मजदूरो के पुराने ढर्रे मे और बढते हुए शोरगुल मे टाँय-टाँय फिस् होती जा रही थी। सीमेट और पत्थर की छर्री आदि को सही अनुपात मे मिलानेवाली मशीन का अडाकार भडा मुर्दा गैंडे की तरह निश्चल खडा था और दो मजदूर फावडो की मदद से पुराने ढग से सहन मे सीमेट-कांक्रीट की घुलाई कर रहे थे। इक्कीसवी सदी की ओर जाते-जाते मिक्सर से लगा हुआ बिजली का तार अपनी जगह से कही खिसक गया था। उन्नीसवी सदी की लोकप्रिय टेक्नालॉजी फिर वापस लौटने लगी थी।

मिस्त्री गाँजे की गहनता मे कुछ ज्यादा ही गंभीर बन रहे थे, गैस के पास बैठे बीडी पी रहे थे। हवा तेजी से बहने लगी थी और उसमे डेढ महीना पहलेवाली ठडक आ गई

थी । नेता ने कहा, "गैसे भक्क-भक्क कर रही हैं । बादल उठ रहे हैं । काम कैसे होगा ?"

"इंजिनियर साहब से जाकर पूछ आओ ।"

"वे भट्ठे पर गए हैं" मिस्त्री ने कहा, "बडे आदमियो की बडी-बडी बाते । इस वक़्त मैं तो वहाँ जाऊँगा नहीं । नेता, तुम चले जाओ ।"

"मैं ही फालतू हूँ ? रास्तेवाला वह पीपल देखा है ? मैं न जाऊँगा । तुम्ही जाओ मिस्त्री, तुम हो मियाँ लोग—बरमराच्छस तुम्हारा क्या बिगाड लेगा ?"

मैंने उन्हे बकवास बद करने का आदेश दिया । कहा, "कही कोई बरमराच्छस नही है । जैसे पीपल वैसे बबूल । लपककर जाओ और लौटते मे चौराहेवाले डॉक्टर से मेमसाहब के लिए दवा भी लेते आओ । उनके पेट मे दर्द हो रहा है । सुरेस को भी बुखार है । एकाध टिकिया उसके लिए भी लेते आना ।"

नेता बोले, "कितनी बार कहा इससे कि नोन-पानी गरम करके पी ले । मानती ही नही ।"

"मिस्त्री, तुम तो छत पर जाओ न । यहाँ बैठकर क्या घुइयाँ छील रहे हो ?"

मेरे इस मुहाविरा-भरे सवाल का जवाब खुदाबद ताला ने दिया । हवा के झोंके के साथ ही पानी की बडी-बडी बूँदे हमारे सिर पर पडी । पहले ही रेले मे एक गैस भक्क-भक्क करके बुझ गई । नेता बोले, "राम नाम सत्त है ।" अब पानी धार बाँधकर आया । मजदूर छत से नीचे उतर आए । थोडी देर मे गैसे सामने के बडे कमरे मे सजा दी गईं । मजदूर मडली पोर्टिको मे बैठकर वर्षा-मगल मनाने लगी । मिस्त्री और नेता कमरे मे बैठकर बीडी पीने लगे । उन्ही के पास मैं अपनी खटिया पर बैठ गया, बोला, "यह बौछार निकल जाए तब जल्दी-जल्दी काम करा डालो मिस्त्री ।"

"कहाँ की बात कर रहे हो मुसी ? पत्थर पड रहा है । काम अब कल होगा—कल की भी कौन कहे, परसो ।"

सचमुच ही ओला पडने लगा था । मेमसाहब टाट की एक फटी बोरी सिर पर डाले, दूसरी पीठ पर ओढ़े, कमरे मे नमूँदार हुईं । नेता बोले, "नोन-पानी पिया था ?"

वे बिना जवाब दिए बरामदे की ओर बढी । मैंने कहा, "ओला पड रहा है । बाहर मत निकलना ।"

"वहाँ सब भीग रहा होगा ।" कहकर वे बारिश मे उतरी और जो चुहिया मुझे उनके दरबे मे दिखाई दी थी, उसी की तेजी से अपने ईंटोवाले चट्टे की ओर चली गई । वहाँ भीगने और बचाने लायक जो भी था, मेरा सब देखा हुआ था । फिर भी मैंने दुबारा रोक-टोक नही की । भारतीय खाद्य निगम का सैकडो बोरा गेहूँ जगह न होने के कारण रेलवे स्टेशनो के यार्ड मे भीग रहा होगा—इस राष्ट्रव्यापी चिंता से बिलकुल बेलौस बेवकूफ की तरह उन्हे बारिश मे जाते देख मुझे पहले हँसी छूटी, फिर उन पर दया आई और फिर अचानक उन्हे मन-ही-मन दाद दी । वे अपने टपरे की प्रधानमत्री भी हैं,

महारानी भी। फॉकलैंड द्वीप की तरह एक चिपके हुए डिब्बे मे जो दाल के चार दाने पडे हैं, उन्हे चुहिया से, और पानी की टपकन से बचाने की जिम्मेदारी सही तौर से समझती है। ऑधी हो या तूफान, किसी से सलाह लिए बिना उन्हे अपने साम्राज्य को बचाना ही होगा।

मैंने कहा, "अबे नेता के बच्चे, वह पेट के दर्द मे तडप रही है और तू उसे नोन-पानी पिला रहा है। तेरा बिलासपुरी गूँगा शेर बुखार मे पडा है। गाँजा के नाम पर पाँच रुपए फूँकने मे तुझे कोई कलक नही होती, दो रुपए की दवा खरीदने मे तेरी हवा खिसक रही है। ये ले दो रुपए, बारिश थमते ही लपक जा चौराहेवाले

नेता के ओठ पूरब से पच्छिम तक मोहनी मुस्कान मे फैले थे हाथ मे बीडी थी। बोले, "दो से क्या होगा? तीस रुपया निकालो टेट से ।"

जवाब मे नेता को कुछ गालियाँ सुनाने जा रहा था कि मेमसाहब बारिश मे भीगती हुई उसी चुहिया-चाल से कमरे के अदर आ गई। एक फावडे का बेट वही जमीन पर पडा था, उसे उठाते हुए बोली, "कीरा! कोठरी मे कीरा निकला है। जल्दी चलो मिस्त्री।"

कीरा, यानी कीडा, यानी साँप। हम लोग उछलकर खडे हो गए, जैसे साँप हमारे पतलून मे घुस आया हो। मिस्त्री और पोर्टिको मे बैठे मजदूर भी लकडियाँ लेकर नेता के दरबे की ओर दौडे। सिर्फ नेता नही उठे। मैंने कुछ कहा तो बोले, "वही मार लेगी।" उनकी मुद्रा मे बस इतना फर्क आया था कि पहले जहाँ उनके ओठो पर गाँजे से उद्दीप्त मुस्कान लपलपा रही थी, वहाँ अब सिर्फ उसकी केचुल रह गई थी।

नेता ने कहा था निकालो टेट से तीस रुपए, तब मेमसाहब और बिलासपुर के गूँगे शेर के इलाज की बात करो।

उनके इस रईसी इलाज का राज समझने के लिए यहाँ की चिकित्सा प्रक्रिया को जानना जरूरी है। पूरी बात विस्तार के साथ और गाँजे की बहक मे अपनी दो-चार पेटेंट गालियाँ मिलाकर मिस्त्री और नेता ने, एक-दूसरे की बात काटते हुए, मुझे समझाई।

यह इमारत शहर की एक नई बस्ती मे बन रही है। यह पूरा क्षेत्र गुम्टी-सस्कृतिवाला है। चौडी सडको के किनारे-किनारे नेता-अफसर-व्यापारी गिरोह के कुछ शानदार, कुछ कम शानदार निवास गृह हैं। पर सडक की पटरियो पर हर पचास मीटर के फासले पर लकडी की चलायमान गुम्टियो मे, या बाँसो पर टिके हुए तिरपाल के नीचे, और कही-कही बिलकुल नीले गगन के तले पान, बीडी, सब्जी, चाट, समोसा-जलेबी, चाय, सुराही और कुल्हड, स्कूटर और साइकिलो की मरम्मत, धोबीगिरी, नाईगिरी, बढईगिरी, लुहारगिरी, कुम्हारगिरी आदि की दुकाने हैं। कही बिलकुल अकेली दुकान है और कही-कही, खासतौर से चौराहो पर, उनके

छत्ते-के-छत्ते हैं। दुकानदार और ग्राहक प्राय एक-दूसरे को नाम, आकृति या गुण से पहचानते हैं। यानी पानवाला अगर मेरा नाम नही जानता तो यह तो जानता ही है कि यह चिमिरखी-जैसा शख्स पहले बिना किसी निशाने के, यूँ ही, किसी अनुपस्थित हस्ती के लिए चार छह गालियाँ निकालेगा, फिर दो पानो की फरमायश करेगा। झगडा-झझट के बावजूद ये सब ज्यादातर भाईचारे मे रहते हैं। पटरी-सफाई-अभियानवालो के खिलाफ गुम्टी-सस्कृति की रक्षा के लिए प्रोलेतेरियत का कोई प्रतिबद्ध सगठन नही, बल्कि गुडो का एक गिरोह है और चद सफेदपोश लौंडे-लफाडी हैं जो यकीनन् नेतागीरी की लीक पर पहुँच रहे हैं। कुल मिलाकर इन पटरियो पर देहाती बाजार का घरेलू माहौल है जहाँ नाई लोग अपनी-अपनी गुम्टी मे जलेबी खाते हुए जनता के बाल काटते हैं और जनता के बाल उडकर जलेबी की कडाही मे जाते हैं। इस खेल या समझौते का सरकारी नाम नगर-विकास है।

इस गुम्टी कल्चर मे अगर कुछ अचल है तो वह है डॉक्टरी की दुकाने। ये गुम्टियो मे तो नही हैं, हर सौ-डेढ सौ मीटर के बाद नई बनी इमारतो के गराजो मे खुली हैं, पर उनकी कल्चर गुम्टी ही की है। हर दुकान के सामने सडक पर रेडक्रास के निशान के साथ डॉक्टर का साइन-बोर्ड लगा है। वैसे, कानूनन् इस पर रेडक्रास के बजाय इसान की खोपडी और उसके नीचे आडी-तिरछी दो हड्डियो की तस्वीर होनी चाहिए। बहरहाल, इनमे कुछ ऐसे डॉक्टरो के नाम जरूर हैं जिन्होने बाकायदा यहाँ से लदन तक की डिग्री हासिल की है। पर ज्यादातर डॉक्टर आर एम पी यानी रजिस्टर्ड मेडिकल प्रैक्टिशनर की भारी-भरकम डिग्रीवाले है। ये कहाँ रजिस्टर्ड है, इसे न कोई पूछता है, न कोई बताता है।

उत्तर प्रदेश मे डकैतो के गिरोह जैसे तराई और चबल घाटी के दो प्रमुख सप्रदायो मे बँटे हैं वैसे ही आर एम पी के भी दो गिरोह हैं। एक तो अपनी अम्मा के पेट से डॉक्टरी सीखकर आने और बाद मे, किसी अस्पताल मे स्वीपर, या वार्डब्वाय से लेकर कपाउडर तक की जगह पर व्यावहारिक प्रशिक्षण लेकर गले मे आला लटका लेनेवालो का और दूसरा देहातो से कूद-कूदकर आए हुए भूतपूर्व स्वास्थ्य-रक्षको का। हुआ यह कि उमर-भर प्रतिष्ठान का विरोध करके हमारे नेता जी यानी राजनरायन जी जब खुद प्रतिष्ठान बन गए तो केद्रीय स्वास्थ्य मत्री की हैसियत से उन्होने जनता की सेवा के लिए गाँव-गाँव मे पचास रुपए माहवार की उजरत पर स्वास्थ्य-रक्षक तैनात किए और उन्हे बीमारो मे बाँटने के लिए खैराती दवाइयाँ भी दी। अब उनका क्या कुसूर, पर हुआ यही कि यही स्वास्थ्य-रक्षक बाद मे भक्षक बनकर सैकडो की तादाद मे आर एम पी बने और गाँवो को पदमर्दित करने के बाद शहरो पर भी टूटे। शहरो मे बडे-बडे सरकारी अस्पताल है पर चूँकि घूम-फिरकर वे बडे सरकारी नौकरो और दालमोट की तरह दवा चबानेवाले विधायको के लिए ही रह गए है, इसलिए इस बस्ती मे अब सारे मजदूर आर एम पी पर और सारे आर एम.पी लोग मजदूरो पर निर्भर रहने लगे हैं।

मिस्त्री ने जो बताया उसका निचोड यह है

आज दोपहर को नेता मेमसाहब और सुरेस को लेकर एक ऐसे ही आर एम पी के पास गए थे। उसने मेमसाहब के पेट और पीठ के नीचे तक टटोला, उन पर अपनी उँगलियो से असली डॉक्टरो की तरह ठक्-ठक् करके उन्हे पेट के दर्द के लिए कुछ टिकियाँ दी। फिर सुरेस का खून एक टेस्ट टयूब मे निकालकर उसे खूब हिलाया-झुलाया और उसके बुलबुले देखता रहा। इतना करके उसने सुरेस की बाँह पर एक पट्टा बाँधा और रबड का एक भोपू दबाते हुए बताया कि उसके खून की दबाव की माप ले रहा हूँ। इसके बाद उसने सुरेस की बाँह मे सुई लगाई और कहा कि यह सात दिन तक लगेगी। इस पूरे खेल और दवा की लागत तीस रुपिया हुई जो नेता ने कुछ अपनी और कुछ सुरेस की जेब से निकालकर दिए।

फिर क्या हुआ? दोपहरबाद मेमसाहब के पेट का दर्द और सुरेस का बुखार बढ गया।

सुरेस का बाप लडके को नालायक कहकर बाकी परिवार के साथ शहर के दूसरे छोर पर काम करने लगा है। अब नेता सोच रहे हैं कि इलाज उसी आर एम पी से कराया जाए या दूसरे से। मिस्त्री बडी गभीरता से बोले, "वैसे मुसी जी, इस डॉक्टर की तारीफ बहुत है। सुनते हैं उसने विलायत से भी डॉक्टरी का कागज मँगाया है।"

मैंने कहा, "कल सवेरे जल्दी ही मेरे साथ चलो। सरकारी अस्पताल मे मेरी जान-पहचान के एक डॉक्टर हैं। उनसे दवा ले आएँगे।"

नेता बोले, "मेरी गर्दन काट लो मुंसी, पर सरकारी अस्पताल नही जाऊँगा।"

सरकारी अस्पताल मे मेरी जान-पहचान के एक डॉक्टर साहब थे जो पहले हमारे गाव के प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र मे रह चुके थे। वहाँ उनके लिए मैंने जो कुछ किया था उसका वे आज तक एहसान मानते थे। इसकी भी एक कहानी है।

वहाँ एक खादीधारी आदमी था जो हमारे क्षेत्र मे मास्टर साहब कहलाता था। उसकी जडे वही पडोस के एक गाँव मे और फुनगी शहर मे थी। पेशे से वह पुलिस का लायजाँ एक्जीक्यूटिव था जिसे अपमानजनक हिंदी मे दलाल कह सकते हैं। पर वह अपराधियो और थानेदारो के बीच टुच्ची दलाली नही करता था, यह काम वह थानेदारो और पुलिस कप्तान के बीच किया करता था। इसी से, जब वह कहता कि घबराओ नही दारोगा जी आपके खिलाफ यह जाँच तो खतम कराऊँगा ही, उसके बाद आपको कोतवाली का इचार्ज भी बनवाऊँगा तो उसे मुसीबतजदा दारोगा जी गर्वोक्ति भले ही मानते, अतिशयोक्ति मानने की गलती नही कर सकते थे।

यह कारोबार कुछ ज्यादा विकसित हो जाने पर मास्टर साहब ने अपने उद्योग की नई शाखाएँ निकालनी शुरु की। शहर मे एक ऐसे चीफ मेडिकल आफिसर के आ जाने के बाद जो कम-से-कम वक्त मे ज्यादा-से-ज्यादा अमीर बनने को अधीर था, वे

थानेदारो और पुलिस कप्तान के समानातर मेडिकल आफिसरो और चीफ मेडिकल आफिसर के बीच सपर्क स्थापित कराने लगे। उद्योग की यह शाखा और भी ज्यादा बढी क्योंकि यह धधा समाज से दुरदुराए थानेदारो के साथ नही, बल्कि समाज से थपथपाए डॉक्टरो के संपर्क का था।

इन डॉक्टर साहब के प्राथमिक स्वास्थ्य केद्र मे आते ही मास्टर साहब ने वहाँ आना-जाना शुरू कर दिया। खुशामद करके जान-पहचान बढाई, फिर उनके कामो मे बिना माँगी सलाह देकर घरेलूपन दिखाया, फिर फर्जी नसबदी के मामलो मे डॉक्टर साहब के लिए आमदनी का बाँध तोडकर उसकी एक धारा अपने घर की ओर भी मोड ली। फर्जी नसबदी की आमदनी का अपना तत्रशास्त्र है। नसबदी करानेवालो को हमारे यहाँ कुछ रुपया तदुरुस्ती बढाने के लिए दिया जाता है, कुछ रुपया उसको भी मिलता है जो किसी को नसबदी के लिए फॉस-फूसकर लाता है यानी 'प्रेरित' करता है और कुछ आपरेशन करनेवाले डॉक्टर को मिलता है। यह सारा खेल आबादी को नियत्रित करने और उसके द्वारा देश की खुशहाली बढ़ाने के नाम पर होता है। उधर, सरकार ज़्यादा-से-ज्यादा आपरेशन करनेवाले डॉक्टर को राजा बेटा और कम आपरेशन करनेवाले को निकम्मा मानती है। इस धमाचौकडी मे अगर कोई डॉक्टर अपने रजिस्टर मे कुछ ऐसे लोगो का आपरेशन भी दर्ज कर ले जो कभी कही थे ही नही तो उनके नाम पर तीन धाराओ से खीचे जानेवाले धन की त्रिवेणी का सगम उसी के बैंक खाते मे हो सकता है। वैसे, यहाँ जो सगम था, वह दो बैंक खातो में हो रहा था, एक डॉक्टर साहब का और एक मास्टर साहब का।

इस जोशीले अभियान मे डॉक्टर साहब ने एक-एक दिन में सौ-सौ आपरेशन दर्ज करने शुरू कर दिए, यानी स्प्रिगबोर्ड से उछलकर स्विमिग पूल की सतह छूने मे जितना वक्त एक अच्छे गोताखोर को लगता है, उतने वक्त मे नसबंदी का एक आपरेशन पूरा करने का कीर्तिमान उन्होने स्थापित कर दिया। इसका उल्लेख गिनेस बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड मे तो नही हुआ पर सरकारी दस्तावेज उनकी गौरव-गाथा की धूम मे दफ्तरी मेजो पर उछलने लगे। उन्हे परिवार नियोजन कार्य मे जिले का सबसे उत्साही डॉक्टर माना गया और खुद स्वास्थ्य मत्री ने अपने हाथो उन्हे एक सनद और रगीन टी.वी सेट प्रदान किया। फर्जी व्यक्तिवाचक सज्ञाओ का जखीरा इकट्ठा करने से उन्हे जो नसबदी करानेवाले, नसबदी के लिए प्रेरित करनेवाले और नसबंदी करनेवाले के हिस्से की रकम मिली, वह मास्टर साहब के हिस्सा-बॉट के बाद भी शहर मे एक प्राइवेट क्लिनिक भर के लिए काफी साबित हुई।

इतना हो चुकने पर उनमे और मास्टर साहब मे फूट पड गई। झगडा शायद किसी मारपीट के मामले को लेकर हुआ जिसमे कहा जाता है कि मास्टर साहब उनके हाथो भारतीय दंड विधान की धारा 323 के एक हादसे को धारा 307 मे बदलवाना चाहते थे। यानी मारपीट मे जिस आदमी की पीठ पर कुल्हाडी का बेट डडे की तरह लगा था

उसके बारे मे, मास्टर साहब की इच्छा के अनुसार, डॉक्टर साहब को लिखना था कि कुल्हाडी से उसकी हत्या करने की कोशिश की गई है। मास्टर साहब की यह माँग सरासर बेबुनियाद न थी क्योकि पिटे हुए आदमी के कधे पर घाव का एक प्राचीनकालीन निशान पहले से मौजूद था जिसकी बुनियाद पर हत्या के प्रयास का हवामहल बनाया जा सकता था। पर डॉक्टर साहब इस मामले मे सच्चाई पर उतर आए। उन्होंने दफा 323 की सख्या को सत्य का राष्ट्रीय चिह्न मानकर उसमे कोई भी दखलअदाजी करने से इनकार कर दिया। पता नही, ज्यादा पैसा आ जाने से उनका आत्मविश्वास बढ गया था या सी यम ओ के तबादले की अफवाहे सुनकर उनकी निगाह मे मास्टर साहब का अवमूल्यन हो गया था या भारी रकम के लालच के बावजूद उनकी हिम्मत जवाब दे रही थी—जो भी कारण हो, डॉक्टर साहब टस की हैसियत पर डटे रहे, मस नही हुए।

हम लोग, यानी डेली पैसेजरीवाले कुछ नौजवान अस्पताल जाते ही रहते थे और डॉक्टर साहब हम सबकी आवश्यकता और इच्छा देखते हुए हमारे बीच बदहजमी की गोलियो से लेकर निरोध तक बडी दरियादिली से बाँटा करते थे। वे हम सबके लाडले थे। इसलिए एक दिन जब हम तीन नोजवान उनके कमरे मे घुसे और उन्हे तमतमाए चेहरे से मास्टर साहब की ताबडतोड गालियाँ सुनते हुए पाया तो हमारे एक साथी के मुँह से अचानक निकला, 'मारो साले को।' उस वक्त मास्टर साहब चीख-चीखकर, गालियो और फुफकारो के बीच कह रहे थे, "तुम्हे, देखना बेटा, इसी हफ्ते मे कोढी बना दूँगा।"

हिंदू समाज के जातिगत व्याकरण मे 'देखना तुझे भगी बनाकर छोडूँगा।' जैसा मुहाविरा बेहूदा होते हुए भी बहुतो की जबान पर रहता है, पर कोढी बनाकर छोडने का प्रयोग एकदम बेहूदा था और जिस अदाज से मास्टर साहब यह प्रयोग कर रहे थे वह और भी ज्यादा बेहूदा बन गया था। उस बेहूदेपन से डॉक्टर साहब को छुटकारा दिलाने के लिए मेरे एक साथी ने मास्टर साहब का टेटुआ पकड़ लिया, दूसरे ने उनकी टाँगे घसीटकर फर्श पर गिरा दिया जिसका फायदा यह हुआ कि उनका टेंटुआ छूट गया पर नुकसान यह हुआ कि खोपडी फर्श पर 'टाट' की ध्वनि और उसकी प्रतिध्वनि के साथ गिरी। मास्टर साहब चित हो गए। मैं ब्रिगेड कमाडर की तरह झगडे के दायरे से कुछ दूर, दीवार के सहारे, अपना मुख्यालय बनाए हुए, 'शाबाश', और 'नही, नही' आदि के निर्देशो मे छिपा रहा। हमारे साथी मास्टर साहब की चटनी बनाने पर उतर आए। तभी डॉक्टर साहब अचानक चीखकर अपने शत्रु की रक्षा के लिए फुदकने लगे। सक्षेप मे, जब डॉक्टर साहब की रक्षा के लिए पहले मास्टर साहब को गिराकर, फिर जुतियाकर, फिर लतियाते हुए उन्हे कमरे से बाहर बरामदे और बरामदे से बाहर मैदान मे तिलचट्टे-जैसा फेक दिया गया तो उनके कत्ल और जानबख्शी की क्रियाएँ साथ-साथ पूरी हो गई।

बहरहाल, मास्टर साहब के साथ जो भी हुआ हो, डॉक्टर साहब को पाँच दिन मे कोढी बना दिया गया। यानी वे जिला मुख्यालय पर एंटी-लेप्रासी आफिसर हो गए। यहाँ उनके कुछ और ही ठाठ थे, फर्जी नसबदी से मिलनेवाला इनाम और रुपया, सरकारी दवा को चुराकर बेचने का रुपया, प्रैक्टिसबदी के कारण नानप्रैक्टिसिग एलाउस का रुपया और उसके बावजूद जमकर की जानेवाली प्राइवेट प्रैक्टिस का रुपया, फोकट की जीप, फोकट का मकान, नर्स, मिडवाइफ, फेमिली प्लानिग की एक्सटेशन एजुकेटर के रूप मे मिलनेवाली फोकट की नौजवान माशूकाएँ—एंटी-लेप्रासी आफिसर बनकर डॉक्टर साहब सचमुच ही एक तरह से कोढ़ी हो गए।

तब हम सब—डेली पैसेजर्स एसोसिएशनवाले—राजनीतिक हो गए। उसके लिए कुछ ज्यादा खीचतॉच की जरूरत न थी। हम लोगो के गिरोह मे लगभग डेढ सौ नौजवान थे। चुनाव मे काग्रेस से लेकर जनता और लोकदलवाले तक अपनी जरूरत के मुताबिक हमे शक्ति-प्रदर्शन के लिए बुलाते थे और हम लोग, प्राय शक्ति का प्रयोग किए बिना, सिर्फ उसके प्रदर्शन के सहारे, शत्रु-पक्ष को चित कर दिया करते थे। अफ्रीकी देशो मे योरोप के मर्सीनरी सिपाहियो को स्टेनगन और ग्रिनेड वगैरह चलानी पडती है, यहाँ हमारा काम सिर्फ हेकड़ी से निकल जाता था।

तो, हम लोगो ने तुरत कई पार्टियो के स्थानीय नेताओ को अपने घेरे मे डालकर चीफ़ मेडिकल आफिसर का घेराव कर दिया। घूसखोर सी यम ओ हमारे आगे 'हे हे हे' करने लगा। हमने अपने डॉक्टर साहब को जिले के सदर अस्पताल मे फिजिशयन कसल्टेट बनाने की माँग, 'इकलाब जिदाबाद' और 'मास्टर दलाल का नाश हो', 'सी यम ओ गोयल मुर्दाबाद' के नारो के बीच पेश की। परिणामत सी यम ओ गोयल ने अपने निरोध-जैसे पिचके गालो से वक्तव्य दिया कि 'कही कुछ गलतफहमी हुई है।' उसी के साथ उन्होने हमारे डॉक्टर साहब को सदर अस्पताल का चीफ फिजिशियन बनवा दिया। यह ओहदा कसल्टेट से आधा इच नीचा था और चूँकि डॉक्टर साहब इसे ही चाहते थे इसीलिए हमने उससे आधा इच ऊपर के ओहदे की माँग की थी। तदनुसार हमारे डॉक्टर साहब आज तक इस अस्पताल के चीफ फिजिशियन हैं और इतने शुक्रगुजार हैं कि हमारे कहने पर अब वे दफा 323 के मामले को 307 तो छोटी बात है, 302 यानी हत्या तक का मामला बनाने को फाउन्टेनपेन खोले बैठे रहते हैं।

नेता को सरकारी अस्पताल ले जाने के लिए उनकी गर्दन काटने की जरूरत नही पडी। दूसरे दिन सबेरे ही अपनी साइकिल पर सवार होकर और एक माँगी हुई साइकिल पर सुरेश को नेता के पीछे बैठाकर अस्पताल पहुँच गया। सरकारी अस्पतालो मे चाहे जो खराबी हो, एक अच्छाई जरूर है कि उसके ऊँचे स्टाफ मे अगर कोई अपना आदमी हो तो अस्पताल भी अपना हो जाता है। तभी सुरेश के बुखार का तुरत परीक्षण हुआ और

टाइफाइड बताकर उसे अस्पताल मे भरती कर लिया गया। उसके लिए तुरत मुफ्त दवा, दूध, फल और खुराक का भी हुक्म हो गया। मेमसाहब की गैरहाजिरी मे गर्भ के दिनो मे दी जानेवाली दवाओ और टानिक का भी तुरत इतजाम हुआ। नेता पर मेरी हैसियत का इतना रोब पडा कि वे सिर्फ 'बडे आदमी बडे आदमी' कहते रहे, मुझे उससे जोडने के लिए पूरा वाक्य नही बना पाए।

हम लोग दवाओ और आत्मविश्वास की अतिरिक्त खुराको से लैस होकर, बाजार मे चाय और समोसे का परमात्मा जी के नाम पर नाश्ता करते हुए, दस बजे तक वापस लौट आए।

तीन बजे के लगभग वहाँ इंजिनियर साहब पधारे। मोटर साइकिल की पीछे की सीट पर उनका बाडीगार्ड, सिर पर शहीदाना कफन के अदाज मे अँगोछा बाँधे, हमेशा की तरह कार्बाइन-सहित मौजूद था। पर इजिनियर साहब का हुलिया बदला हुआ था। चे-रे पर दो दिन की बढी हुई दाढी थी, बाल रूखे थे, एक पुरानी भूरे रग की पतलून और घटिया बुश्शर्ट पहने थे जिसके कालर बकरी के कानो की तरह बेजान जैसे गिरे हुए थे, गर्दन पर कालर की सिलन उधडी हुई थी। पाँवो मे घिसे हुए चप्पल थे। दाढ़ी की बढत ने उनके गाल की हड्डियो के उभार और आँखो के धँसाव को कुछ ज्यादा ही पैना कर दिया था। बिलकुल किसी टुटपुँजिया ठेकेदार की धज मे वे आए, पर जब उन्होने मोटर-साइकिल मेरे पैर के पास अचानक ब्रेक लगाकर पुराने अदाज मे रोकी, तो वे चुस्त-दुरुस्त इंजिनियर बन गए।

हुलिया जैसा भी हो, वे खुश नजर आ रहे थे और उनकी निगाह से ही लग रहा था कि छत के काम को देखकर उन्हे सतोष हुआ है। वैसे हमे डर था कि रात मे काम न हो पाने पर वे इद्र भगवान से लेकर नेता तक फटकारेगे और बिना कुछ कहे ही कल के आँधी-तूफान का जिम्मा मजदूरो की बदमाशी और मेरे निकम्मेपन पर डालेगे। पर ऐसा कुछ नही हुआ। उन्होने मकान के सामने टट्टी करते हुए एक मजदूर-बच्चे तक को देखकर अनदेखा कर दिया, हमेशा की तरह, मेरी चौकसी मे छेद निकालते हुए, किसी दूसरे को फटकारकर मुझे जलील करने की कोशिश नही की। खुशी से उफनाती आवाज मे उन्होने मिस्त्री से कल की बारिश की तारीफ शुरू कर दी। बोले, "दो फायदे हुए। एक तो बाहर जितना प्लास्टर हुआ है, उस पर तीन दिन तक तरी करने की जरूरत नही रही, प्लास्टर बिलकुल फौलाद जैसा हो जाएगा। और दूसरे मियाँ, यह ठडी हवा देख रहे हो ? मई मे कभी ऐसा हुआ है ? जब तक मौसम ऐसा ही सुहावना रहे, फटाफट सारा काम खत्म कर डालो। मैं तो चार दिन के लिए दिल्ली जा रहा हूँ, परवीन आता रहेगा।" फिर मुझसे बोले, "भाई, दुनिया मे मै तुम्ही से डरता हूँ। तुम परवीन से बहस मत करना। मकान के बारे मे वह जैसा कहे, वैसा ही करते रहना।"

"वैसा ही होगा बॉस।" किसी तस्करीवाले फिल्म के चमचा कारकुन की तरह मैंने

जरूरत से ज्यादा मुस्तैदी दिखाते हुए कहा।

जो नही कहा वह अपने गॉव-घर की बात थी। खलियानो मे गेहूँ की कटी फसल कल की बारिश मे बरबाद हो गई होगी, भूसा काला पड जाएगा और मिट्टी के मोल बिकेगा—इन बातो का जिक्र करके मैंने इंजिनियर साहब के सुहावने मौसम को खराब नही किया, पास खडे हुए नेता को—दूसरो की निगाह बचाकर—सिर्फ इशारा भर किया।

मशीनी ताकत पर इसानी ताकत का दुर्मंजिला महल बनाते हुए इंजिनियर साहब जब मोटर साइकिल पर बैठ रहे थे तभी नेता ने उनके पास आकर कहा, "सुरेस को अस्पताल मे भर्ती करा दिया है। दवा-दारू के लिए कुछ मिल जाए।"

जाहिर है, यह गाजे की चिलम का तकाजा था और मेरा भी जवाब वही होता, पर कुछ न देने का फैसला इंजिनियर साहब ने कुछ दूसरे कारणो से किया, मुझसे पूछा, "उसका कुछ बाकी है क्या?"

मैंने सिर हिलाकर 'नही' कहा। वे बोले, "तब क्या मिलेगा? कद्दू?"

"दवा के लिए "

"मैंने पहले ही कहा था कि इस मरियल छोकरे को काम पर न लिया जाए।" कहकर उन्होने मोटर साइकिल स्टार्ट कर दी। वह बनैले सुअर की तरह गुर्र-गुर्र करती हुई एकदम से बाईं ओर मुडी, तभी उसमे ब्रेक लगा, इंजिनियर साहब ने ठडी आवाज मे मुझे हिदायत दी, "पॉच रुपए दे देना। अगर वह काम पर न लौटे तो नेता के पैसे से काट लेना।"

उनकी ओर से ऐसी दरियादिली न पहले देखी, न सुनी थी। मैं अचभे मे डूब गया। दो दिन तक डूबा रहा, सतह पर तब आया जब परमात्मा जी के आने पर उनकी खुशी का राज खुला।

उस दिन अदालत मे सरकार के खिलाफ उनके मुकदमे की पेशी थी। मुअत्तली के स्थगित हो जाने पर उन्हे हर महीने बिना किसी काम के जो तनख्वाह मिलनी थी, वह इधर दो महीने से किसी कायदा-कानून के चक्कर मे रुक गई थी। शायद सरकार मे किसी ने उनके भट्ठा-ट्रासपोर्ट-सर्विस-बाजार-निर्माण-ठेकेदारी आदि व्यवसायो के बारे मे पूछताछ शुरू कर दी थी। शायद उनसे इस प्रमाण की मॉग की गई थी कि वे वेतन के अलावा किसी दूसरे स्रोत से पैसा नही कमा रहे हैं। पेशी मे उनके खिलाफ होनेवाली जॉच के असली मुद्दे को किनारे ठेलकर वकील की हैसियत से परमात्मा जी ने सरकार की इस नालायकी की शिकायत कर दी।

अदालत को उन्होने बताया कि अदालत के सरक्षण के बावजूद यह सरकार उनके मुअक्किल को भूखो मारना चाहती है। इस पर सरकारी वकील ने इंजिनियर साहब की भट्ठा, ट्रॉसपोर्ट, बहुखडी बाजार, ठेकेदारी-जैसी क्रियान्वित और क्रियाशील योजनाओ

का हवाला देकर उनके खिलाफ कुछ नई जॉचो का जिक्र किया और सिविल सर्विस रेगुलेशन और वित्त मैअनुअल के कुछ नियम निकालकर वताना शुरू किया कि अपनी सेवा के अलावा किसी दूसरे कारोवार से कमाई करनेवालो को तनख्वाह दिए जाने का प्रावधान नही है और किसी ऐसे प्रमाण-पत्र का हवाला दिया जो इंजिनियर साहव को इन नियमो के अनुसार हर महीने सरकार को देना चाहिए था। वरसाती कीडे जैसे इन तर्कों को तभी परमात्मा जी ने छिपकली की तरह उछलकर ऊपर ही ऊपर दवोच दिया। उन्होने अदालत को उसकी आन-वान-शान आदि का हवाला देकर कार्यपालिका की हरामजदगी का और न्यायपालिका की शराफत और अज़मत का वखान किया, उसे समझाया कि 'मिलार्ड', 'योर ऑनर' ! (पता नही इनमे कौन लफ्ज शराफत के लिए था, कौन अजमत के लिए) मामला मेरे मुअक्किल और सरकार के वीच का नही, वल्कि सरकार और सम्माननीय अदालत के वीच का है, माना कि मेरा गरीव, मजलूम, मुसीवतजदा मुअक्किल इस वक्त, इंजिनियरिंग सेवा का एक सम्मानित सदस्य होने के वावजूद, दर-दर भटक रहा है, कदम-कदम पर ठोकरे खा रहा है, पर मैं उसकी गिरी हालत को वतौर वहस मिलार्ड के सामने नही पेश करूंगा क्योंकि वह कैसा है और क्या करता है, यह सवाल ही मौजूदा मसले के लिए अप्रासंगिक हैं। प्रासंगिक कुल इतना है कि इस अजीमुश्शान इजलास ने उसके वारे मे सरकार को एक हुक्म दिया है और जानबूझकर उस मामले में सरकार अदालत की हुक्मउदूली कर रही है, उसकी तौहीन करने पर आमादा है। इस शानदार अदालत का हुक्म है कि सरकार मेरे मुअक्किल को नियमित वेतन देती रहे, पर दो महीने से सरकार ने ऐसा नही किया है। मैं सिर्फ इतनी-सी मामूली वात जानता हूँ, इसके अलावा और कुछ नही जानता हूँ। सरकार को अगर इस हुक्म से ऐतराज है तो वाकायदा हल्फनामा देकर, अपने कारण वताकर, उस हुक्म की मसूखी की दरखास्त दे, उसकी नकल पाकर अपने मुअक्किल का पक्ष प्रस्तुत करने का तव मुझे भी अधिकार होगा। तव उस पर अलग से वहस हो सकती है, पर जब तक यह हुक्म कायम है ।

परमात्मा जी ने कहा कि इस हालत मे मैं पी.डब्लू डी के सचिव और विभागाध्यक्ष के खिलाफ अभी अदालत में मानहानि की दरख्वास्त पेश करता हूँ। इन उद्दड नौकरशाहो को यह सम्माननीय अदालत खुद वखूवी समझती है। उन्हे सवक सिखाए विना ।

सरकारी वकील की वोलती वद हो गई। यानी, वह खुलती, इसके पहले ही सम्माननीय अदालत ने कहा, "याची को एक सप्ताह मे पिछले महीने तक की तनख्वाह मिल जानी चाहिए। वर्ना एक ओर आपके पी डब्लू डी. सिक्रेटरी के कमरे का पखा, एअरकंडिशनर, आलमारी और उनका कलमदान तक कुर्क करा लिया जाएगा और दूसरी ओर अदालत की मानहानि की कार्रवाई मे उन्हे वतौर मुल्जिम यहाँ खडा होना पडेगा।"

मुझे लगता है कि सम्माननीय अदालत के सामने सबसे जोरदार तर्क इंजिनियर साहब के हुलिए ने पेश किया था। वह घिसी हुई चप्पल, वह कटी-फटी बुश्शर्ट, वह दो दिन की बढी हुई दाढी व धँसी हुई आँखे और उठी हुई चेहरे की हड्डियाँ—ये सब उन्हे भी सम्माननीय बना रही थी। फिर उनके साथ कुछ सम्माननीय पत्रकारो का हुजूम भी नियमित रूप से हर पेशी पर अदालत जाता था। उनमे से कुछ सिर्फ व्हिस्की से प्रसन्न होनेवाले थे, कुछ को शहर के बाहर इंजिनियर साहब के फार्म मे दो-एक बीघे जमीन पाने का भरोसा था, कुछ को उनके 'पन्नालाल मार्केट' मे एक-एक दुकान बनने के पहले ही मिल चुकी थी। कुछ ऐसे सीधे-सादे, भोले-भाले बुद्धिजीवी पत्रकार भी थे जो इसे सचमुच ही हृदयहीन नौकरशाही द्वारा एक निरीह आत्मा पर अत्याचार का मामला समझते थे। जो भी हो, वे सब चुस्ती से अदालत की कार्रवाई अपनी नोटबुको मे नोट करते हुए नौकरशाही की धाँधलेबाजी पर एक खबर तैयार करने को तैयार हो गए।

तीन दिन बाद सवेरे जब मैं खासतौर से एक अखबार खरीदकर पढ रहा था, इजिनियर साहब की मोटर साइकिल मेरे पाँव के अँगूठे के पास ब्रेक के जोर से आकर' रुकी। दगा-फसाद की एक घटना के अध्ययन से सिर उठाते ही मैंने देखा, सवेरे की ठडी हवा का असर उनके फेफडो मे ही नही, गालो और गले तक मे दिखाई दे रहा था। आज इस ठिगनी, साँवली मूर्ति पर न पहलेवाला सफरी सूट था, न बढ़ी हुई दाढीवाले निस्तेज चेहरे के नीचे फटीचर बुश्शर्ट। वे नीली जीन्स पहने हुए थे और धड पर सिल्क की नए काट की ऐसी चीज थी जो कुर्ते और टीशर्ट के दोगलेपन से पैदा हुई थी। पाँव मे ऊँची एडी के लबे बूट जिन्हे देखते ही मोटर साइकिल स्टार्टर पर जोर पडे बिना ही घुर्र-घुर्र करने लगती होगी। बाल रँगकर काले किए हुए, पर किसी शैंपू के इश्तहारी मॉडल की धज मे रूखे बनाकर छोडे हुए। आँखो पर प्रधानमत्री की नकल मे कीमती तीलियोवाले फ्रेम का काला चश्मा। पैंतालीस साल की उम्र मे भी लौंडा जैसा दीखने की कोशिश। मैंने भी उन्हे लौंडे जैसा ही शुमार किया। पूछा, "आपकी कमीज बहुत जँच रही है। कहाँ से ली?"

"कमीज नही, कुर्ता है" सूचित करते हुए उन्होने मिस्त्री से कहा, "तुम लोग अभी उधर की छत भी पूरी नही कर पाए। ये हरामी के पिल्ले कल पूरे दिन क्या करते रहे?"

5

पद्रह दिन के बाद जब सुरेस अस्पताल से छूटकर घर आया (पर कौन सा घर, किसका घर ?) तो उसकी हालत मरियल गिलहरी-जैसी थी। आने के दूसरे दिन ही उसने गिलहरी ही की तरह टेढ़े-मेढ़े होते और चक्कर काटते हुए सीमेट मे बालू आदि मिलाने का काम हाथ मे लिया और मरियल जिस्म पर जितना चैतन्य चेहरा हो सकता था, उसकी चमक के साथ हाथ, मुँह और आँखों का इशारा जोडते हुए मेमसाहब को अस्पताल की जिदगी के बारे मे बताना शुरू कर दिया। मैंने उन इशारो से यही समझा कि अस्पताल मे वह खूब सोया और खाने-पीने को उसे कुछ अजीब चीजे मिलती रही। मैंने किसी मौके पर अस्पताल जाकर डॉक्टर साहब को धन्यवाद देने और 'यहाँ भी कोई परेशान कर रहा हो तो बताइए' कहने का निश्चय किया।

बाप-दादा से मिले सस्कार और जिदगी की लताड के सहारे सुरेस-जैसे लोग रोग से निवृत्ति और स्वास्थ्य-लाभ के बीच हफ्तो नही झूलते। बीमारी के बाद सुस्ती, बेचारगी, खीझ और निकम्मी आत्म-दया का उनके लिए लबा शोकोत्सव नही चलता। उन पर चार्ल्स लैंब के 'ऑन कन्वैलिसेस'-जैसे निबध नही लिखे जाते जिसे कभी मुझे बी ए मे पढ़ने को कहा गया था और चद सतरो तक अग्रेजी से जूझने के बाद मैंने जिसे अनपढा छोड दिया था। बीमारी से उठने और रोज का काम शुरू करने के बीच उनके जीवन के चिकारे पर विलबित लय के साध्य प्रकाश राग नही बजते। वे बीमारी के अँधेरे से निकलकर एकदम तपती दोपहरी मे कदम रखते हैं और फावडा सँभालकर खडे हो जाते हैं। यही सुरेस ने किया।

दोपहर को घटे-भर की छुट्टी होने के पहले मिस्त्री मेरे आगे आकर खडे हो गए। बोले, "मुसी, तुमको भी कही जाना हो तो जाओ घूम-घाम आओ। अब आज काम नही होगा।"

"क्यो ?" के जवाब मे "दीन-दुनिया का कोई खबर भी है तुम्हे मुसी ? आज नदी पर हनुमान जी का मेला है। है कि नही ? हम लोग हनुमान जी का दर्सन करने जा रहे हैं।"

छुट्टी के लालच मे मिस्त्री बुतपरस्ती पर उतर आए थे !

"इंजिनियर साहब शाम तक आएँगे। उन्ही से पूछकर जाना। "

"हमारे सबसे बडे इंजिनियर साहब तो आप ही हैं।"

इस तरह खुद छुट्टी माँगकर और खुद ही उसे मजूर करके मिस्त्री मजदूरो के साथ दोपहर बाद मेला देखने चले गए, नेता और सुरेस भी गए, पुष्ट-दुष्ट देहवाली दोनो लडकियाँ भी अपनी जटिल छत्तीसगढी मे यह बताती हुई कि वे उधर से ही भट्ठे पर निकल जाएँगी, चली गई। उनके चले जाने पर मेमसाहब भी कोठी के एक ओर से निकलकर मुझ पर मुसकान बिखेरती हुई पडोस के एक अधबने मकान मे अपने गोल की औरतो से मिलने चली गई।

अच्छी-खासी गर्मी थी, बाहर ऐसी हवा चल रही थी जो दो-तीन दिन मे लू बन जाएगी। खटिया पर पडे-पडे एक अखबार को मोडकर जिस्म पर हवा करते हुए मैंने सोने की कोशिश की, पर नीद नही आई। ऐसे एकात मे प्राय बिना किसी कोशिश के मेरी खोपडी मे कोई सिनेमा चालू हो जाता है। एक फिल्म तो इधर कई दिनो से मुझ पर हावी रही है। इंजिनियर साहब अपनी मोटर साइकिल से जाने लगते हैं और उसके पहले मुझे कुछ हिदायत देते हैं। मैं हाकिमाना लहजे मे कहता हूँ, 'रुकिए, आप मेर साथ चलेगे।' मैं दरअसल सी बी आई का एक बडा अफसर हूँ और उनके घर पर छापा मारने का पूरा इतजाम कर चुका हूँ। पलभर मे मेरी स्टाफ कार वही आकर खडी हो जाती है, दो इस्पेक्टर उससे उतरकर इंजिनियर साहब के आसपास, उन्हे बिना छुए अपने घेरे मे ले लेते हैं। एक पप्पी से पूछता है, 'इस कार्बाइन का लाइसेस ?' मैं कहता हूँ, 'उससे अभी कुछ पूछने की जरूरत नही है।' इंजिनियर साहब कहते हैं, 'मैंने कोई जुर्म नही किया है।' मैं कहता हूँ, 'अभी कुछ कहना बेकार है। आप हमारे साथ अपने घर तक चलेगे। वहाँ हमारे आदमी आपका इतजार कर रहे हैं। इजिनियर साहब खामोशी से कार मे बैठ जाते हैं। पप्पी उनकी मोटर साइकिल लेकर हमारे पीछे चल रहा है। हम सब खामोश हैं, हम सब जानते हैं कि इजिनियर साहब के घर की, उनके लॉकरो की, बैंक खातो की तलाशी से इतना माल निकलेगा जो भ्रष्टाचार की दुनिया मे एक नया कीर्तिमान कायम करेगा। बँगले तक पहुँचते-पहुँचते वे एक बार मुझसे कहते हैं, 'डाइरेक्टर साहब ' फिर कुछ कहना फजूल समझकर खामोश हो जाते हैं।

तलाशी शुरू होती है ।

यह और ऐसे कई फिल्म मेरी खोपडी के डिब्बे मे बद हैं, पर कोई भी रील इस वक्त प्रोजेक्टर पर नही चढी। सोने की कोशिश भी नाकाम साबित हुई। जब भी आँखे मूँदी, बाहर की उमस भीतर की उमस मे घुलती जान पडी। मेरी बद आँखो के सामने बार-बार मेरा अपना जाना-पहचाना हुआ 'मैं' ही आता-जाता रहा।

अपने घर-परिवार के, नाते-रिश्तेदारो के मामले और उनके बीच झूलता हुआ गैस भरे गुब्बारे-जैसा 'मैं'। गाँव मे डेढ बीघे के एक खेत मे चारो ओर ऊँची मेड देकर काँटे रूँधकर एक कलमी आमो का बाग परसाल लगाया था। हमारे ही खानदान के एक चाचा ने, जिनके साथ एक दूसरे खेत का मुकदमा चल रहा है, अपने जानवर बाग मे खदेड दिए और आधे से ज्यादा पेड बरबाद हो गए। बूढे बाप जानवरो को भगाने दौडे

तो एक भैंस ने उन्हे हुँडेस दिया, धच्च से गिरे और आज कमर पर अरडे के गरम पत्ते बाँधकर खटिया पर पडे हैं। बडा भाई उलाहना देने गया तो खानदानी चाचा ने पुचकारकर तख्त पर बैठाला, कहा, 'बडा खराब हुआ, पता नही किस नालायक के जानवर थे! पकडकर कॉजीहाउस मे बद करा देना था।' भाई ने कुछ और कहा तो समझाने लगे, 'मुकदमा चल रहा है तो उससे क्या ? यह तो हमारी-तुम्हारी हक की लडाई है। कोई तुमसे दुश्मनी थोडे ही है।' फिर उन्होने हमारे बाप के बारे मे पूछा, 'भैया को चोट तो नही आई ? कमर मे पचगुण तेल की मालिश कराओ, दो दिन मे ठीक हो जाएँगे, एक खाली शीशी ले आओ तो थोडा-सा अपनी शीशी से निकाल दूँ।' यह सुनकर भाई चुपचाप वहाँ से उठ आए।

उधर बहन के वहाँ हाहाकार मचा है। उसकी सास राक्षसी है। किसी की छाया भी पकड पाए तो खीचकर चबा जाए। बहनोई नहर के दफ्तर में बाबू था। एक नए हाकिम ने आते ही भ्रष्टाचार का कोई मामला पकडकर उसे नौकरी से निकाल दिया है। और भी तीन-चार लोगो को निकाला है। उनकी जगह अपने भरोसे के आदमी रख लिए हैं और अब वहाँ पहले से चार गुना भ्रष्टाचार हो रहा है, जिसमे तीन हिस्से खुद उसके हैं। बहनोई शहर मे उस पुराने हाकिम को तलाशता हुआ घूम रहा है जिसे छह महीने पहले पाँच हजार रुपिया देकर उसने यह बाबूगिरी पाई थी। जो भी हो, इस सबका दड अभी बहन को भुगतना पड रहा है।

एक और भी मुसीबत हैं। एक ज्योतिषी इधर कुछ महीनो से हमारे घर आने लगा है। वह इस जमाने मे भी चश्मे के टूटे फ्रेम को बदलाए बिना उसे डोरी से कान पर बाँधकर चलता है। उसने माँ को समझा दिया है कि अगले साल माँ का मृत्यु-योग है। उसने माँ को किसी महामृत्युजय मत्र का अनुष्ठान सुझाया है। पर माँ को सिर्फ इतना सूझ रहा है कि मरने के पहले वे अपनी छोटी बहू का और मुझसे बन पडे तो, अपने पोते का मुँह देख ले।

तो, माँ की चले तो मेरी शादी इसी साल हो जाए। यह हालत है अपने समाज की, और हम हैं जो आदिवासियो को भी सभ्य बनाकर उन्हे इसी समाज की मुख्यधारा मे लाने का ऐलान करते हैं। मुख्यधारा मे है क्या ? बेकार, बेरोजगार अधमरे नौजवानो पर थोपी हुई कुछ बेमेल शादियाँ, दहेज के लिए जलाई गई बहुओ की चीखे, हाकिमो को घूस देकर खरीदी गई नौकरियाँ और हम-जैसो को जहन्नुम से निकालकर जहन्नुम के रास्ते जहन्नुम तक पहुँचाने की मीठी-मीठी बाते—जिन्हे टी वी की खबरो मे आप रोज सुन ही नही, देख भी सकते हैं।

हालत यह है कि परमात्मा जी के दान पर गुजारा कर रहा हूँ, यल यल बी प्राक्सी के तिकडम से चला रहा हूँ। जिस खोपडी पर चारो ओर से दनादन पड रहे हो, उसी पर अम्मा इस साल विवाह का मोर-मुकुट बँधवाना चाहती हैं। और शादी भी किससे होनी है ? गाँव की किसी बछिया से ? जिसके साथ एक गाभिन भैंस और दो बीघे की खेती हाथ लगेगी ? या शहर मे चुगी के बाबू की आठवाँ फेल लडकी से ? जो खुद रोज ठर्रा

पीता होगा और वही मुझे भी पिलाएगा? या अपने ही जैसी किसी एम. ए पास कन्या से? जो कुछ बडे घर की होगी और अम्मा को नौकरानी और मुझे हरकारा समझेगी ?

ऑखे मूँदे-ही-मूँदे फैसला किया कि अम्मा चाहे जिएँ चाहे मरे, शादी,अभी नही होगी। तब कब होगी ? शायद कभी नही होगी, या कम-से-कम तब तक यह सवाल नही उठेगा जब तक जहन्नुम से जहन्नुम तक की यात्राओ का घेरा नही टूटता, जब तक खच्चरो और ऊँटो की तरह किसी दूसरे के हाथो निशाँदेही किए हुए रास्ते पर चलने के बजाय अपनी ऑख से अपनी राह पहचानकर उस पर चलने का वक्त नही आता।

यह सोचने के बाद तबीयत कुछ हल्की हुई।

यल यल बी का पहला साल निकल चुका है। दो-चार दिन छोडकर हाजिरी कभी दी नही थी, 'प्राक्सी' से काम चलाया था। पर इम्तहान देने खुद ही जाना पडा था। एक नए वकील हमारी जगह पर्चे करने को तैयार थे—पॉच सौ रुपए लेकर। पर इस साल परीक्षाओ मे नकल के खिलाफ छापामार दस्तो ने बडी धमा-चौकडी मचाई, धोखाधडी के कई मामले पकडे गए। इसलिए वह वकील कच्चा पड गया। पर्चे कुछ ऐसे ही वैसे हुए हैं। पास होने के लिए परीक्षको तक दौड-धूप करनी पडेगी। और भी उलझने हैं, परमात्मा जी का मकान दो-चार महीने मे तैयार हो जाएगा। उसके बाद ? वैसे देसी शराब का एक ठेकेदार फिर से बुला रहा है। उसकी दुकान पर दो साल पहले महीना-भर काम किया था, पर नकली शराब की बोतले अपने हाथ से उठाकर बेचने का अब मन नही करता। तब ? पता नही शादी के मामले मे अपने निश्चय का इन बातो से क्या सबध था। लगा कि अकेले पडे-पडे इन छोटी-छोटी चीटी-जैसी समस्याओ को मैं यूँ ही बिच्छू बनाकर देख रहा हूँ।

कुछ खटपट हुई और मैंने ऑखे खोल दी। अपना एक पुराना दोस्त मकान के आगे साइकिल रोककर उसमे ताला लगा रहा था। तबीयत खिल उठी। धूल-भरी सडक, ठिगने पेड़ो की मटमैली पत्तियो, अधबने मकानो के बदसूरत खॅडहरो की जगह हरी-भरी अमराइयॉ, लचीली टहनियोवाले नीम के पेड, केलो के ऊँचे-ऊँचे गाछ लहराने लगे।

साइकिल मे ताला लगाकर वह लॅगड़ाता हुआ मेरे पास आया, पूछा, "क्या रग हैं गुरू ?"

दोस्त का नाम प्रेमबल्लभ था।

जब मैं हाई स्कूल मे पढता था, प्रेमबल्लभ से मेरी पक्की दोस्ती थी। वह हमारे ही गॉव का रहनेवाला है। दोस्ती अब भी है पर पहले-जैसी नही। उसने भी मेरी ही तरह एम ए किया है और अब यल यल बी कर रहा है। पर हमारे ढग अलग-अलग हैं। यल यल बी मैं कर रहा हूँ पर प्राक्सी के सहारे। मैं कभी कालेज नही जाता और अपने पुराने गिरोह से कुछ अलग होकर परमात्मा जी की चाकरी कर रहा हूँ। वह रोज

कालेज जाता है और क्लास मे कुछ देर वैठकर कचहरी चला जाता है । एक वकील का, जो कलेक्टरेट के अधिवक्ता सघ का सिक्रेटरी है, वह अभी से जूनियर वन गया है । वह पेशकारो से फाइलें मॉगने का, मुअक्किलो के साथ जाकर उनकी दरख्वास्त—पेशकारो की ही मार्फत—अदालत मे लगाने का, जमानत के लिए पेशेवर जामिन और मुल्जिमो के वीच समझौता कराने का काम अभी से वखूवी कर रहा है । छोटे-मोटे मुकदमो मे अगर इजलास और दूसरे पक्ष ने ऐतराज न किया तो वह अदालत मे छोटी-मोटी वात भी कर लेता है । चूँकि उसके सीनियर वकील वार एसोसिएशन के सिक्रेटरी हैं और फैल मचाने और हर तीसरे दिन किसी भी मजिस्ट्रेट या जज के खिलाफ हडताल की धमकी देने के लिए मशहूर हैं, इसलिए प्रेमवल्लभ की डिग्रीरहित वकालत पर इजलास या साथ के वकील प्राय ऐतराज नही करते । अगर कभी ऐतराज हुआ तो प्रेमवल्लभ झट से जूनियर वकील के वजाय अपने को अपने सीनियर का मुशी वताकर इजलास मे वहुत विनम्रता के साथ निवेदन करता हे कि वकील साहव अभी हाईकोर्ट मे हैं, उनका मुकदमा दो घटे वाद लिया जाए । वहरहाल, अदालती छिपकली की हैसियत से वह दॉव लगाकर रोज वीस-तीस कीडे यानी रुपए खा जाता है । यल. यल वी. मे उसका यह आखिरी साल है ।

हमारे स्वभाव भी अलग-अलग हैं । आपसे क्या चोरी, मैं तवीयत मे सीधा-सादा हू पर हवा वॉधने के लिए लोगो को दिखाता रहता हूँ कि मैं वडा काइयाँ हूँ । प्रेमवल्लभ भीतर से वडा काइयॉ है पर लोगो को यही दिखाता रहता है कि वह वडा सीधा-सादा है । अपने सीनियर के साथ अक्सर शाम विताने के कारण उसे सिगरेट और शराव का चस्का भी लग चुका है । शराव मे भी रम और रमो मे भी फौजवाली रम—जिसकी सस्ती वोतले वह फौजी अफसरो के दलालो से ले आता है ओर उन्हे अपने और सीनियर के इस्तेमाल के अलावा जनसपर्क के काम मे भी लाता है । वह अव दूसरी दुनिया का हो गया है, इसलिए हमारी दोस्ती लगभग 'प्रेमपूर्ण निस्सगता' के धरातल पर टिक गई है ।

प्रेमवल्लभ लॅगडाकर चलता है और इसका एक इतिहास है ।

लगभग आठ साल पहले की वात है । तव मैं हाई स्कूल कर रहा था । गौर करने की वात है कि मैं यल यल वी 'कर' रहा हूँ, हाई स्कूल 'कर' रहा था-जैसे फिकरे इस्तेमाल करता हूँ, 'यल यल वी मे पढ रहा हूँ' 'हाई स्कूल मे पढ रहा था' नही कहता । क्योंकि, साल मे दो-चार महीने छोडकर, मैंने क्लास मे वैठकर कभी नही पढा । कभी मौका नही मिला, कभी जरूरत नही समझी । वहरहाल, उस साल हाई स्कूल करते हुए प्रेमवल्लभ ही ने सुझाव दिया कि हम लोग शहर मे एक कमरा किराए पर लेकर वाकायदा पढाई कर ले । उस साल डेली पैसेजरी मे दिक्कत आ गई थी । जिस ट्रेन से हम लोग रोज शहर पढने जाते वह एक्सप्रेस थी । हमारे स्टेशन से छूटने पर सीधे शहर के स्टेशन पर रुकती थी । पिछले कई स्टेशनो पर उसके रुकने की व्यवस्था

नही थी । पर उधर के डेलीवाले कदम-कदम पर उसकी चेन खीचते थे और होजपाइप निकाल देते थे । इस खिचिर-खिचिर मे गाडी हमारे स्टेशन पर हमेशा दो-ढाई घटा लेट आती पर हम लोगो का इतना रुतबा था कि वहाँ के बाद जजीर खीचने और होजपाइप निकालने का कारोबार नही हो पाता था । इसलिए हर हालत मे हम अपने स्कूल दूसरे घटे तक पहुँच जाया करते थे । पिछले दिनो उधर के डाउन स्टेशनो पर डेलीवालो का अत्याचार कुछ ज्यादा बढ गया था । ट्रेन हर तीसरे किलोमीटर पर रुकने लगी थी । हमने अपने डेली साथियो को समझाया, पर वे गदर से भागे हुए सिपाहियो के छोटे-छोटे गिरोहो की तरह कोई भी अनुशासन मानने को तैयार न थे । उनमे कोई ऐसा उम्दा नेता नही था जो पूरे समूह मे गुडागर्दी के मानदड निर्धारित करता । बहरहाल, हारकर रेलवे ने हमारे सेक्शन मे ट्रेन को एक्सप्रेस की जगह पैसेजर बना दिया और देखते-देखते वह तूफान गाडी खचडा बन गई । अब उससे स्कूल पहुँचने मे बाजाब्ता शुरू के तीन पीरियड छूटने लगे । चूँकि हाई स्कूल का मामला था और परीक्षा मे नकलबाजी पर सौ फीसदी भरोसा नही किया जा सकता था, इसलिए मैंने प्रेमबल्लभ के इस सुझाव को आसानी से मान लिया कि दो-तीन महीने शहर मे रह लिया जाए ।

जो कमरा किराए पर लिया उसे सिर्फ मकान-मालिक कमरा कहता था, सारी दुनिया की निगाह मे वह कोठरी थी । कमरे की हैसियत देने के लिए उसकी पिछली दीवार मे जो खिडकी थी वह अदर मकान-मालिक के बरामदे मे खुलती थी । पर बेपर्दगी बचाने के लिए उसे भीतर से बद कर रक्खा गया था । कमरे के अलावा सडास और बबा साझे मे था, इस शर्त के साथ कि इनका इस्तेमाल हम इतना सवेरे कर ले कि उनके घरवालो का क्यू घरवालो तक ही सीमित रहे । कमरे का दरवाजा बाहर जिस गली मे खुलता था वह कचरा, सुवर, घुमक्कड गाय और खुली नालियो के शहरीपन मे बसी हुई थी । पर उन दिनो इससे हमे कोई खास उलझन न थी । हमारे दिमाग मे शहर की यही छवि थी, हम आवारा गायो, सुवरो, टिमटिमाते या बुझे बल्वो, खुले सडासो को ही शहर समझते थे। चौडी सडको, खुले बाग-बगीचो, दूर-दूर बसे चमकती हरियालीवाले बँगलो को शहर का हिस्सा जानते हुए भी अपने शहर का हिस्सा मान नही पाते थे ।

हम दोनो ने इस कमरे मे रहते हुए पढना यानी स्कूल की पढाई का हालचाल देखना शुरू किया । पर उससे भी ज्यादा जरूरी था खाना, जो हम लोग कमरे के कोने मे कोयले की अँगीठी पर बनाते थे । चूँकि रसद के रूप मे आटा, दाल, चावल हम गाँव से लाया करते थे, इसलिए हमारी व्यजन-सूची दाल, रोटी और खिचडी पर खत्म हो जाती थी । मुर्गमुसल्लम, मटर पनीर, शाही कोरमा, कोफता, नरगिसी पुलाव आदि का जिक्र तो बहुत बाद मे पहले अफवाहो की तरह और बाद मे भूगोल की तरह हमारे सामने खडी शहरी परीलोक की दीवार ढह जाने के बाद आया ।

पत्थर का कोयला सस्ता था और स्टेशन के यार्ड का चुराया हुआ कोयला पडोस मे

ही बिकता था। पर पत्थर के कोयले की अँगीठी सुलगने मे घटो लेती थी और उसे सुलगाने मे भी बडी तवालत थी। इसलिए हम लकडी का कोयला जलाते। पर यह कोयला महँगा था, इसलिए हमने उसे भी गाँव से लाना शुरू कर दिया।

हमारे गाँव और स्टेशन के बीच, सुना जाता है, पहले बाग-ही-बाग थे। देशी आम के बागो का सिलसिला एक मील से ऊपर जाता था। हमारे बचपन मे, जब एक ओर वन-महोत्सव की गुहार पडी थी, दूसरी ओर ये सभी पुराने बाग कटने लगे थे। जब की यह घटना है, आधा इलाका कटकर साफ हो गया था और उसमे बनाए गए खेतो मे गेहूँ कम और रेह ज्यादा पैदा होने लगी थी। फिर भी स्टेशन तक आते-आते एक बहुत बडा बाग अब भी पडता था, जहाँ आम और महुए के पेडो के बीच मकोय और करौंदे की झाडियाँ, बडे-बडे बाँसो के झुरमुट और न जाने कितने ऊँचे, कितने पुराने इमली के पेड थे। बाग के मालिक ने ये इमली के पेड शहर के एक ठेकेदार को बेच दिए थे जो उन्हे कटवाकर वही उनका कोयला बना रहा था। हम लोग हर सनीचर को गाँव जाते और सोमवार को जब मुँह अँधेरे शहर की गाडी पकडने को स्टेशन की ओर भागते तो रास्ते मे अपना-अपना झोला इस कोयले से भर लेते।

दो-तीन हफ्ते यह कारोबार इतना सुचारू रूप से चला कि हम भूल ही गए कि कोयले के इन पहाडो की निगरानी के लिए कोई चौकीदार भी तेनात होगे और वे आसपास कही कुत्तो की तरह दुबके पडे सो रहे होगे। वहाँ कोयला इतना ज्यादा था कि झोला-दो-झोला निकाल लेने मे लगता ही नही था कि कोई इसे चोरी भी कह सकता है। 'तुलसी पछिन के पिये घटै न सरिता नीर' वाला भाव हमारे दिमाग पर छाया रहता था। इसलिए एक दिन जब पूरब मे लाली का नामोनिशान न था और घुप्प अँधेरे और कोहरे की बाँबी मे सारा बाग, सारे खेत-खलिहान ढके पडे थे और जब पिस्टन की तरह हाथ चलाते हुए हम अपने-अपने झोलो मे कोयला भर रहे थे तभी पीछे से एक ललकार सुनकर हम सचमुच ही चौंक पडे। निहायत गँवार उच्चारण से माँ की गाली देकर किसी ने पुकारा, "कौन है?"

घुप्प अँधेरे मे, घने बाग के बीच हम आँख मूँदकर निकलते तब भी आदत के सहारे हम राह से बेराह नही होते थे। पर इस वक्त जो भगदड मची उसमे हमे राह छोडकर भागना ही ज्यादा निरापद जान पडा। बिना आपस मे तय किए ही हम दोनो ने एक साथ बेलीक चलने की ठानी क्योंकि हम दोनो को ही पता था पीछा करनेवाला जानी-बूझी लीक का ही आदी होगा। उसी मे हम गच्चा खा गए।

लीक छोडकर हम भागे तो, पर सरपट नही भाग पाए। बाँसकोठियाँ रास्ते मे आ गई, करौंदे की एक झाडी मेरे सुएटर से चिपक गई और उसका एक छोर उस पर चढाकर ही मैं आगे बढ पाया। उधर प्रेमबल्लभ किधर निकल गया इसका मुझे कुछ देर पता नही चला। पीछेवाला गँवार अब भी पीछे था और इसका सबूत उसके मुँह से झरनेवाली धुआँधार गालियाँ थी। कुछ देर ही मे, जब तक बाग के दूसरे कोनो से 'कौन है' 'कौन है' की कुछ नई आवाजे इस हाहाकार मे शामिल हुई, एक दूसरे रास्ते से

प्रेमवल्लभ का आकार मेरी ओर बढता दीख पडा। तभी पीछा करनेवाले ने एक चीख मारी और उसी के साथ पूरी ताकत के साथ फेका गया एक डडा प्रेमबल्लभ के टखने मे आकर लगा।

पहले शब्दबेधी बाण जरूर होते होगे, नही तो सिर्फ भागने की आहट लेकर फेके गए इस डडे का निशाना इतना अचूक न होता। पर प्रेमबल्लभ की मर्दानगी का भी जवाब नही, देखने पर डडे का भरपूर वार झेलकर भी वह चिल्लाया नही, ओठो-ही-ओठो उसने एक गाली दी और उछलकर एक टॉग से हिरन की तरह कूदते हुए वह मुझसे आगे निकल गया। इसके बाद जब रेलवे लाइन के पास खुदे हुए गड्ढे मे वह भरभराकर गिरा तभी उसके मुँह से चीख निकली, और चीख भी कैसी? जगली हाथी के चिग्घाड-जैसी, जिसे घासफूस से ढके गड्ढे मे फॉस लिया गया हो।

पर बाग पीछे छूट चुका था। हम खतरे का दायरा पार कर चुके थे। मैंने हाथ का सहारा देकर प्रेमबल्लभ को गड्ढे से बाहर निकाला। उसे बाहर घसीटने पर मैंने पाया उसकी टॉग मे चोट आ गई है। और चाहे जो कुछ हुआ हो, पट्ठे ने कोयले का झोला हाथ से नही जाने दिया था। वैसे इस मामले मे मैं भी नही चूका था।

रेलवे केबिन मे जलता हुआ लैंप कोहरे मे सिगरेट के जलते सिरे पर चमक की बिंदी-जैसा दिख रहा था। पटरी के किनारे-किनारे हम उसी की तरफ बढे। पर अब प्रेमबल्लभ कराह रहा था, लॅगडा भी रहा था।

तब से आज तक वह लॅगडाकर चलता है। वक्त की बात है। डडे की चोट और उसके तुरत बाद गड्ढे की धचक से उसके टखने की हड्डी दरक गई थी। हम सोच-समझकर दो-चार दिन सेक-सॉक करते रहे और वहॉ यह कोयला सचमुच ही काम आया। फिर गॉव मे चूँकि हड्डी की हर अदृश्य चोट को यह मानने का चलन है कि वह जोड से उतर गई है, हमने उसे एक घोसी को दिखाया जिसे मुहल्लेवाले जर्राह कहते थे। घोसी ने टखने के साथ जो सलूक किया उससे प्रेमबल्लभ की टॉग उस हफ्ते बराबर झूलती ही चली गई। फिर जब तक हम यह सोचते कि इसे डॉक्टर को दिखाएँ या नही, और दिखाएँ भी तो किसे, तब तक सूजन घटने लगी। सेक से और अरडे के गर्म पत्तो को लपेटकर बॉधने से कुछ हफ्ते बाद प्रेमबल्लभ की टॉग ठीक हो गई, सिर्फ चलने मे थोडी-सी धचक रह गई जिसे वक्ते जरूरत अपमान करनेवालो द्वारा लॅगडाना कहा जा सकता है। अत में सोलहवीं सदी के सूरमाओ की सी राहचलतू चिकित्सा कराके प्रेमबल्लभ स्वस्थ हो गया, अग-भग हुआ, वह कोई खास बात नही। तैमूरलंग भी लॅगडाकर चलता था। और राना सॉगा की देह पर चोटो और घावो के निशान क्या कुछ कम थे?

''क्या रग है गुरू?'' का जवाब मैंने बेहिचक दिया, ''रगबाजी न झाडो वकील साहब। कितने दिन बाद मिले हो, कुछ पता है? कैसे आना हुआ? कोई मतलब की बात तो होगी ही।''

"मतलब न होता तो इस दुपहरी मे पॉच मील साइकिलिंग क्यो करता गुरू ? बताओ, दो सौ रुपए दे सकते हो ?"

"वापस कब करोगे ?"

"महीना-भर में।"

"सौ दे दूँगा।"

रुपए की बात सुन लेने पर अनजानी विपदा का डर अब मुझे नही रह गया था। मैं चारपाई से उठा, उसका हाथ पकडकर उसे बाइज्जत अपने साथ बैठाला। बैठकर उसने कहा, "सौ से नही, दो सौ से ही काम बनेगा।"

मुझे चार दिन पहले परमात्मा जी से तीन सौ रुपिया मिला था, दो सौ से ज्यादा ही बचा होगा; पर मैंने कहा, "तब इसके लिए परमात्मा जी से कहना पडेगा।"

"तो चलो, वही चलें।"

"आराम करो, वे दो-तीन घटे मे यही आएँगे।" सौ रुपए का नोट उसकी जेब मे ठूँसकर मैंने कहा, "तब तक इसे तो समेटो ही।"

एक-दूसरे का हालचाल लेने मे एक घटा लगा। एकाध नई खबरो को छोडकर कोई खास खबर नही थी। वह कालेज और अदालतो के किस्से सुनाता रहा। मैं परमात्मा जी के, इंजिनियर साहब के, मजदूरो के। पर वह मजदूरिनो के किस्सों के लिए ललक रहा था। उसने इधर-उधर जो नौजवान मजदूरिने देखी थी, उन पर 'पटाखा', 'सेक्स बम' जैसे शब्दो का प्रयोग करके मेरे नसीब की सराहना की। 'जवानी फटी पड रही है', 'गदराया जोबन' और 'हुस्न का धमाका' भी आया। मैं कैसे-कैसे ऐश कर रहा हूँ, इस कल्पना से वह लोटपोट हो गया। मैंने न इकबाल किया, न इनकार।

फिर, "गुरू तुम बडे हरामी हो।" आखिर मे, "यार, बडे मुँहचुप्पे हो गए हो। क्या कही कोई चोट खा गए ?" मैंने कहा, "मेरी छोडो, अपनी सुनाओ।" तब उसने अपने सीनियर वकील की विधवा बहन का नख-शिख-वर्णन किया, बताया कि बीस-तीस रुपए रोज की आमदनी के अलावा बोनस के तौर पर वह भी उसे जल्द ही मिल सकती है। मैंने चेतावनी दी, "बोनस मे दम जूते भी मिल सकते हैं।" वह खुश हुआ, बोला, "अब बोले बेटा तुम अपनी बोली।" मेरे ऐश के बारे मे उसके जो ख्वाब थे, उन्हें उसने फिर से दोहराया। कहा, "पर तुम्हे बोनस मे तो ऐश-ही-ऐश पाना है।"

आँखो को आधा मूँदकर, सिर ऊपर उठाकर वह कहता रहा, "गाँव की गोरियाँ हैं, बहुत सीधी-सादी। पॉच रुपए का नोट दिखाकर धीरे-से उनके आँचल मे बॉध दो, फिर काम निकल जाने के बाद वही नोट उसी तरह धीरे-से खोलकर अपनी जेब मे डाल लो। उनको पता भी नही चलेगा कि क्या दिया, क्या पाया।"

मजाक मे कोई ऐसा खास शोहदापन न था—इतना दो नौजवानो की बात मे होना ही चाहिए—पर मेरी तबीयत उखड गई। प्रेमवल्लभ जैसे ठडे दिमाग के सामने उखडी तबीयत का सीन पेश करना भी हेठी की बात थी। फिर भी इसका ध्यान आने के पहले

ही मैं उसे लगभग एक लेक्चर पिला चुका था। मैंने कहा

"भाई, माना कि तुम ऊँचे दर्जे के लुच्चे हो, पर हर बात का मजाक ठीक नही होता। इसानियत भी कोई चीज होती है। जिन लडकियो के लिए तुम बकवास कर रहे हो, उनकी हालत का तुम्हे कुछ पता भी है ? ये सोलह-सोलह, अठारह-अठारह साल की लडकियाँ, या बच्चे को पेट या गोद मे लेकर घूमती हुई औरते, जो यहाँ मकान बना रही हैं या उधर भट्ठो पर ईंटो का काम कर रही हैं, ज्यादातर छत्तीसगढ से आई हैं। वहाँ इनके पास कुछ नही है। छोटी-मोटी जोत हुई भी तो साल मे मोटे-झोटे अन्न या धान की एक फटीचर फसल हो जाती है। मजदूरो के दलाल उन्हे एडवास देकर यहाँ ले आते हैं। पर पूरे खानदान के खानदान मजदूरी की तलाश मे इतनी दूर तक आकर क्या पाते हैं ? आधी-तिहाई मजदूरी, सुवरबाडे-जैसी झोपडियाँ, बेइज्जती, बीमारी! कानून मे बंधुआ न होते हुए भी ये सबसे कडी जकड में फँसे हुए बँधुआ मज़दूर हैं। न इनके लिए कोई फैक्टरी ऐक्ट है, न कोई लेबरवाला कानून। होगा कोई मिनिमम वेजेज ऐक्ट, पर सरकार उसे न जाने कहाँ छिपाकर बैठी है। और हर हालत मे खुश रहनेवाली, अपनी इन सेक्स-बम-जैसी लडकियो की हालत जानते हो ? यहाँ की बात छोडो, उधर वे जो भट्ठे पर काम करती हैं, उन्हे पूरे दिन खटने का आज भी मुश्किल से साढे पाँच रुपिया हजार मिलता है। वे दो सौ-ढाई सौ गज की दूरी से कच्ची ईंटे ढोकर भट्ठे पर पहुँचाती हैं। एक खेप मे वे सिर पर ग्यारह ईंटे ढोती हैं। दिन-भर मे उन्हे कितना मिल जाएगा ? तुम्ही जोड लो। फिर उसमे से कुछ रुपिया सरदार खीच लेगा। सरदार, यानी दलाल। उसे अपना एडवांस भी वापस लेना है। बचे-खुचे मे वे थोडा भात राँध लेती हैं। सबेरे नमक-रोटी या कोई साग। और अगर बुखार मे पड गईं तो सरदार दवा के लिए दूसरा एडवास दे देगा और उसे जनम-जनम की दासी बना लेगा।"

"क्या समझे गुरू ?"

"समझ गया गुरू समझ गया। इसका मतलब यह कि अब तुम नेतागिरी पर उतारू हो। कोई हर्ज नही। नेतागिरी मे भी कम ऐश नही है।"

ऐसा मजमून जो किसी भी वक्त हमे सजीदगी के दलदल मे ढकेल सकता था, हमारे बीच ज्यादा देर टिकनेवाला न था। थोडी देर मे हमारी बातचीत का रुख दूसरी ओर मुड गया। प्रेमवल्लभ ने जिन दो नई खबरो का इशारा शुरू मे किया था, उसके रग-रेशे दिखने शुरू हो गए।

पहली खबर एक कुँअर साहब हैं, यानी किसी पुराने खस्ताहाल तअल्लुकेदार के लडके, जो अपनी देहाती हवेली छोडकर बबई मे जा पडे हैं। सिनेमा की कुछ हस्तियो से पियक्कडी की हालत मे जान-पहचान कर बैठे हैं, उनकी शह पर कुछ लाख रुपए फूँककर एक 'खूनी हसीना' टाइप की फिल्म बना चुके हैं, अब वे एक नई फिल्म बनाने के चक्कर मे अपनी जन्मभूमि के आसपास चक्कर काट रहे हैं। उन्हे 'गाँव की गोरी'

जैसी किसी समस्या पर एक 'सबजेक्ट की तलाश है। परसो एक धुआँए-धुँधुआए होटल के मैले-कुचैले कमरे मे आनद जी नाम के सज्जन वकील यानी प्रेमबल्लभ के सीनियर के साथ खुद प्रेमबल्लभ रम के ग्लासो पर कुँअर साहब से टकरा चुका है। कुँअर साहब सस्ती रम पीते हुए उन्हे बता चुके हैं कि वे या तो स्कॉच व्हिस्की पीते हैं या देसी रम। जो भी हो, रम की सध्या-छाया मे उन्हे हमारे मित्र प्रेमबल्लभ जी एक 'जीनियस' नजर आए हैं। प्रेमबल्लभ ने उन्हे 'गाँव की गोरी' नामक विषय पर, आशु-कविता की अदा मे, कई कथाएँ सुनाई हैं। कुँअर साहब उन्हे सुनकर चित हो चुके हैं। उन्होने उन्हे एक खास कहानी को सिनेमाई स्क्रिप्ट के रूप मे तैयार करने के लिए कहा है। बबई आने का न्यौता दिया है। कहानी और स्क्रिप्ट के लिए कुछ हजार रुपिया देने का इशारा किया है, फिर भी प्रेमबल्लभ मे इतनी समझ है कि ऐसा रुपिया उसे कोई न देगा। जो भी मिल जाए—रम, खाना या फर्स्ट क्लास मे बबई की यात्रा—इसी उम्मीद मे प्रेमबल्लभ अब इस कहानी के उद्भव और विकास मे अपने दिमाग को उलझाए हुए है। अभी मजदूर महिलाओ को लेकर जो मज़ाक चल रहा था, वह इसी फिल्म की रचनात्मकता का खुमार है।

"पर छोडो भी गुरू ।"

दूसरी खबर

एक वकील साहब कचहरी के किसी बाबू को घूस देने गए। वे किसी फाइल से कोई कागज गायब कराना चाहते थे। सुना जाता है कि बाबू ने पहले एक छोटी रकम एडवास मे ली बाद मे कह दिया कि फाइल से वह कागज पहले से ही गायब है। एडवांस की वापसी को लेकर दोनो मे झगडा हुआ, गाली-गलौच के रस्मी प्राक्कथन के बाद हाथापाई होने लगी। पहले हाथ चला, फिर पॉव। इसके बाद कचहरी मे दगा हो गया। एक दल बाबुओ का था, एक वकीलो का। हालत ज्यादा बिगडने पर पुलिस और मज़िस्ट्रेटो का तीसरा दल भी शामिल हो गया। फिर वकीलो ने आदोलन छेड दिया—बाबुओ ने भी। दोनो ने हडताल कर दी। बाबुओ के प्रादेशिक सगठन ने वकील की गिरफ्तारी की मॉग की, उनके अनुसार हाथ पहले उसी के ओर से चला था। वकीलो के प्रादेशिक सगठन ने कचहरी मे व्याप्त भ्रष्टाचार की समाप्ति, कलेक्टर की मुअत्तली और न्यायिक जॉच की आवाज उठाई। बाबुओ ने नारे ज्यादा लगाए, तकरीरे कम दी। वकीलो ने तकरीरे ज्यादा दी, नारे कम लगाए। दोनो ओर से अच्छी-खासी गुडागर्दी हुई। बाद मे बाबुओ ने हडताल वापस ले ली। वकील हडताल पर अटल रहे। पहले कुछ इक्का-दुक्का बुजुर्ग वकील विवेक और धीरज की बात करते थे। चार-छह दिन बाद उन्हे साबित करना जरूरी हो गया कि वे टोडी बच्चा नही हैं। वे भी हडताल को पुख्ता और बुजुर्गाना शक्ल देने लग गए। यानी, कलेक्टर की मुअत्तली की बात तो उन्होने युवाशक्ति पर छोड दी, खुद सरकारी कर्मचारियो मे फैले भ्रष्टाचार की निराकार प्रतिमा के विध्वस मे लग गए। फिलहाल, सारी अदालते बद न होकर भी बद हैं, कलेक्टर के तबादले और

तरक्की—दोनो के एक साथ होने की खबरे आ रही हैं, और लगता है, इस बार कचहरियो से भ्रष्टाचार का सफाया होकर ही रहेगा।

जो भी हो, प्रेमवल्लभ की दैनिक आमदनी मारी गई है। पर उसे एक अनोखा मौका मिल गया है। जब तक वकील हडताल पर हैं और अदालतो को लकवा मारा हुआ है, वह अपने सीनियर की विधवा बहन पर चौबीसो घटे केंद्रित रहने को स्वतत्र है। यह दूसरी बात है कि वह कल ही अपनी ससुराल चली गई है।

हमारा आचारशास्त्र इसकी इजाजत नही देता था कि दोस्त उधार माँगे तो उसका मकसद पूछा जाए। पर मुझे शुबहा हुआ कि प्रेमवल्लभ इजलासबदी और हडताल के निठल्ले दिनो मे विधवा के पीछे-पीछे ससुराल तक पहुँचना चाहता है और मेरी गाढी कमाई के दो सौ रुपयो को अपनी प्रेमबेलि के थाले मे यूरिया, सुपरफास्फेट और पोटाश के मिक्श्चर की तरह डालकर उसे हरा-भरा, मजबूत और फलदार बनाना चाहता है। पता नही हमारे बीच कैसा बेतार-का-तार खिचा था कि मेरे ऐसा सोचते ही प्रेमवल्लभ ने कहा, "गुरू, धर पर बैलो की गोई की समस्या है।" 'समस्या' हमारे बीच बडा विद्वतापूर्ण शब्द माना जाता था और उसे मुँह से निकालते वक्त चेहरा लटका लेने की परपरा थी। "एक बैल मर गया है, दूसरा गरियार है। पूरी गोई खरीदनी पडेगी। मैंने बाप को एक हजार की मदद देने का वायदा किया है। उसी मे कुछ कमी पड रही है। सोचा, तुम्हारा अच्छा वक्त चल रहा है। चलकर तुम्ही को पकडा जाए।"

बिलकुल साफ़ था कि वह बेमतलब और सरासर झूठ बोल रहा है। मवेशीचोरो के खानदान मे बैल कब से खरीदे जाने लगे? फिर भी मैंने नाक सिकोडकर यह सफाई सुनने से विरक्ति प्रकट की, ऐसा जाहिर किया कि कोई भी वजह हो, मेरे लिए सभी बराबर हैं। रुपिया देना है, दे दूँगा।

जब उसे भरोसा हो गया कि रुपए के बारे में अपनी जरूरत को और परिवार के प्रति अपनी बलिदान-भावनाओ को वह बखूबी उजागर कर चुका है तो वह हल्का हो गया। इसके सबूत मे मेरे पिछले गभीर व्याख्यान को बिलकुल भुलाते हुए उसने फिर 'पटाखा' और 'गदराया जोबन' वाली बाते शुरू कर दी। इस बार मैंने कुछ नही कहा, सिर्फ मुँह से सीटी बजाते हुए बाहर की ओर ताकना शुरू कर दिया। लुच्चे बकवास करते रहते हैं और भले आदमी सीटी बजाते हुए परमात्मा जी के प्रकट होने का इतजार करते हैं।

परमात्मा जी प्रकट हुए। मैंने दौडकर मोटर पर ही उनका स्वागत किया। तब तक दिन के चार बज चुके थे, आसपास सडक की पटरी पर पडी सुर्खी और बालू के बवडरो मे बच्चे खेल रहे थे। उनसे बहुत दूर, जहाँ सडक के लिए मिट्टी काटी गई थी, धूल के असली बवडर—लबे और पेचदार—अपना असली खेल दिखा रहे थे। मैंने कार की खिडकी मे झाँककर परमात्मा जी से कहा, "बडी गर्मी है।" शीशा नीचा कर दिया गया था। गर्म हवा के एक थपेडे ने मेरी ताईद की। ड्राइवर मुझे धकियाकर दरवाजा

खोलने जा रहा था । मैंने उसे रोका, जल्दी से सौ रुपए का नोट परमात्मा जी के हाथ मे चुराकर पकडाने की कोशिश की, कहा, "एक दोस्त वहाँ कमरे में है । इसे आप उसको उधार दे दीजिएगा ।" परमात्मा जी गाडी से नीचे उतरे, नोट उनकी बुशर्ट की जेब मे पहुँच गया था, पर जवान ने उल्टी बात कही, "हमे अपनी धमाचौकडी मे क्यो डालते हो भाई ?" मैंने कहा, "मुझसे लेकर देने का नाम न लेगा । पुराना क्लासफैलो है । आपके नाम पर शायद वापस कर दे । इसीलिए आपके हाथ से दिला रहा हूँ ।"

परमात्मा जी ने अदर आते ही प्रेमवल्लभ को देखकर पूछा, "तुम्ही ने तो परसो कचहरी के फाटक का ताला तोडा था ?"

प्रेमवल्लभ ने गौर से परमात्मा जी को देखा और मेरी ओर मुडकर पूछा, "आपकी तारीफ ?"

"जीजा जी को नही पहचानते ? परमात्मास्वरूप जी, ऐडवोकेट ।"

"माफ कीजिएगा, मैंने आपको पहचाना न था ।" उसने लपककर जीजा जी के चप्पल छुए ।

पर परमात्मा जी अपनी ही धुन मे थे । इस शिष्टाचार से प्रभावित हुए बिना बोले, "तुम आनद साहब के जूनियर हो न ?"

"जी नही, मैं तो अभी पढ रहा हूँ ।"

"तो उस दिन वकीलो की भीड मे ताला तोडने कैसे पहुँच गए थे ?"

प्रेमवल्लभ ने रौब, मुलायमियत, तिरस्कार और घरेलूपन—सबको मिलाकर बडे इत्मीनान की आवाज मे जवाब दिया, "आप क्या कह रहे हैं ? मैं इस बारे मे कुछ नही जानता । अखबार मे जरूर पढ़ा था कि कुछ वकील फाटक कूदकर कलेक्टरेट के अहाते मे पहुँच गए, कुछ ने ताला तोड दिया, फिर उन्होंने अहाते मे सभा की, बडे-बडे प्रस्ताव किए।" फिर "क्या आप भी उस भेडियाधसान मे थे ?"

परमात्मा जी उसे देखते रह गए, मुझसे बोले, "इनसे बात खत्म कर लो तो फिर हम अपनी बाते शुरू करे ।"

"यह तो जा रहा था । सिर्फ आपके आने तक मैंने इसे रोक लिया था । दरअस्ल, इसे कुछ रुपयो की जरूरत है, मेरे पास कुछ कम पड रहा है । सौ रुपिया आप दे दें तो काम बन जाएगा ।"

परमात्मा जी ने प्रेमवल्लभ को घूरते हुए कहा, "इन्हे तो मैं जानता भी नही । कचेहरी मे इन्ही जैसे किसी को देखा था, पर ये कहते हैं कि ये वह नही हैं । तुम चाहो तो मैं तुम्हे रुपिया दे दूँगा । उसके बाद तुम जानो, तुम्हारा काम जाने ।"

प्रेमवल्लभ ने अचानक मेरी पीठ पर हाथ रक्खा, बडे प्यार से कहा, "क्यो परेशान होते हो भाई, आज रुपए नही हैं तो लौटालने की जल्दी क्या है? फिर कभी दे जाना । इतना फिक्र करने की क्या बात है ?"

मैं कुछ कहता, इसके पहले ही वह परमात्मा जी से बोला, "इसे आप जानते ही हैं ।

बात-बात पर तुनकता है। बात आपसी लेन-देन की थी, पर यह आप तक पहुँच गया।"

"अच्छा भाई, फिर मिलेगे।" कहकर वह तेजी से चल दिया। मैं लपकता हुआ उसके पीछे-पीछे बाहर तक आया, जेब से सौ का एक नया नोट निकालकर उसके हाथ मे थमाया, कहा, "यह नौटकी करने की क्या जरूरत थी ?"

उसने नोट ले लिया, पर उसकी निगाह तनी रही। कहने लगा, "यह साला जीजा भी अव्वल दर्जे का खबीस है। आते ही कचेहरी के किस्से से टकरा गया। मुझसे यो बोल रहा था जैसे मैं कोई पाकेटमार हूँ।"

मैंने बडी सजीदगी से जवाब दिया, "चलो, कोई तो तुम्हे पहचाननेवाला मिला। देखनेवाले कयामत की नजर रखते हैं। क्या समझे, गुरू ?"

उसने दोनो नोट इत्मीनान से मोडकर अपनी पर्स मे रक्खे और पर्स पतलून की पिछली जेब मे रक्खी। मेरे मजाक को अनसुना करके एक स्वतत्र वक्तव्य दिया, 'मैं किसी चिडीमार का एहसान हरगिज नही ले सकता।"

मैं उसके सिद्धातो से पूरी तरह परिचित हूँ, यह दिखाने के लिए मैंने सिर हिलाया। वह कहता रहा, "तुम्हे दिक्कत हो तो ये रुपए वापस ले लो। मैं तुम्हारी हालत समझता हूँ। मेरे लिए ज्यादा फिक्र न करो। कोई-न-कोई इतजाम हो जाएगा।'

अभिप्राय यह था कि मैं उसके पॉव पकडकर गिडगिडाऊँ और कहूँ कि ए भैया प्रेमबल्लभ, मेरा दिल न तोडो। ये रुपए स्वीकार करके मुझे भी सेवा का अवसर दो। पर मैं इस नाटक से थक गया था। यह कहने के लिए कि अब रफूचक्कर हो जाओ, पूछा, "अब कब आओगे ?"

साइकिल का हैंडिल एक हाथ से थामकर दूसरे हाथ से वह अपनी कमर खुजलाने लगा। यकीनन गर्मी के मौसम मे वहॉ दाद उभरा होगा। पर अपनी समझ मे वह सोचने का अभिनय कर रहा था।

"*कभी भी आ सकता हूँ। अभी तो कचहरी मे भी कोई काम नही है। हडताल चल रही है।*" अचानक उसकी आवाज मे बुलबुले फूटने लगे, "सुनो यार, अभी तुम इन मजदूरो के बारे मे जितना चहक रहे थे, मैं उसी पर सोच रहा हूँ। इन भट्ठेवाले और ठेकेदारो के खिलाफ कुछ किया जाना चाहिए। पर खटिया पर बैठकर तुम्हारी तरह लेक्चर झाडने से कुछ नही होने का। सोचो यार, कुछ सोचो। कोई बडा काम हाथ मे लिया जाना चाहिए। देखो, मैं भी दिमाग लगाऊँगा। कोई ऊँची स्कीम बननी चाहिए।"

इस तरह उस अजूबे अगियाबैताल का जन्म हुआ जिसे 'उत्तर प्रदेश दैनिक मजदूर सघ' के नाम से कुछ लोग आज भी याद करते हैं। पर उसकी चर्चा कुछ देर बाद।

6

''अब सरकार नाम की कोई चीज नही रही। अंग्रेज एक कूडे का ढेर छोड गए थे। नौकरशाही। उसी की सडॉध मे हम लोग सॉस ले रहे हैं। हालत बडी खराब है। गधे जलेबी खा रहे हैं। हर शाख पे उल्लू बैठा है। सीधे-सादे लोगो को कोई नही पूछता ''

परमात्मा जी उदास आवाज मे धीरे-धीरे ऐसे ही अनमोल बोल निकालते जा रहे थे। अचानक मुझे लगा कि वे बूढ़े हो रहे हैं, नही तो चार कोठी, नई कार और एक नई नवेली दुलहन का स्वामी जमाने को लेकर ऐसी लस्त-पस्त बाते क्यो करता? मेरी निगाह उनकी खोपडी के गोलाकार ऊसर पर जाकर टिक गई। उसका रकबा कल के मुकाबले आज कुछ बढा हुआ दीख पडा। तब तक उन्होने कहा, ''और हमारे इंजिनियर साहब जैसे भले आदमी रगडे जा रहे हैं।''

पिछला घटा मकान की प्रगति-समीक्षा में बीता था। परमात्मा जी हर काम मे खुचड निकाल रहे थे। अपनी रणनीति के अनुसार मैं हर खामी की जिम्मेदारी इंजिनियर साहब पर थोपता जा रहा था और हर खूबी को अपने से जोडता जा रहा था। इंजिनियर साहब को लेकर मेरे और परमात्मा जी के बीच कुछ वही स्थिति पैदा हो गई थी जिसे 'मैत्रीपूर्ण असहमति' कह सकते हैं। इस समय मैंने 'नम्रतापूर्ण अपमान' की नीति अपनाकर कहा, ''जीजा जी, आप कहते हैं भले आदमी? इसका मतलब यह कि आप अब सौ फीसदी शहराती हो गए, बकरी और लकडबग्घे मे भी फर्क नही कर पाते?''

''इसका मतलब यह कि तुम गँवार हो। भला आदमी तुम्हे कही पहचान ही मे नही आता।'' कहकर परमात्मा जी सजीदा हो गए। तुनककर बोले, ''इंजिनियर साहब भले आदमी हैं। सज्जन पुरुष। और काबिलियत में तो उनका कहना ही क्या? तुम्हारी तरह उन्होने नकल के सहारे थर्ड डिवीजन नही पाई है। क्या समझे? सिविल इंजिनियरिंग में अपने कालेज मे उन्होने टाप किया था। क्या समझे? इसी मे उनके मुहकमे मे लोग नीचे से ऊपर तक जलते हैं। 'ब्रेन ड्रेन' का नाम सुना है? सारे काबिल इंजिनियर और डॉक्टर विलायत की ओर क्यो भाग रहे हैं? क्यो? इसलिए कि काबिल आदमी की यहाँ कद्र नही है। गधे जलेबी खा रहे हैं।''

'हर शाख पर उल्लू बैठा है।'' मैंने कहा।

''बिलकुल।'' वे रुके आवाज़ पर काबू पाकर बोले, 'ये जो तुम्हारा दोस्त यहाँ बैठा था न, क्या नाम है उसका ।''

''प्रेमवल्लभ। '

''हाँ प्रेमबल्लभ। तुम समझते नही हो। छटा हुआ शोहदा है। एक दूसरा शोहदा है रामरतन। हमारी ही जमीदारी का कुर्मी है, कुर्मी नही काछी। उसका बाप आज भी आधे बीघा खेत मे करैला-कद्दू उगा रहा है। वह यहाँ पर बार असोसिएशन का ज्वाइट सिक्रेटरी बन बैठा है ।

'आप तो इंजिनियर साहब जैसे भले आदमी की बात कर रहे थे। ये कुर्मी काछी बीच मे कहाँ से घुस आए ?''

'वही बता रहा हूँ। कचहरी मे वकीलो की जो हडताल चल रही है न, वह इसी रामरतन की कारस्तानी है। और तुम्हारा दोस्त प्रेमबल्लभ उसी का साथी है। झगडा बचाने के लिए कलेक्टर ने कचेहरी के फाटक पर ताला डाल दिया था। पर इसी प्रेमबल्लभ ने फाटक लॉघकर ताला तोड दिया। सभी लौंडे-लफाडी वकील अदर घुसकर मीटिंग करने लगे, उसी से मारपीट हुई। बात और बढ गई। अब हडताल जमकर चल रही है। समझौते का कोई रास्ता नही बचा। तभी प्रेमबल्लभ को यहाँ देखकर मेरी देह जल उठी थी। क्या समझे ?''

मैं यही समझा कि परमात्मा जी आवेश मे हैं। आवेश मे आने पर ही वे अपनी हर बात के पीछे 'क्या समझे' का सपुट जोडते हैं। मैने उन्हे ठडा करने के लिए कहा, ''आप ठीक कहते हैं जीजा जी, यह प्रेमवल्लभ कुछ ऐसा-वैसा ही है। मेरी उससे कोई वैसी दोस्ती भी नही है। पर हम लोग बरसो साथ-ही-साथ डेली पैसेजर रहे हैं। वही की मुलाकात है। ''

''मैं तुम्हे थोडे ही कुछ कह रहा हूँ। सिर्फ बता रहा था कि इन लोगो की हडताल ने इजिनियर साहब का बना-बनाया मामला बिगाड दिया।

''इजिनियर साहब के मामले मे हाई कोर्ट ने पिछली बार सरकार को रगड दिया था। हारकर सरकार को इजिनियर साहब की तनख्वाह देनी पडी। अब अगली पेशी मे उनकी मुअत्तली और जॉच के मुद्दे पर बहस हो जाती। पर जानते हो सरकार ने इसी बीच क्या किया ? यह किया कि उनकी मुअत्तली का हुक्म वापस ले लिया। उन्हे अपनी पुरानी जगह पर चार्ज दे दिया। उसके बाद, इजिनियर साहब समझ भी न पाए थे कि क्या हो रहा है कि उन्हे चौथे दिन फिर मुअत्तल कर दिया। और इस बार जो चार्जशीट पकडाई है उसमे पुराने चार्जो मे फेरबदल कर दिया है, दस नए चार्ज जोड दिए हैं। इस तरह अब उन्होने एक बिलकुल नई जॉच शुरू कर दी है।

''पुरानी मुअत्तली और पुरानी जॉच के खत्म हो जाने के बाद इजिनियर साहब की जो याचिका हाई कोर्ट मे चल रही थी, वह बेकार हो गई है। 'इन्फ्रक्चुअस' जानते हो ?

नही जानते तो यल यल बी काहे को पढ रहे हो ? वह इन्फ्रक्चुअस हो गई है। अब उन्हे इस नई मुअत्तली के खिलाफ नई याचिका दायर करनी पडी है।

"याचिका तो दाखिल हो गई पर हमारे अधिवक्ता सघ के नेताओ की नेतागिरी उसे खा गई। देखो, वकीलो की हडताल का यह नतीजा हुआ कि भाइयो ने मुझे कोर्ट मे घुसने नही दिया। इंजिनियर साहब खुद ही याचिका दायर करने गए। साथ मे यह दरखास्त भी कि मुअत्तली के हुक्म को स्थगित कर दिया जाए। उनकी तरफ से कोई वकील तो पैरवी के लिए था नही जो कहना था, उन्होने खुद ही कहा। जज साहब ने बडे ध्यान से सुना, याचिका सुनवाई के लिए ग्रहण कर ली। पर स्थगन-आदेश देने मे इनकार कर दिया। तुमने इस बार गवर्मेंट की हरामजदगी देखी ? मुअत्तली के साथ ही सरकार ने उन्हे चार्जशीट भी पकडा दी थी। जज साहब ने सारे आरोप पढे और पूछा, 'गौतमविहार मे वह चौमंजिला पन्नालाल मार्केट आप ही का है ?' इंजिनियर साहब ने कहा, 'हरगिज नही, माई लार्ड।' यह सुनते ही उन्होने मुअत्तली के स्थगन की प्रार्थना खारिज कर दी। इतनी तेजी से खारिज की कि इंजिनियर साहब को हैरत हो गई। वे अब भी सोच रहे हैं कि अगर उन्होने पन्नालाल मार्केट का मालिक होना स्वीकार कर लिया होता तो शायद मुअत्तली से बच जाते।

"दरअसल, इंदिरा जी ने देश के लिए कई बडे-बडे काम किए हैं। हिंदुस्तानी का स्वभाव ही ऐसा है कि अपने बाप का भी एहसान नही मानता, इंदिरा जी का न माने तो कोई नई बात नही। इन हाई कोर्ट के जजो को सही सबक उन्होने ही सिखाया था। तुम कहाँ हो ? पजाब हाई कोर्ट मे ? तो जाओ सीधे आसाम। और बगाल के हो तो जाओ कर्नाटक। तभी कायदे से इसाफ हो सकता है। यहाँ क्या है ? एक टुटहे तख्त पर दरी बिछाए बैठे रहते थे और हलफनामो की पाँच-पाँच रुपए मे तस्दीक करते थे। यही उनकी वकालत थी। किस्मत ने पलटा खाया, उसी रेले में हाई कोर्ट के जज बना दिए गए। कभी पैसा देखा नही। सो दूसरे के पास दस पैसा देखते ही चेहरा भभूका हो जाता है। चार्जशीट मे देख लिया कि पन्नालाल मार्केट की मिल्कियत इंजिनियर साहब से जुडी है। अब न उन्हे सच्चाई से मतलब न झूठ से। यही के रहनेवाले हैं, सिर्फ इस शबहे पर कि इंजिनियर साहब बडे आदमी हैं, उन्होने उनकी मुअत्तली पक्की कर दी। यह है हमारे देश का न्याय!"

उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश ने एक व्याख्यान मे कहा था कि हमारे देश का न्यायतत्र भरभराकर गिर रहा है। यह मैंने हाल ही मे अखबार मे पढा था। मैंने परमात्मा जी को यह सुनाकर उनसे सहमति दिखाई, इंजिनियर साहब से सहानुभूति प्रकट की, फिर पूछा, 'यह पन्नालाल मार्केट तो बहराइच के किसी कलवार का है न ?"

'क्या बकते हो ? इंजिनियर साहब के ससुर का है। तो क्या इसी से इंजिनियर साहब को सूली पर चढा दोगे ?'

मैंने इससे भी सहमति दिखाई, यानी इंजिनियर साहब को सूली पर नही चढाया जा

सकता। परमात्मा जी ने कहा, "आज इन लोअर कोर्ट के वकीलो ने मुझे बाहर न रोक लिया होता तो इंजिनियर साहब मूँछो पर ताव देते घूम रहे होते।"

क्यो नही—बशर्ते कि उनके मूँछे होती।

चूना, सुर्खी, गिट्टी, ईट, लोहे आदि के झाड-झखाड। जहाँ मैंने एक साफ-सुथरी जगह निकालकर खटिया डाली थी, वहाँ से मैं सभी दिशाओ मे सबकुछ देख सकता था। सडक-पार जगमगाती ट्यूबलाइट की दूर तक खिची कतार, उसके बीच-बीच चौराहो पर दमकते हुए मरकरी बल्ब। पर यह सब सिर्फ सडक पर। उनके किनारे जो अधबने मकान पडे थे, उनकी मटमैली दीवारो के भीतर हल्की रोशनी के बल्ब टिमटिमा रहे थे। उन दीवारो के पास कई जगह बढई और लोहारो के काम की खटर-पटर अब भी चल रही थी। उन्ही इमारतो के इर्द-गिर्द जलते हुए चूल्हे, और ईट के दरबो से उजाला फेकती ढिबरियाँ। इन सब पर अपनी धौंस गाँठती हुई बुरी नजरवाले तेरा मुँह काला—छाप ट्रको की हेडलाइटे, जो हर मिनट पर चारो ओर रोशनी का बवडर उठाती हुई आती थी और गुबार के धमाके मे खो जाती थी। हार्न की तीखी आवाज़े।

गर्मी, उमस, धुआँ और धूल-धक्कड के बावजूद खटिया पर पडे-पडे मैं कवि नीरज की एक कविता गुनगुनाने लगा—उनकी इकतारा-छाप तर्ज पर नही, बल्कि अपने ढग से। यह मेरा निजी अदाज था।

बहरहाल, नीरज कवि की कविता ट्रको के हार्न और आसपास बजते हए ट्राजिस्टरो से टक्कर लेती हुई कुछ देर तो चली पर जब उसकी टकराहट सुरेस के 'गो-गो' से हुई तो उसका चक्का जाम हो गया। सुरेस को लेकर मेमसाहब मेरी खटिया के पास कब पहुँच गई थी, मैं जान नही पाया। उन्होने कहा, "यह क्या कह रहा है मुसी, बूझो तो?"

सडक के दूसरी ओर कुछ दूर आगे जो गली थी उसकी ओर वह बार-बार हाथ उठाकर इशारा कर रहा था। बहुत जोर से बोलने की कोशिश मे उसका मुँह समूचा खुल जाता था और 'गो'-'गो' के साथ आवाज की जगह मुँह बद होते-होते एक फुफकार जैसी सुनाई देती थी। मैंने मेमसाहब से पूछा, "यह कब आया?"

"अभी-अभी दौडता हुआ आया है। मेरा हाथ पकडकर उधर खीचे लिए जा रहा था। पता नही क्या कह रहा है।" फिर सुरेस से, "क्या है? काहे को घिघिया रहा है?"

मैने पूछा, "नेता कहाँ है?"

"गया तो इसी के साथ था। अभी नही लौटा। बैठ गया होगा कही ।"

पर नेता का जिक्र आते ही सुरेस ने मेरा हाथ पकडकर मुझे खटिया से खीच लिया। उसकी 'गो-गो' मे नई अकुलाहट आ गई। मैने हाथ खीचकर कहा, "क्या है बे?"

वह दौडता हुआ गली के मोड तक गया, वहाँ भी 'गो-गो' निकालता हुआ हाथ उठाकर दूर से इशारा करता रहा और फिर उसी तरह दौडता हुआ वापस आ गया। मेमसाहब बोली, "उधर जाने को कह रहा है।"

मैं पायजामा समेटता हुआ खडा हो गया, "उधर क्या है वे ?" कहता हुआ, सुरेस को लगभग धकियाता, गली की ओर चला। मेमसाहव ने कहा, "देख आओ मुमी जी, लगता है उधर कोई गडा हुआ खजाना देख आया है।"

गली चौक-राजाबाजार-काश्मीरी मुहल्ला जैसी नाकलपेटू गलियो मे नही थी। इस नई बस्ती मे सडके चौडी और सीधी हैं, कदम-कदम पर पार्कों, स्कूलो, अस्पतालो, बाजारो के लिए छूटी हुई जमीने हैं और स्कूली वच्चो की नोच-खसोट ओर पशुपालको की अराजकतावादी कटाई-छँटाई के वावजूद वचे हुए पेडो की हरियाली है। इन चौडी सडको से जो छोटी सडके फूटती हैं वे भी सीधी और जगमग हैं, सिर्फ इनके किनारे रहनेवालो की हैसियत कुछ घटिया है। इसलिए इन सडको को हम गली कहते हैं, वैसे पुराने शहर के हिसाब से इन्हे आसानी से हुसनेगज या नजरबाग की सडक कहा जा सकता है।

सुरेस की चाल और दौड मे फर्क करना मुश्किल था। उसके पीछे चलते हुए मुझे मुश्किल से अपने को दौडने से रोकना पडा। आधा किलोमीटर पार कर चुकने पर मुझे अपने पायजामे और छेदही वनियाइन का ख्याल आया और मैंने उसे रुकने को कहा। मैं इस पोशाक मे घूमने की स्वीकृत हद से दूर आ गया था। पर रुकने का हुक्म सुनकर सुरेस ने मेरी ओर 'गो-गो' का एक नया सैलाव फेंका और दाई ओर की गली की ओर हाथ उठाकर उसमे दस-बीस गज आगे निकल गया। हालत अब भी मेरे काबू मे है, यह साबित करते हुए मैंने उसे दो-चार गालियाँ दी पर वे वडे वेमन ढग से निकली, क्योंकि मेरा मन अब दूसरी ओर खिंच गया था।

मैं सोचने लगा था कि जो भी हो सुरेस मुझे किसी छिपे हुए खजाने के पास नही लिए जा रहा है। उसकी यह उतावली मैंने नेता से जोड ली थी और उम्मीद कर रहा था कि वह मुझे किसी ऐसे मकान मे पहुँचाएगा जहाँ नेता जुए मे सारा रुपिया हारकर, मेमसाहब को दाँव पर लगाकर, एक कोने मे वकरी की तरह वँधे हुए 'मे-मे' कर रहे होगे। यह न होगा तो गाँजा, भाँग, शराव का करिश्मा होगा जिसके असर मे वे कही अटागफील पडे होगे। मैं सुरेस के पीछे चलकर इस जजाल मे फँस जाने के लिए अपने को कोसने लगा था, तव तक वह दूसरी गली एक वडे चौकोर पार्क के पास आकर खत्म हो गई।

पार्क के एक ओर किसी स्कूल की लबी इमारत अधूरी वनी पडी थी, उधर अँधेरा था, सन्नाटा भी। एक ओर तीन-चार इकमंजिले वँगले वने थे, पर उनमे भी अभी कोई रहने को न आया था। एक ओर परचून, चूना-सुर्खी और लोहे-लक्कड की कुछ दुकाने थी जिनमे दो-चार लोग वैठे हुए थे। एक ओर खाली जगह पर यूकेलिप्टस के पेडो का घना झुरमुट था। पार्क के चारो ओर कुछ खभो की ट्यूवलाइटे खराव थी। पार्क मे इस वक्त आवारा कुत्ते भूँक रहे थे और एक-दूसरे पर झपट रहे थे। पार्क के चारो ओर लोहे

की ऊँची रेलिंग लगाई गई थी, पर वह जगह-जगह टूटी हुई थी। उसके लबे-लबे टुकडे लोग धीरे-धीरे निकालकर अपने घरो को सजाने मे लगा रहे होगे। किनारे-किनारे जमीन पर जो ईट का काम हुआ था वह भी नाकाम हो गया था, ईटे भी बेरहमी से उखाडी जा रही थी।

टूटी हुई रेलिंग के बीच बने एक रास्ते से सुरेस मुझे पार्क के अदर ले आया। रेलिंग के किनारे-किनारे चलकर वह एक जगह खडा हो गया और हाथ और मुँह से इशारे करने लगा। दोनो हाथ मत्थे तक ले जाकर उन्हे फावडा जैसा चलाते हुए वह जमीन की ओर झुका और फिर धरती के समानातर जैसे कोई बिस्तर बिछाया जा रहा है, हाथो को एक छोर मे दूसरी ओर ले जाने लगा। मैं सिर्फ इतना समझा कि यहाँ कुछ हुआ है। तब तक सुरेस ने बडी आजिजी से मेरा हाथ पकडकर मुझे नीचे झुकने का इशारा किया। उसकी चेष्टा की नकल करके मैंने जमीन पर इधर-उधर कोई ऐसी चीज खोजनी शुरू की जिसके बारे मे मैं कुछ नही जानता था। पहली निगाह मे, वहाँ कुछ था भी नही। तभी सुरेस ने उकडूँ बैठकर उँगली से चार-पाँच छोटे-छोटे धब्बो की ओर इशारा करते हुए हाथ झटका और मुँह से 'गो-गो' निकाली। मै भी उसी की तरह पजो के बल धरती पर बैठ गया। ज्यादा उजाला न था पर इतना था कि वहाँ सूखी मिट्टी पर पडे हुए बहुत छोटे धब्बे मैं देख सकूँ, यह भी समझ सकूँ कि ये खून के धब्बे हैं।

इस इलाके मे साफ-सुथरी जमीन कही नही मिलेगी, जहाँ भी मिट्टी होगी वहाँ पान की गदी पीक पडी होगी। पर कुत्तो की चिल्लपो और एक दुकान से निकलनेवाले हनुमान चालीसावाले शाम के उस सुनसान मे, दूर से रोशनी फेकनेवाले धुँधलके मे, मेरा मन उसे पान की पीक मानने को तैयार न हुआ। सुरेस का हाथ दबोचकर मैंने पूछा, "यह क्या है ? क्या हुआ है यहाँ ?" कहकर उसके हाथो के टेढ़े-मेढे इशारे और 'गो-गो' का नया दौर देखने के लिए रुके बिना मैं पार्क के बाहर निकल आया। इस जगह की सीध मे दूसरी ओर जो दुकान थी, वहाँ जाकर खडा हो गया।

दुकानदार एक थुलथुल किस्म का जीव था, गले मे तुलसी की कठी बाँधे बैठा था। मैंने पूछा, "साह जी, कोई झगडा-झझट हुआ था यहाँ ?"

साह जी चोर की तरह मुँह फेरकर तराजू और बाँट सँभालने लगे। फिर दूसरी ओर देखते हुए बोले, "क्या चाहिए ?"

मैंने इस सवाल के जवाब मे अपना सवाल दोहराया। साह जी ने कहा, "सौदा-सुलुफ की बात करो भाई। हम झगडा-झझटवाली बात नही करते।"

"वहाँ पार्क मे " पीछे से सुरेस ने अपने समूचे तनाव को नए सिरे से 'गो-गो' मे उतारने की कोशिश की। साह जी ने न मेरी बात पूरी होने दी, न सुरेस की। उसे ललकारकर कहा, "हट यहाँ से। कोई खैरातखाना खोल रक्खा है क्या?"

तब दो-एक और दुकानदारो से पूछताँछ की। पर वे सब साह जी ही की तरह सुरेस

से भी ज्यादा गूँगे निकले—अधे भी। मेरी परेशानी दुगनी हो गई। सुरेस का हाथ पकडकर पार्क के कोने से निकलनेवाली एक कम चौडी सडक से मै वडी मडक पर आ गया। यहाँ रिक्शो, बमो और ट्रको का शोर था। पर मेरे दिमाग मे जिस हथौडे की खटखट हो रही थी, उसके आगे यह सब पोच था। सडक के किनारे डॉक्टरो के जो क्लिनिक वैसाख मे छिपकली के बच्चो की-सी तेजी से बढ रहे थे उनमे से एक जो ज्यादा चमकदार दिखा, उसी मे मैं घुस गया। जैसी कि उम्मीद थी वहाँ एक टेलीफोन भी था। मैंने अपनी सभ्यता को एक-एक अक्षर से कपडछान करके फोन के इस्तेमाल की इजाजत माँगी। और जैसी की उम्मीद थी, डॉक्टर ने बताया कि टेलीफोन खराब है। उसने मुझे घूरकर देखा भी, जिसके असर मे मैंने भी अपने आपको देखा।

मेरी दाढी तीन दिन से नही बनी थी, बालो मे धूल होगी ही। बनियान मे छेद थे। पायजामा वही था जिसमे चार दिन से सो रहा था, पाँवो मे रबर के घिसे हुए हवाई चप्पल। इस आत्मदर्शन के बाद मेरे लिए अब किसी भली जगह मे मभ्यतापूर्ण स्वागत पाने की उम्मीद खत्म हो गई।

"कही पडा होगा इन्ही मिस्त्री के झमेले मे।" फिर सुरेस को देखने हुए मेमसाहब ने खनकती आवाज मे पूछा, खजाना मिला?"

मैने जवाब नही दिया। पतलून-बुशशर्ट पहनकर, बालो मे कँघी करके सडक पर निकल आया। एक दूसरे क्लीनिक से परमात्मा जी के यहाँ फोन मिलाया।

वे घर पर न थे। उधर से सावित्री ने पूछा, "कौन बोल रहा है?"

"मैं, मैं हूँ जिज्जी।

"तो बोलो न, क्या बोल रहे हो?"

शादी के बाद मैं उसे जिज्जी कहने लगा था। उसके भाई उसे यही कहते थे। वह उम्र मे मुझसे चार-छह महीने छोटी ही होगी। तभी उसे यहाँ जिज्जी कहने मे मजा आता था। यह एक खिलवाड था जिसे वह भी समझती थी। पर इस वक्त जिज्जी कहना खिलवाड नही लगा, उसमे सहारा जैसा मिला।

"जीजा जी कितनी देर मे लौटेंगे जिज्जी?"

पता नही। सवेरे बात कर लेना।'

एक गडबडी की बात है। वह जो हमारा नेता है न ।'

' कौन नेता ? '

एक मजदूर है जिज्जी वह मेला देखने गया था। लौटा नही है ।

' तो मैं क्या करूँ? मोटर तो है नही, उसके लिए हेलिकाप्टर भेज दूँ?"

'क्या बात है भाई? शाम को तो चैन मे बैठने दिया करो।' अब फोन पर परमात्मा जी की आवाज आई।

मैने नेता के न लौटने की बात सुनाई। वे मेमसाहब की बोली बोलने लगे, पडा होगा साला कही ।"

तब मैने सुरेस के अजीब व्यवहार का हवाला दिया, पार्क मे खून के छीटो की बात बताई, अपनी पूछताँछ का नतीजा भी बताया।

परमात्मा जी बोले, "तुम भी, भाई, क्या चीज हो! आसमान मे बॉस ठोक रहे हो। अरे कोई बात होती तो अब तक हल्ला मच गया होता। खून का क्या, किसी ने पान खाकर थूक दिया होगा। और खून भी हुआ तो क्या? सैकडो कुत्ते वहाँ लोटा करते है। पता नही किसके कौन-सा घाव लगा है।"

वे हँसे, "अब खा-पीकर सोओ जाकर। होगा कोई कुत्ता ही। बाजारू कुत्तो के घाव रिसा ही करते है।"

लौटकर खा-पी तो लिया पर बड़ी देर तक सो नही सका। नेता रात को नही लौटे, दूसरे दिन भी नही। मेरे मन मे एक बाजारू कुत्ता घायल पडा था, बराबर कूँ-कूँ करता था, उसके घाव रिस रहे थे।

दूसरा भाग

1

वह धूल-धक्कड और लू का दिन था, दुपहरी तप रही थी। हमे जब लाशघर जाकर एक लावारिस लाश पहचानने के लिए बुलाया गया तो, आशका के बावजूद, मिस्त्री ने बहादुरी दिखाई थी। कहा था, "नेता तो अपनी मेम को छोडकर कही टरक लिए, अब मुसी! हमारे-तुम्हारे लिए यही बचा है। पुलिस के साथ दुनिया-भर के मुर्दे देखते रहो। चलो, देख आएँ।"

अपने-आपको शायद ज्यादा, पर प्रकट रूप से मुझे ही दिलासा देते हुए वे कहते रहे, 'अपना नेता शेर बच्चा है। देखना, दो-चार दिन मे उछलता हुआ वापस आ जाएगा। कोई उसका बाल भी टेढा नही कर सकता।"

पर मनहूस मौसम का असर हो, या मेरी ही गिरी तबीयत—लाशघर तक आते-आते मुझे लगा, जमीन और आसमान के बीच हू-हू करती हुई हवा सिर्फ हवा नही है, उसके थपेडो मे जमाने की मार है जो चारो ओर से हम पर पड रही है। अपने पर मैंने काबू पाने की भरसक हिम्मत दिखाई, पर दिल बैठने लगा। लाशघर मे घुसने के पहले ही मुझे विश्वास हो गया कि पाँच दिन पहले बडी ललक के साथ जिन्हे मैंने मेले की ओर जाते देखा था, उन मेडूराम उर्फ नेता को अब जिदा हालत मे कभी नही देखूँगा।

सचमुच ही नेता की जगह एक गँधाती हुई लाश देखने को मिली। वही ललछौही कमीज—कुछ कटी-पिटी, खून के धब्बो और मिट्टी के लगाव से और भी बदरग। उसी से पहचाना कि यही अपने मे मगन रहनेवाले, हमेशा बेमौके बोलनेवाले हमारे नेता थे, जिनका कोई दोस्त रहा हो या न हो, दुश्मन कोई नही था।

लाश विकृत होने लगी थी। दिल काँपा, पैर उससे भी ज्यादा जोर से काँपे। लाशघर की छुतही दीवार से पीठ न टिकाई होती तो अब तक फर्श पर ढेर हो गया होता। मिस्त्री हमारे पीछे खडे थे। बोले, "यह क्या हो गया मुसी जी?" फिर मुँह पर अँगोछा ढाँपकर जोर-जोर से रोने लगे। हमारे साथ आए हुए चार मजदूर भी अब अदर आ गए। आपस मे पहले वे एक-दूसरे से कुछ बोले, फिर खामोशी मे मेरी ओर देखते हुए मेरी ओर से कुछ कहे जाने का इतजार करने लगे।

मैं तत्काल कुछ भी नही कह सका। क्या कहा जाए या किया जाए—सोच नही

सका। मन जिस वजन के नीचे दबा जा रहा था, उसकी चपेट मे कुल इतना आभास हुआ कि इस बेरहम शहर मे यह लाश नही सड रही है, खुद सारा शहर सड रहा है।

सबसे पहले मिस्त्री ही सँभले। उनका चेहरा सहज हो गया था, सिर्फ आवाज मे भर्राहट थी। बोले, "चलो मुसी, यहाँ की कार्रवाई पूरी करा लो। फिर मिट्टी को ले चला जाए।"

मैं अब भी धुँधलके मे था। बिना सोचे हुए पूछा, "कहाँ ?"

मिस्त्री ने कहा, "सीधे शमशान ले चले। एक आदमी साइट पर भेज देते हैं। जिसको आना हो, वही आ जाए। अब मिट्टी को घटे-भर भी रोकना ठीक नही है।"

"जसोदा "

"वह कैसे आ पाएगी ? बुखार मे है। और आकर करेगी भी क्या ?"

"फिर भी ।"

मिस्त्री सोचते रहे, बोले, "खुद सोच लो मुसी। पूरा शहर घूमकर इसे उल्टी ओर साइट पर ले जाने से क्या फायदा ? शमशान इधर से पास पडेगा। जसोदा चाहे तो वही आ जाए। उधरवाले सेक्टर मे इन लोगो के कुछ गाँववाले हैं। उन्हे खबर कराए देते हैं। वे सीधे वही शमशान पर चले आवेगे। आगे का काम वही सँभाले आकर।"

आते वक्त एक हेड कास्टेबुल सडक के पास नीम के नीचे बने गोलाकार चबूतरे पर बैठा मिला था। कुछ देर पहले वह हमारे पास आकर खडा हो गया था और हमारी बाते सुन रहा था। उसके पीछे एक नौजवान सिपाही भी आ गया था, जो हमारे आते समय वहाँ पहले नही दिखा था। उसी ने पूछा, "तुम लोगो ने ठीक से पहचान लिया है न ? यही गुमशुदा मेडूराम है ?"

"हाँ साहब," हमारे साथी मजदूर बोले।

मिस्त्री ने भी कहा, "बडा हीरा आदमी था नेता। पता नही यह कैसे हो गया दीवान जी।"

दीवान जी यानी हेड कास्टेबुल के कुछ कहने के पहले ही सिपाही के मत्थे पर बल पड गए। बोला, "नेता ? इसका नाम नेता है ?"

"हाँ साहब, हम लोग नेता ही कहते थे।" सिपाही ने दीवान जी की ओर देखकर कहा, "तब कैसे चलेगा ? सही नाम तो कोई बता नही रहा है।"

दीवान जी मुझसे बोले, "है तो यह मेडूराम ही न ? नेता तो आपस मे कहते होगे ?"

"ऐसा ही है दीवान जी।" मिस्त्री ने कहा।

"तब क्या दिक्कत है ? इन लोगो को मिट्टी ले जाने दो।" दीवान जी ने सिपाही से कहा।

सिपाही ने हम सबको ध्यान से देखा, पूछा, "तुम लोगो मे कोई इसका करीबी रिश्तेदार है। बाडी की डेलिवरी कौन लेगा ?"

मैंने कहा, "ये चारो आदमी मेडूराम के गाँववाले हैं। यहाँ मजदूरी करने आए हैं। इनमे से कोई भी दस्तखत कर देगा।"

चारो मजदूर, जो अभी तक आपस मे धीरे-धीरे कुछ कह रहे थे, अचानक चुप हो गए। फिर उनमे से एक मेरे पास आया, बोला, "हमसे अँगूठा न लगवाओ मुसी जी, हम लोग बडे गरीब हैं।"

अब तक मैं नेता की मौत और उनकी मिट्टी के दर्शन का झटका झेल ले गया था। दीवान जी को एक कदम अलग ले जाकर उन्हे पूरी स्थिति समझाई। मुझे एक ट्रेन दुर्घटना की दो लाशे याद आ गई थी। उनका हवाला देकर दीवान जी को समझाया कि लिखा-पढी मे मजदूरो को न घसीटा जाए। अपना पूरा परिचय देकर, मेडूराम से अपने सबध बताकर, उन्हे राजी किया कि मेरे और मिस्त्री के दस्तखत पर मिट्टी हमे सौंप दी जाए। (मिट्टी जैसा भयानक शब्द कितनी आसानी से सिर्फ दो-चार बार सुनते ही मेरी जबान से भी निकलने लगा था) वे राजी हो गए, सिर्फ इस शर्त पर कि कोई आदमी खुद मेरी शिनाख्त के लिए मिलना चाहिए।

नेता और उनके साथियो की हालत सुनकर दीवान जी ने, लगभग स्वगत, कहा

उमा दारुजोसित की नाई,
सर्बहि नचावत राम गोसाँई।

दीवान जी सही आदमी लगे, तभी जो बात इतनी देर से मेरे भीतर घुमड रही थी, मेरे मुँह पर आ गई। मैंने कहा, "दीवान जी, यह मिट्टी तो आज फूँक दी जाएगी, पर मेडूराम के हत्यारे कब पकडे जाएँगे?"

"कैसे हत्यारे भैया? क्या कह रहे हो?"

दीवान जी मुझे हैरत से देखते रहे। मैंने कहा, "आपको इस केस का हाल मालूम नही है?"

"है क्यो नही भैया," वे मुलायमित से बोले, "मैं यही चौकी पर तैनात हूँ। दो दिन हुए इसे बेहोशी की हालत मे अस्पताल ले आया गया था। आपही के थाने की पुलिस ले आई थी। ऐक्सिडेट का मामला दर्ज हुआ है। इसे होश नही आया और परसो आधी रात को बेचारे ने दम तोड दिया। कल दिन-भर इसके किसी जान-पहचानवाले की खोज होती रही। थाने पर खबर भिजवाई गई। तभी आज आप लोग यहाँ आ पाए हैं। ऐक्सिडेट का मामला है। कल ही इसका पचनामा करा दिया गया है। पोस्ट मार्टम भी किया जा चुका है।"

वे सोचते रहे, बोले, "हत्या की बात आज पहली बार सन रहा हूँ।"

सिपाही ने कागजो पर दस्तखत करा लिए थे। दीवानजी से बोला, "अब मैं जाता हूँ।"

वह हमारे थाने का सिपाही रहा होगा, दीवान जी के अधिकार को बहुत बेमन स्वीकार कर रहा था। दीवान जी ने कहा, "अभी नही। मैं यही रुका हूँ। तुम चौकी पर चले जाओ। जो भी सिपाही मिले, उसके साथ कोई खडखडा या इक्का पकड लो, मिट्टी को ये लोग उसी पर ले जाएँगे।"

सिपाही ने कहा, "इनके दस्तखतो की शिनाख्त कौन करेगा ?"

"मै करूँगा ।" कहकर उन्होने कागज के नीचे दस्तखत कर दिए । मुझसे बोले, "मैं किसी आर से अलग कागज पर आपकी शिनाख्त कराके अपने पास रख लूँगा ।"

मिस्त्री ने एक आदमी 'साइट' पर खबर देने के लिए रवाना कर दिया था । जब हम लोग खडखडे की राह देख रहे थे, उन्होंने अचानक कहा, "एक बात तो भूल ही गया मुसी ।" मेरे पास मुँह लाकर बोले, "किरिया करम का पेसा कहाँ से आएगा ? तुम्हारे पास दो-चार सौ रुपए हैं ?"

मेरे पास पचास-साठ रुपए पडे थे । मिस्त्री ने कहा, "इतने से क्या होगा ?"

"तो तुम मिट्टी लेकर शमशान चलो । इतने रुपयो मे कफन और सवारी का काम हो जाएगा । में परमात्मा जी के यहाँ से रुपए लेकर आता हूँ ।"

हम लोग नीम के नीचे चबूतरे पर बैठे थे । दीवान जी भी हमसे कुछ हटकर वही अँगोछा बिछाकर बैठे हुए थे । वे कुछ देर मिस्त्री को निर्विकार भाव से देखते रहे । उसी तरह देखते हुए उन्होने कमीज की जेब से प्लास्टिक का एक पर्स निकाला, उससे कुछ नोट निकालकर गिने और इशारे से मिस्त्री को अपनी ओर बुलाया, बोले, "यह लो । चालीस हैं ।"

मिस्त्री भौंचक खडे रहे । दीवान जी बोले, "ले लो भाई, ये सरकारी मदद है ।"

दीवान जी ने मुझसे कहा, "मुकद्दर की बात हे । कल शाम हम लोग इस लाश को लावारिस समझकर फूँकने जा रहे थे । पर इसके लिए जो चालीस रुपए सरकार खर्च करती हे, वे टाइम से हमे मिल नही पाए । कल मास्टरो का एक बडा जलूस निकला था न ? मास्टरो की माया भी निराली है । खूब धमा-चौकडी मचाई । हमारे सी ओ. साहब उसी जलूस मे फँसे रहे । यहाँ लाश पडी रही । ये रुपए उनके दस्तखत से आज सवेरे मेरे हाथ मे आए हैं ।

"अगर मास्टरो का कल जलूस न निकला होता तो यह मिट्टी यहाँ रुकी थोडे ही रहती ? पर भाग्य का यही विधान था । जब बेचारे का दाह उसी के गाँववालो के बीच होना था, तो पहले कैसे हो जाता ?"

लू की लपटो से अब हम बेखबर होते जा रहे थे । सबकुछ इतनी तेजी से घूम रहा था कि मौसम की कोई अलग हैसियत नही रह गई थी । मैने कहा, "दीवान जी, ये सरकारी रुपए हैं । आपको इनका हिसाब देना होगा ।"

"दे दूँगा भैया, काहे को परेशान हो । आदमी को पहली चिंता ऊपरवाले के हिसाब की करनी चाहिए ।"

दो-तीन साल पहले की बात है, बिहारी मजदूरो का एक बडा जत्था पजाब से वापस लौट रहा था । जैसा कि चलन है, वे रेलगाडी की छत पर बैठकर सफर कर रहे थे । जब

गाडी एक पुल के नीचे से गुजरी तो दो मजदूर पता नही कैसे, दो डिब्बो के बीच से गिरकर रेल की पटरी पर आ गए, बचने का सवाल ही नही उठता था। सवाल सिर्फ यह उठा कि वे कौन थे, कहाँ के रहनेवाले थे।

मैं भी अपने सखा-सँघातियो के साथ उसी गाडी से चल रहा था। इसलिए लाशो के इर्द-गिर्द जो भीड जमा हुई उसमे ज्यादातर हमी हम थे। कुछ और लोग भी थे पर बिहार के मजदूर नदारद थे। वे मौके से काफी दूर खडे रहे। जैसे किसी छिपकली की 'दुम कट गई हो और फिर भी वह दीवार पर पहले की तरह बेलौस चिपकी हुई हो, मजदूरो का खामोश हुजूम दूर से कुछ वैसा ही दीख रहा था। पुलिस के दारोगा ने उनसे बडी पूछताछ की पर उनमे कोई भी ऐसा नही निकला जो मृतको को पहचानता हो। लाशो को बटोरकर गाडी किसी तरह आगे बढ़ी।

उनकी जेबो से तेरह-चौदह सौ रुपए भी निकले थे। इसलिए हम लोग गाडी पर दारोगा जी को घेरे बैठे रहे। यह तय हो गया था कि जब तक पुलिस के कागजात मे इन रुपयो का सही-सही इदराज नही हो जाता तब तक हम दारोगा जी का पीछा नही छोडेगे।

आगे बडा स्टेशन आने पर हमने रुपयो की भनक मजदूरो के कान मे डाल दी। यह भी प्रचारित कर दिया कि इन्ही रुपयो मे से सौ-सौ रुपए मुर्दों के जलाने के काम मे लगाए जाएँगे। जब उन्हे पूरा भरोसा हो गया कि दाह-सस्कार मे उन्हे कुछ अपने टेट से नही निकालना पडेगा, और पुलिस उन्हे पूछताछ के नाम पर रोककर बेइज्जत नही करेगी, और जैसा भी हो, डेली पैसेजरो का समुदाय उनके पीछे रहेगा, तब कही लाशो को पहचाननेवाले पुलिस के सामने आए।

मैं जानता था कि ऐसे मौको पर यही होता है। इसलिए नेता के अत पर उनके इलाके के साथी कागज पर अँगूठे का निशान लगाने से हिचक गए और मुझे हैरत नही हुई।

न जाने किस तरफ से कुछ बेतार के तार सक्रिय हो उठे थे जिस पर मेमसाहब ने रोते-रोते मुझे सुझाव दिया था कि अस्पताल की तरफ जाकर नेता का पता किया जाए। यह नेता के गायब होने के चौथे दिन की बात है। भीतर-ही-भीतर कही कुछ सुगबुगाहट चल रही थी। उससे यह खबर निकली थी कि तीन दिन पहले दो सिपाही रिक्शे पर एक अधमरे बेहोश आदमी को लादकर शहर के बडे अस्पताल मे ले गए हैं। कोई अपने गुमशुदा भाई की तलाश मे अस्पताल पहुँच गया था। यह बेहोश आदमी उसका भाई न था। उसी ने अस्पताल मे इस अनजाने मरीज को दम तोडते देखा था। सयोगो की उस जजीर मे एक कडी यह भी थी कि वह आदमी इसी नए मुहल्ले के किनारे बसे हुए एक गाँव मे रहता था। इसलिए अस्पताल मे होनेवाली मौत की खबर हमारी ओर भी उडकर आई। पर यह कुछ देर से हुआ, कल रात हमने तय किया था कि सबेरे

अस्पताल चलेगे । आज बारह बजे दोपहर को अस्पताल मे एक लावारिस लाश की खबर मिली । उसी के बाद एक सिपाही ने हमे लाशघर जाकर अपने आदमी की शिनाख्त करने का हुक्म दिया । तब तक हँसमुख चेहरेवाले नेता वीभत्स मिट्टी मे बदल चुके थे ।

लाश की हैसियत मे आने के दो या शायद तीन दिन पहले से वह बेहोश रहे थे । जब जिदगी ने, जो अब तक बराबर उनसे लुकाछिपी खेलती रही थी, उनका हमेशा के लिए साथ छोडा तो पुलिस को ख्याल आया कि इस लाश के कोई दावेदार भी हो सकते हैं और उनका मजबूरन् चौबीस घटे तक इतजार किया गया । 'मजबूरन्' इसलिए कि जिस पुलिस अफसर को लावारिस लाश जंलाने के लिए रुपए की मजूरी देनी थी वह उस दिन शहर मे अध्यापको के एक जुलूस को तितर-बितर करने मे और 'जेल भरो' का नारा लगानेवालो की गिरफ्तारी और फिर उनकी रिहाई मे आधी रात तक व्यस्त रहा और लाश फूँकने का खर्च उस दिन मजूर नही हो सका । अध्यापको के आदोलन की कृपा, दूसरे दिन हम लोगो के पक्ष मे नेता की 'बाडी' की डेलिवरी हो गई ।

नेता को मुर्दाघाट की ओर रवाना कराके मैं साइकिल से परमात्मा जी के यहाँ गया । वे कचहरी से अभी लौटे न थे । सावित्री का भी पता न था । तब मैं इजिनियर साहब के घर की ओर मुडा । उनके घर जाने का यह पहला मौका था ।

कोई पुराना बँगला उन्होने सस्ते मे खरीद लिया था । उसी के आगे तोडफोड करके पुरानी इमारत से नए विलायती काट का बँगला निकाला जा रहा था । इजिनियर साहब पिछवाडे के बरामदे मे मेज-कुर्सी लगाए हुए मिले । अदर के उस कमरे मे दो बाबू लोग फाइले देख रहे थे, एक टाइपराइटर खटखटा रहा था । इजिनियर साहब फोन पर किसी से बात कर रहे थे जिसका मतलब था कि कोई पन्नालाल मार्केट मे दुकान लेना चाहता था । वे फोन मे बोले, "एक लाख से एक पैसा कम न होगा, वह भी आपके लिए है । एक-पच्चीस पहले ही लग चुका है ।" फोन रखकर मुझे गौर से देखकर शायद यह भाँपते हुए कि मैं ठीक से प्रभावित हुआ या नही, वे मुस्कराए । मैंने बिना प्रभावित हुए उन्हे नेता की दुर्घटना सुनाई और दाह-कर्म के लिए तीन सौ रुपयो की माँग की ।

वे सोचने लगे । खामोशी से इतनी देर सोचा कि मुझे शक हुआ, उन्होने मेरी बात नही सुनी है । मैं दोहरानेवाला था कि वे बोले, "देखिए, हमदर्दी मुझे भी है पर मेरी समझ मे हमारा इस काम मे रुपए लगाना ठीक न होगा ।"

सुनकर देह सुलग उठी । तबीयत मे आया कि इसका मुँह इसी वक्त पूरब से पच्छिम कर दूँ, सिर्फ एक झाँपड की जरूरत थी । पर पिछले महीनो परमात्मा जी की मुशीगिरी करके मैं पहले जैसा नही रह गया था । जो भी हो, उनके कार्बाइनधारी अगरक्षक की फिक्र किए बिना मैंने कहा, "मैं आपसे किसी कारोबार मे रुपया लगाने की बात नही कर रहा हूँ, आपका एक मजदूर मर गया है । उसको फूँकने के लिए रुपए चाहिए ।"

इंजिनियर साहब काला चश्मा लगाए बैठे थे। जैसे यह दीवार काफी न हो, उन्होने अपना सिर भी घुमा लिया। बरामदे मे खस्ताहाल प्लास्टर को देखते हुए बोले, "यही तो दिक्कत है। अगर इस काम के लिए हमने रुपए दे दिए तो कल के दिन कोई हमसे उसकी मौत का मुआवजा भी माँग सकता है। मजदूरो के नेता तो ऐसे मौको की ताक ही मे घूमा करते हैं।"

मैं कुर्सी पर नही बैठा था, न उन्होने बैठने को कहा ही था। भले ही वे मुअत्तल हो, वे सरकारी इंजिनियर थे और मेरी हैसियत मेट के आसपास थी। पर मैं खडे-खडे जिस तेजी से मुडा और जिस फुफकार के साथ मैंने कहा, "ठीक है।" उसने उन्हे शायद कोई झटका दिया। वे उठकर खडे हो गए। बोले, "क्या ठीक है ? दिमाग़ तो ठीक है न ?"

बिना मुडे, बिना कुछ कहे मैं तेजी से बरामदे के बाहर आ गया और बँगले के फाटक की ओर चला। दिमाग झनझना रहा था। फिर भी मुझे भीतर से किसी ने आगाह किया कि कोई मेरे पीछे आ रहा है। पीछे मुडकर देखते ही मुझे कार्बाइन वाला आदमी, पप्पी, दिखाई दिया। वह अपने ठिगने पाँवो को तेजी से चलाता हुआ मेरी ओर बढा आ रहा था। अपने को हाथापाई के लिए तैयार करके मैं खडा हो गया, पूछा, "क्या है ?"

इस पर उसने जो कहा, वह रामायण-भक्त हेड कास्टेबुल के मुकाबले और भी ज्यादा भौंचक करनेवाला था। वह जैसी बात कर रहा था, वह उसके लिए बिलकुल नए किस्म की होगी, क्योंकि वह लगभग शरमा रहा था और आवाज को धीमी रखने की कोशिश मे उसके कुछ शब्द खोए जा रहे थे। जो भी हो, उसका आशय यह था बडे साहब की बात का बुरा मत मानो। इतने साल से इनके पास हूँ, आज तक इनका स्वभाव समझ मे नही आया। कब क्या कहेगे, क्या करेगे—वही जाने। तुम्हे इनसे बात करने की जरूरत नही थी। जो नेता की मजदूरी बाकी हो, दे दो, नही तो जो भी खर्चा हो, बेवा के हिसाब मे डाल दो।"

"नेता की मजदूरी बाकी नही है—दो-एक दिन की भले ही पडी हो और बेवा का मैं एक पैसा भी खर्च न होने दूँगा।"

"तब आपस मे मिल-बाँटकर निपटाया जाए।" उसने जेब से कई मुडे-तुडे नोट निकाले, उनमे से पच्चीस के नोट चुनकर मेरी ओर बढा दिए, कहा, "यह मेरी ओर से है।"

मैं उससे आँख मिलाकर उसके असमजस को और गहरा न करना चाहता था। नोट हाथ मे लेकर बोला, "आप असली आदमी हैं।"

बिलासपुर की तरफ का एक आदमी बीवी के साथ मजदूरी करने लखनऊ आया था। एक दिन वह किसी दुर्घटना मे फँस गया, उसके पेट मे कोई गहरी चोट लगी थी। उसे बेहोशी की हालत मे पुलिस ने अस्पताल पहुँचाया। वहाँ उसका देहात हो गया। उसकी गर्भवती विधवा को भारी सदमा पहुँचा है। पर वक्त की मार को वक्त ही काटता है। सब ठीक हो जाएगा।

नेता के अत की यही मामूली और सक्षिप्त कहानी हे । पर शायद इतनी मामूली नही, क्योकि अगर हम लोगो की चेतना बिलकुल ही भोथरी नही हे तो अब तक भले ही कुछ न हुआ हो—आगे चलकर उसके कई गैरमामूली नतीजे निकल सकते हैं ।

कहानी उतनी संक्षिप्त भी नही है । अभी तक तो मैंने वही बताया है जिसे मैंने देखा था या कुछ हद तक झेला था । नेता की मौत से पहले की और भी घटनाएँ हैं जिन्हें सुनकर जाना है या कुछ सुनकर और कुछ अनुमान करके । कुछ बातो की बाद मे जानकारी मिली, पर बहुत धीरे-धीरे ।

हमारी नई बस्ती मे एक नया सेक्टर विकसित हो रहा है । वहाँ पहले बागे और उपजाऊ खेत थे । उन्ही पर अब ओहदेदारो, नेताओ और व्यापारियों के लिए शानदार मकान बनाए जा रहे हैं । मकानो की तैयारी मे जो सबसे पहला काम वहाँ हुआ था वह यह कि सारी बागे काटकर पूरा इलाका वीरान कर दिया गया । पर न जाने क्यो, एक घने बाग को देखकर किसी अफसर का दिल पसीज गया । उसे बख्श दिया गया है । पर वहाँ पेडो के नीचे मजदूरो ने अपनी झुग्गी-झोपडी डाल ली हैं, एक कोने मे खच्चरो के रहने का इतजाम हो गया है, वे दिन को मिट्टी ढोते हैं, रात को वहाँ एक बाडे मे रहते हैं । बाग के दूसरे कोने को कटीले तारो से घेर दिया गया है । वहाँ इमारत बनाने का सामान इकट्ठा किया गया है । कटीले तारो से सटाकर एक कोठरी बनाई गई है जिसमे चौकीदार रहता है । बाग के चारो ओर अधबनी सडके हैं । उनके किनारे अधबने मकानो की कतारे हैं ।

एक शाम अँधेरा हो जाने पर कुछ लोग एक मैटाडोर वान से वहाँ आए । वान मे लोहे की रेलिग भरी थी । एक अफसर-जेसा आदमी ड्राइवर की सीट से नीचे उतरा, पीछे से मजदूर-जैसे दीखनेवाले दो लोग कूदकर जमीन पर आए । चौकीदार को लगा कि कोई हाकिम अचानक मुआयना करने के लिए आ गया है । वह भागा हुआ उसके पास गया । उसके सलाम के जवाब मे उसने चौकीदार से उसका नाम पूछा, यह भी पूछा कि ठेकेदार साहब आए कि नही । चौकीदार ने कहा, "इस वक्त तो आते नही हैं ।" उसने कहा, "पर मैंने उन्हे यहाँ साढ़े सात पर बुलाया था ।"

तब तक सडक की बत्तियाँ जल गई थी, चोकीदार इस आदमी के हाकिमाना चेहरे को पहचानने की कोशिश कर रहा था । यह चेहरा उसने कभी पहले नही देखा था पर उसके चौकीदारी जेहन मे यह पक्का हो गया था कि ये कोई नए इंजिनियर हैं । जीप की जगह वे मैटाडोर वान से क्यो आए हैं, यह सवाल उस वक्त उसके जेहन मे नही आया ।

उस आदमी ने चौकीदार को दो रुपए का नोट देकर कहा, "जाओ, लपककर पान ले आओ । तंबाकू और मसाला अलग से ले आना । हम लोग यही रुकेगे ।" पान खानेवाले हाकिमो के इस स्टेंडर्ड हुक्म की तामील करने के लिए चौकीदार वहाँ से चला गया । करीब पद्रह मिनट बाद पान लेकर जब वह वापस आया तो मैटाडोर जा चुकी थी । वहाँ कोई न था । चौकीदार ने इसे हाकिमाना सनक का नमूना माना और पान

सहेजकर रख लिए। दो घटे बीत जाने पर भी कोई नही आया तब चौकीदार रोटी खाकर खुले मे अपनी खटिया पर लेट गया।

आधी रात को जब उसकी नीद खुली, उसे सामने के एक अधबने मकान से किसी के कराहने की आवाज सुन पडी। चौकीदार कुबूल तो नही करता, पर मुझे लगता है कि उसे भूत-प्रेत का वहम हुआ। उसने उसी वक्त उठकर कराह के उद्गम तक पहुँचने की कोशिश नही की। रात को एक बार वह फिर उठा, पर तब तक कराहे ठडी पड चुकी थी, सिर्फ हवा की सरसराहट रह गई थी। पर चार बजे सबेरे जब वह अपने वक्त से उठा तब उसे हवा के साथ बहुत धीमी कराह का फिर से एहसास हुआ। इस बार उसने दो-एक मजदूरो को जाकर जगाया और उनके साथ सामने के अधबने मकानो की जॉच शुरू की। इस वक्त हवा मे कराह का स्वर फिर नदारद हो गया था। दूसरे मकान मे घुसते ही सामने के बडे कमरे मे चौकीदार ने नेता को बेहोश हालत मे पाया।

नेता के मुँह पर छींटे मारे गए और मुँह मे पानी की कुछ बूँदे पहुँचाने की कोशिश की गई। वह हल्के से कराहे और छटपटाकर खामोश हो गए। चौकीदार और मजदूरो ने नेता की बीमारी को पहचानना चाहा, पर परख नही पाए। उजाला होते-होते उन्होने नेता के पेट पर एक बडा-सा नीला निशान देखा, सूजन भी। नेता के घुटने को छोडकर जिस्म पर कोई टूट-फूट की चोट नही थी। घुटने की खाल फट गई थी, वहाँ खून जमकर सूख गया था। यह सब देखकर मजदूर और चौकीदार बाहर निकल आए। वे घबरा रहे थे कि कही पुलिस की चपेट मे न आ जाएँ। इस अधमरे आदमी को अपने बीच पाकर वे खुद डर के मारे अधमरे हुए जा रहे थे।

चौकीदार ने जाकर ठेकेदार को बताया। उसने जवाब मे चौकीदार को ही गालियाँ देनी शुरू की। उसे शायद लग रहा था कि चौकीदार ने उसे झझट मे फॉस दिया है और थाना-कचहरी देखे बिना उसका निस्तार न हो पाएगा। पहले तो उसने चौकीदार को इसी बात पर 'टाइट' किया कि तुम कैसे घामड आदमी हो, अपने इजिनियर साहब तक को नही पहचानते। कोई भी आदमी पतलून पहने हुए किसी गाडी पर चला आए और तुम सलाम करके 'साहब-साहब' करने लगते हो! फिर उसने उसे दूसरी नासमझी के लिए कोसा अगर मान लो कि वही बदमाश इस अधमरे आदमी को हमारी साइट पर छोड गए तो तुम से यह भी नही सधा कि अँधेरे मे उसे उठाकर तुम लोग उसे अपने चार्ज से बाहर डाल आते। वह तो मर ही रहा है, हम तो बेमौत न मरते। बहरहाल, घबराहट मे ठेकेदार पहले तो साइट की ओर गया ही नही, मोटर-साइकिल के पीछे चौकीदार को बैठाकर अपने बडे साहब यानी बडे इजिनियर के यहाँ गया और उन्हे अपनी विपत्ति का हाल बताया। विनती की कि वे थाने पर एक चिट्ठी लिखकर भेज दे और इस विपत्ति को किसी अस्पताल पहुँचाने के लिए अपनी जीप दे दे। शायद बेचारा बच जाए।

बडे साहब ने बडे गौर से पूरी बात सुनी और बोले, "अगर उसके चोटे लगी हैं तो यह मेडिको-लीगल मामला हो चुका है। कोई भी अस्पताल बिना थाने की रिपोर्ट के

उसे भर्ती नही करेगा। सबसे पहले थाने ही पर खबर जानी चाहिए।"

यह कहकर उन्होने ठेकेदार को समझाया, "ये सारे मकान तुम बनवा रहे हो। हमारा काम तो सिर्फ यह चेक करना है कि मकान शेड्यूल के बमूजिब बनते रहे। मकान जब तक बनकर हमारे कब्जे मे नही दे दिए जाते तब तक वे तुम्हारे चार्ज मे हैं। इसलिए थाने पर रिपोर्ट तुम्हे ही देनी पडेगी।"

उस दिन दोपहर के तीन बजे तक ठेकेदार बदहवास हालत मे किन्ही साहनी साहब को खोजता रहा। साहनी साहब के भट्ठे चलते हैं। जब दूसरे नेता खद्दर छोडकर सफरी सूट मे घूमने लगे हैं, उन्होने खद्दर पहनना शुरू किया है। पैसेवाले हैं और इलाके के नेता हैं। थाने पर उनका रोज का उठना-बैठना है। ठेकेदार की हिम्मत नही पडी कि वह बेसहारा हालत मे रिपोर्ट दर्ज कराने जाए। लगभग तय था कि थानेवाले पहले उसे वही बैठा लेगे और तब इस अधमरे आदमी की जाँच-पडताल शुरू करेगे। इसलिए वह साहनी साहब को साथ लेकर थाने जाना चाहता था। साहनी साहब चार बजे मिले और अपनी मोटर पर ठेकेदार और उसके चौकीदार को आगे-पीछे बैठालकर पाँच बजते-बजते थाने पर पहुँचे। वहाँ जाते ही उन्होने थानेदार से उनकी अम्मा की गठिया का हालचाल पूछा, मालूम हुआ कि साहनी साहब ने उन्हे जो तेल की शीशी दी थी उसकी मालिश से उन्हे बडा फायदा हुआ है। फिर उन्होने थानेदार साहब के मकान की प्रगति समीक्षा सुनी। मकान उनके बडे भाई गाँव मे बनवा रहे थे, बेवकूफी मे बहुत लबी-चौडी नीव भरा बैठे, अब पूरा होने मे आफत आ रही है। 'आफत की कोई बात नही, मकान इसी तरह बनते हैं।' कहकर साहनी साहब ने ठेकेदार से कहा कि कल दो ट्रक ईंट हमारे भट्ठे से लदवाकर साहब के गाँव भिजवा दो, पच्चीस बोरी सीमेंट भी रखे लिए जाना।

ठेकेदार ने खुद यह सारी घटना परमात्मा जी को बताई थी। नेता की मौत के कई दिन बाद, मन पर कुछ बोझ महसूस करते हुए, उन्होने मुझे बताया था। नेता के अंतिम सस्कार का खर्च भी परमात्मा जी ने दे दिया था—यह कहकर कि 'इस बारे में किसी से कुछ कहने की जरूरत नही है।' वह 'किसी' कौन था, मुझे बताने की जरूरत न थी। सच तो यह है कि ठेकेदार बेरहम नही था, थाने पर बैठे हुए भी उसका दिल उस बेहोश आदमी के लिए कसक रहा था, पर उस वक्त उसकी सारी ताकत खुद अपनी बचत का रास्ता खोजने मे लगी थी।

बहरहाल, साहनी साहब ने जब ठेकेदार साहब के साइट पर कल रात से पडे हुए एक बेहोश आदमी का जिक्र किया तो थानेदार साहब ने छूटते ही कहा, "कोई बेचारा मजदूर होगा, आ गया होगा किसी चपेट मे।" ठेकेदार ने इस हमदर्दी की उमग मे आकर मैटाडोर वान वालो की बात उठाई भर थी कि साहनी साहब ने उसका पाँव दबाकर उसे रोक दिया। कहा, "आजकल इतने ऐक्सिडेट हो रहे हैं कि ।"

थानेदार साहब ने दो सिपाहियो को उसी वक्त चौकीदार के साथ घटनास्थल को

रवाना कर दिया। बोले, "यह जॉच बाद मे होती रहेगी कि वह वहाँ पहुँचा कैसे, पहले उसे अस्पताल भिजवा दे। शायद बच जाए।"

थाने से लौटते-लौटते ठेकेदार साहब की हिम्मत वापस आ गई थी। थानेदार के मधुर व्यवहार से उन्हे बडी शांति मिली थी। इसलिए, और शायद अपनी आत्मा की कुरेदन को दूर करने के लिए, साहनी साहब की चेतावनी के बावजूद उन्होने थानेदार से मैटाडोर वान पर आनेवाले लोगो की बात बता दी। पर उससे न किसी का कुछ बना, न बिगडा। थानेदार साहब ने कहा, "पर मेरे इलाके मे किसी साले की ऐसा करने की हिम्मत नही। साहनी साहब ने भी कहा है कि ऐसा हो नही सकता। बडे-बडे हत्यारो मे भी यह हिम्मत नही कि सरेशाम किसी को अधमरा बनाकर उसे अपनी गाडी मे डाल ले और बीच शहर मे इतने मजदूरो और चौकीदारो के बीच उसे एक मकान मे उतारकर चले जाएँ। फिर, वे मकान सैल्फ फाइनेसिग स्कीम के हैं। दिन-रात कोई-न-कोई मोटरवाला अफसर अपना मकान देखने के लिए आया ही करता है। वहाँ कोई ऐसा हादसा नही हो सकता।"

थानेदार साहब ने पूछा, "क्या किसी ने उस मैटाडोर से घायल आदमी को उतरते या उतारा जाते देखा था?"

ठेकेदार ने कहा, "वहाँ कोई नही था। चौकीदार था, वह भी पान खरीदने चला गया था।"

"तब एक सीधी-सादी बात को क्यो उलझा रहे हो?"

इस तरह, जब कि ठेकेदार को डर था कि एक सीधे-सादे मामले को पुलिस उसके खिलाफ उलझा देगी, हुआ यह कि पुलिस के लिए खुद ठेकेदार ने ही उसे उलझाने की कोशिश की, भले ही वह उसे उलझा न पाया हो।

2

अगला पखवारा एक अजीब खीचतान मे बीता। मेरा जिस्म वही था पर उसमे तीन व्यक्ति सक्रिय हो रहे थे। एक नाराज होता था, बदला लेना चाहता था और बदले के लिए जिस ताकत की जरूरत है उसको सपनो और कल्पनाओ के जोर मे रह-रहकर अपने मे खीचता था, दूसरा गिरे मन से परमात्मा जी की नौकरी करता था, यल यल बी के पहले साल मे पास होने के लिए प्रोफेसरो तक पहुँच के रास्ते खोजता था, तीसरा नेता की मौत से जुडी या जुड सकनेवाली घटनाओ की पडताल मे उलझा हुआ था।

पहला व्यक्ति मेरा जाना-पहचाना स्वप्नदर्शी था—दिमाग मे चलनेवाली फिल्म का सुपर हीरो। अकेले मे, जब मैं गर्मी की गर्दभरी शाम मे छितरी हुई बालू-छर्री और लोहे के बीच टुटही खटिया पर लुँगी और बनियाइन मे लेटता था, वह मुझे अचानक अपने प्रदेश का पुलिस महानिदेशक बना देता था। मैं स्थानीय थानेदार को मुअत्तल करके एक परम ईमानदार और मेहनती इस्पेक्टर को उसकी जगह नियुक्त करता, उसे नेता पर हमला करनेवालो की गिरफ्तारी का हुक्म सुनाता, और थानेदार का सैल्यूट लेकर उसे अडतालीस घटे मे मुकदमे की प्रगति-रिपोर्ट सीधे अपने पास भेजने की माँग करता। पर कुछ ही दिनो मे पुलिस महानिदेशक की तस्वीर धुँधली पडने लग गई। उसके सफेद बाल आइस्टीन के फोटो के बालो की तरह ऊलजलूल दिखने लगे और उसकी मोटर—जो नीली बत्ती और वायरलेस से लैस रहा करती थी—मटमैली बनकर किसी खटारा टैक्सी की शक्ल मे बदलने लगी। इस माहौल मे मैं पुलिस महानिदेशक से भी ऊपर उठकर गृहमत्री बननेवाला था कि फिल्म की रीले बदल गई। मैं दैनिक मजदूरो के एक अखिल भारतीय सघ का अध्यक्ष बन गया।

यह काम मेरी क्षमता और प्रतिभा के हिसाब से बडा उत्साहवर्धक था। मैंने मजदूरो की हडताले कराई, एक बेकसूर मजदूर की हत्या के विरोध मे बडे-बडे जुलूस निकाले, गृहमत्री का घेराव किया, शहर मे तीन दिन के बद का ऐलान किया और सरकार ने मुझे गिरफ्तार करने के बजाय शाति-वार्ता के लिए आमत्रित किया।

यह फिल्म बार-बार अलग-अलग रीलो मे कई दिन मेरे दिमाग मे चलती रही, इतना चली कि एक नुक्ते पर सपने और हकीकत एक मे घुलने लगे। वह दूसरा मैं, जो

रोजमर्रा के काम दिन-भर गिरी तबीयत से निपटा रहा था, एक दिन इससे इतना अभिभूत हुआ कि उसने तय कर डाला, दैनिक मजदूरो के बचाव के लिए उनकी एक यूनियन यहाँ अब बननी ही चाहिए।

दूसरा मैं, असली मैं—अगर परमात्मा जी की मुशीगीरी करनेवाला, इंजिनियर साहब से लगातार कुढनेवाला और इन दिनो जसोदा से जान-बूझकर कतरानेवाला सतोषकुमार उर्फ सत्ते ही असली 'मैं' हो तो—इन दिनो कुछ चिडचिडा हो रहा था। पर न जाने क्या वजह थी, कोई भी मुझसे झगड नही रहा था। ऊपर से सब काम पहले जैसा हो रहा था, सिवाय इसके कि जब मैं मजदूरो से खीझकर बोलता तो कोई पहले की तरह चिल्लाकर, हँसकर या उलाहना देकर बात न करता था। वे पहले से ज्यादा सीधे हो गए थे। मिस्त्री भी पहले से ज्यादा खामोश थे।

जिस दिन नेता की मिट्टी को हम जलाकर लौटे थे, उसके दूसरे दिन मैं जसोदा को देखने गया था। वह परमात्मा जी की कोठी से हटकर कुछ दूरी पर अपने देश के मजदूरो मे चली गई थी। वह बीमार थी, दो-तीन औरतो के बीच निढाल पडी थी। मैं थोडी देर बैठा रहा, बडी हिम्मत करके पुरानी खन्क से आवाज को सुनाई देने लायक बनाकर इतना कह पाया, 'अब रोने-धोने से क्या होना है ? आगे की देखो।' कहकर लगा, यह बात मेरे बाप या बाबा के मुँह की है। उसकी मदद के लिए कुछ रुपए छोडकर चुपचाप लौट आया।

कोई सुबूत नही था। जिसने कुछ देखा था और जो कुछ कह सकता था—वह गूँगा है। सुरेस को अगर कुछ मालूम भी है तो प्रकृति उसे उसकी हलक के नीचे दफन कर चुकी है। और जो बोल सकते हैं, वे बोलना नही चाहते , वे अपने आपको गूँगा बना चुके हैं। फिर भी मेरा मन नेता की मौत को पुलिसवाली आसानी से एक दुर्घटना भर मानने को तैयार नही था, आज भी तैयार नही है।

परमात्मा जी से बात की। उन्होने कानूनी तौर से तथ्यो का जर्रा-जर्रा अलग करके मुझे ज्यादा न सोचने की सलाह दी। तब मैंने प्रेमबल्लभ से बात की।

इन दिनो उसका मेरे पास आना-जाना बढ गया था। परमात्मा जी के मकान का काम खत्म होते ही मुझे फिर शायद उसी पुरानी दुनिया मे लौटना होगा—यह सोचकर मैं भी उससे ज्यादा मिलने लगा था। प्रेमबल्लभ ने सुरेस को साथ लेकर चार-पाँच दिन मेहनत की। कुछ नई बाते भी खुली, पर वे ऐसी न थी जिनसे परमात्मा जी की सलाह मे किसी परिवर्तन की राह खुलती।

नेता के न लौटने पर सुरेस मुझे वहाँ ले गया था जहाँ की मिट्टी पर हमे खून के कुछ छीटे मिले थे, उसके पास ही दुकान थी। उसमे परचून का माल और पोशीदा तौर पर गाँजा बिकता था। चूँकि सुरेस के इशारो से जाहिर था कि गायब होने के पहले नेता वहाँ

पर गए थे इसलिए पेमवल्लभ ने छानबीन की शुरुआत नेता और गाँजा के आतरिक सबधो से की। पहले उसने गाँजे की पुडिया खरीदी, उसके बाद उसने अपना चोला वदला, कुछ दिन पहले पार्क मे जो झगडा हुआ था, उसका उसने दुकानदार से जिक्र किया। दुकानदार ने वही रुख दिखाया जो पहले एक-दूसरे दुकानदार ने मुझे दिखाया था, यानी उसने प्रेमवल्लभ को अपना रास्ता नापने की सलाह दी। तव प्रेमवल्लभ अफसराना ढग से वही एक मोढे पर बैठ गया और कहा, 'थाने चलोगे?' यूनिवर्सिटीवाला अपना परिचय-पत्र दूर से दिखाकर उसने कहा, 'देख बे, मैं सी आई.डी इस्पेक्टर हूँ; या तो जो कुछ जानता है उसे सीधे-सीधे वता दे, तो तुझे कुछ न होगा, नही तो सीधे थाने पर ले चलूँगा, वही तुझे तेरे गाँजे मे दफन करूँगा।' तव दुकानदार ने इस लँगडे सी आई डी इस्पेक्टर की असलियत को चुनौती दिए विना कुछ वाते वताई।

कुछ दिन पहले लाल वुशशर्ट पहने एक मजदूर वहाँ गाँजा लेने आया था। मजदूर को दुकानदार शक्ल से पहचानता है। वह पहले भी कई वार उसके यहाँ आ चुका था। उसके साथ एक गूँगा लडका भी था। मजदूर ने गाँजा खरीदकर लडके को जाने के लिए कह दिया था पर लडका थोडी देर दुकान पर अटका रहा था। मजदूर उधर पार्क की ओर चला गया था।

इस इलाके मे जगह-जगह लबे-चौडे मैदान पार्को के लिए छोड दिए गए हैं। उनके चारो ओर ऊँची-ऊँची लोहे की रेलिंग लगाई गई है। रेलिंग चुराने मे एक खास गिरोह ने महारत दिखाई है। उनके पास एक वडी-सी मैटाडोर वान है। उस पर एक आदमी कई वार देखा गया है। वह तंग पतलून पहनता है, गोरा-चिट्टा और मोटा है, अफसरो की तरह मुँह मे टेढी सिगरेट लगाए रहता है।

यह सही है कि नेता जब पार्क की ओर गए, पार्क के किनारे मैटाडोर खडी हुई थी। रेलिंग चुरानेवाले पार्क के किनारे अपना काम कर रहे थे। उनके काम का ढग बहुत से लोग जानते हैं, वे लवा फीता निकालकर पार्क की दीवार की पैमाइश करने लगते हैं। उधर दो आदमी रेलिंग के नीचे, जहाँ ईंट और कांक्रीट का काम टूटा होता है, तोड-फोड करके रेलिंग के टुकडे निकालने लगते हैं। टुकडो को निकालकर वे मैटाडोर पर रखते जाते हैं, पैमाइश करनेवाले वडी गभीरता से नाप-जोख करके आपस मे पार्क के पुनर्निर्माण की योजना पर विचार-विमर्श करते हैं, रेलिंग की जगह पक्की चहारदीवारी वनाने की बात चलाई जाती है। किसी भी वाहरी आदमी को यह लगेगा कि सरकारी इंजिनियर और उनका स्टाफ पार्क की टूटी रेलिंग हटाकर उसका जीर्णोद्धार करने के लिए आया है। वे वडे इत्मीनान से मैटाडोर-भर लोहा लादकर अपना फीता और नोटवुके जेव मे रखते हुए गाडी मे वैठ जाते हैं। दूसरे दिन किसी दूसरे जगह पार्क मे जीर्णोद्धार का काम शुरू हो जाता है।

शायद नेता इन चोरो की असलियत जानते रहे हो, शायद अपनी सहज उमग मे उन्होने चोरो को छेड दिया हो, या, शायद फैल मचाने को तैयार हो गए हो, शायद चोरो ने उन्हे शाम के धुँधलके मे वही दबोच लिया हो, उन्हे खामोश करने के लिए कोई वहशियाना तरीका अपनाया हो। शायद उसी कोशिश मे नेता के पेट मे कोई साघातिक चोट आई हो।

शायद गूँगे सुरेस ने दूर से इसका कुछ अश देखा हो। भागता हुआ वह शायद हमे मदद के लिए बुलाने आया हो।

दुकानदार ने प्रेमबल्लभ के आगे हाथ जोड दिए, कहा, "मैटाडोरवाले उस दिन यहाँ पैमाइश कर रहे थे, वह मजदूर भी उधर पार्क की तरफ आया था। मैं कुल इतना ही जानता हूँ सरकार। व्यापारी आदमी हूँ, अपने काम-से-काम रखता हूँ, दूसरे के टटे मे नही पडता। यकीन मानिए, मैंने कुछ नही देखा। यहाँ किसी से भी पूछ लीजिए, किसी ने कुछ नही देखा।"

प्रेमबल्लभ को इस वक्त पुलिस इस्पेक्टर का धर्म भी निभाना था, इसलिए गॉजे की गैर-कानूनी बिक्री की बात दबाने के लिए उसने दुकानदार से कुछ वसूली की, उसे बेधडक अपना काम करने की सलाह दी, मैटाडोरवालो के खिलाफ उसे कही गवाही नही देनी पडेगी, इसका इत्मीनान दिलाया और वापस आकर मुझे दिलासा दे गया कि अब आगे कुछ और सोचना बेकार है। "तुम जो बार-बार 'शायद-शायद' लगाकर एक किस्सा जैसा गढ रहे हो, उससे सच्चाई पर पर्दा नही पड सकता। सच्चाई वही है जो पुलिस बता चुकी है। कोई दुर्घटना-भर हुई थी, और कुछ नही।"

जब दो हफ्ते बाद मेमसाहब—गर्भ के छठे या सातवे या शायद आठवे महीने मे—काम पर वापस आई तो उनकी हैसियत बदल चुकी थी। सभी ने उन्हे जसोदा कहना शुरू कर दिया था।

दोपहर तक वे मुर्दा हाथो से सीमेट, बालू और मोरग का मसाला तैयार करती रही। बाद मे वे वही, तपती धरती पर, खामोश बैठ गई। मिस्त्री ने बुजुर्गाना ढग से कहा, "जा, अदर जाकर लेट।"

धीरे-धीरे उठकर वह बरामदे तक आई और दीवार के सहारे टिककर बैठ गई। मैं वही कुर्सी पर बैठा था। एक बार मेरी ओर देखकर उसने फर्श पर निगाह टिका दी।

मैंने कहा, "जसोदा तुम शकरगढ़ क्यो नही चली जाती?"

नेता का एक भाई—पता नही सगा या चचेरा—बहुत दूर शकरगढ मे पहाडियो के पत्थर तोडने मे लगा था। जसोदा के गॉववाले उसे वही जाने की सलाह दे रहे थे।

"वहाँ मेरे लिए कोई काम नही है।"

"तुम्हारा देवर जो है वहाँ पर।"

"निकम्मा है।"

याद आया, जसोदा नेता को भी निकम्मा कहती थी। पता नही उसे भी यह याद आया कि नही।

"ऐसे दिनो मे तुम्हारी देख-रेख तो करेगा ?"

"मुझे किसी की देख-रेख नही चाहिए।"

"किसी की भी नही ?"

उसने सिर झुका लिया, रोई नही पर यह हालत आँसू बहाकर रोने से भी बदतर थी।

थोडी देर बाद मैंने कहा, "तुम्हारे गॉव के लोग चिल्लाएँ नही तो एक काम करो। मेरा गॉव यहॉ से बहुत पास है। तुम और सुरेस वही जाकर कुछ दिन रह लो। तुम अम्मा की थोडी-बहुत मदद कर देना। बना-बनाया खाना मिलेगा, आराम से पडी रहना। अब बरसात आनेवाली है। खेत-खलिहान के बहुत-से काम हैं, घर की मरम्मत भी होनी है। सुरेस उसमे मदद कर देगा। अच्छा न लगे तो वापस लौट आना।"

जसोदा बरामदे से उठकर धीरे-धीरे कमरे की ओर चली। मैंने कहा, "तुम्ही से बात कर रहा हूँ।"

"सुन लिया।" कहकर वह उस कमरे की ओर चली गई जहॉ कुछ दिन पहले उसका चूल्हा जलता था, जहॉ अब गिने-चुने दिनो के लिए उसका इतना ही हक बचा है कि फर्श से कुछ देर पीठ टिका ली जाए।

इंजिनियर साहब को देखकर मेरा मन उनकी गर्दन पकडने को लपकता था। उनसे बात करते वक्त लगता था कि मैं अपने ही पॉवो अपने आपको रौंद रहा हूँ। जिस बेरुखी से उन्होने नेता के दाह-कर्म के लिए मदद देने से इनकार किया था, वह मुझे बराबर कचोटती रहती थी। उधर वे जब से बाकायदा मुअत्तल हो गए थे और सरकारी जमात मे कोई सवाल करनेवाला नही रह गया था, वे मोटरसाइकिल छोडकर एक मारुति कार पर चढने लगे थे जो शायद उनकी चौथी कार थी। अब वे जब मकान का हालचाल पूछने आते तो, बिना बनियाइन, कुर्ता-काट टीशर्ट मे झलक रहे होते थे। उनका किसी फूहड गाली जैसा मोटा सीना उससे फूटा पडता था। वे गाडी मे ड्राइवर की सीट पर होते और कार्बाइन-धारी पप्पी पिछली सीट पर। मुझसे वे बहुत कम बोलते, बोलते भी तो एक बडी सभ्यतापूर्ण हिकारत उनकी आवाज से टपकती रहती।

लगता था कि मुअत्तल हो जाने के बाद उन्होने अपनी जिंदगी की पचवर्षीय योजनाओ मे काफी बडा सशोधन कर लिया है। एक दिन परमात्मा जी ने उन्हे बताया, "बडी कोशिश के बाद आपका मुकदमा जस्टिस खुराना की बेंच मे लगवा पाया हूँ। अरे वही अपना खुराना। वकालत के दिनो मे जब भी फोकट की ह्विस्की पीना होता,

हमारी कोठी की ओर टहलता चला आता था। अब भी भीतर-ही-भीतर बडा लिहाज करता है। आई ए एस का तो खानदानी दुश्मन है। सोचता हूँ, अगले महीने कोर्ट खुलने पर आपके केस को सुनवाई के लिए उसी बेच मे लगवा लूँ। कोई नई बात न पैदा हो गई तो उसी पेशी मे आपके खिलाफ सारी कार्रवाई 'क्वैश' करा लूँगा।''

'क्वैश' का उच्चारण उन्होने बडे तपाक से किया, जैसे एक लपलपाता उस्तरा उन्होने किसी की गर्दन पर तेजी के साथ बाएँ से दाएँ फेर दिया हो।

कुछ दिन हुए परमात्मा जी की कोठी से दो कुर्सियाँ और एक बडी मेज यहाँ पर आ गई थी जिन पर इंजिनियर साहब इधर अपना कैंप आफिस करने लगे थे। वे इस वक्त एक कुर्सी पर बैठे थे। परमात्मा जी की बात सुनकर किसी विलायती मार-धाडवाली फिल्म के हीरो की तरह वे धीरे-धीरे कुर्सी छोडकर खडे हो गए। झटके से सिर उठाकर उन्होने गर्दन सीधी की, सीना आगे फेक दिया—हालाँकि इससे उनकी ऊँचाई कुल जमा चौथाई इच ऊपर गई। फिर वे मेज के कोने पर नितब टिकाकर बैठ गए। डिब्बी निकालकर उन्होने एक सिगरेट सुलगाई, बुझी हुई तीली हाथ मे लिए हुए उन्होने चारो ओर निगाह दौडाई और उसके दायरे मे मुझे भी बेरुखी से देखा, गोया सोच रहे हो कि ऐशट्रे न रखने के जुर्म मे इसे क्या सजा दी जाए। फिर मेरी चारपाई की ओर, जिस पर मैं आराम से पडा था तीली फेककर, नाक से धुआँ निकालने के बाद बोले, ''अभी कुछ मत कीजिए।''

इस अभिनय के दौरान परमात्मा जी ने भी छोटा-मोटा अभिनय किया था। उन्होने एक डिबिया से पान निकालकर खा लिया था, दूसरी से मसाला और तीसरी से तबाकू निकालकर फाँक ली थी और मुँह को कुछ देर के लिए मोहरबद कर लिया था। उन्होने ठुड्डी उठाकर, आँख के इशारे से पूछा, ''क्यो ?''

''ऐसा है कि पन्नालाल मार्केट का दूसरा फेज शुरू हो गया है। उसे पूरा होने मे कम-से-कम डेढ साल लगेगा। वह रेडीमेड कपडो की फैक्टरीवाला मामला भी उलझा पडा है। वाइफ इस 'शुभकामना' वाले काम से ऊब रही हैं। कपडो के एक्सपोर्ट का मामला अभी तय नही हुआ है। अब वे कहाँ बार-बार दिल्ली भागेगी ? मुझे ही दौड-धूप करनी होगी। इधर दो-ढाई साल तक यह सब सरकारी नौकरी के साथ निभाना—कुछ मुश्किल ही दीखता है। अगर कोर्ट से जीत गया तो अजब नही कि वे साले मुझे बिजनौर या बलिया जिले मे किसी प्रोजेक्ट पर झोक दे। और सारा काम यहाँ अटका है।''

उन्होने सिगरेट का एक और कश खीचा, कहा, ''फिलहाल ऐसे ही चलने दे। मुझे अब सरकारी कुर्सी पर बैठने की जल्दी नही है।''

''पर पता नहीं, आगे मुकदमे का रुख किधर मुड जाए।''

''चाहे जिधर मुडे जीतना आखिर मे मुझे ही है।''

वे एक भारी-भरकम बयान हल्की आवाज मे दे रहे थे। देखने मे भले ही ठिगने हो,

उनकी जीन्स भले ही मॅगनी-जैसी हो, फूला हुआ सीना भले ही सूजे हुए फोडे-जैसा दिख रहा हो—इस वक्त वे यकीनन अपने को नीत्शे के महामानव से छोटा नही मान रहे थे, कहते रहे, "चार-पॉच साल बाद भी अगर वे मुझे नौकरी मे बहाल करते हैं तो क्या हर्ज है? पूरी तनख्वाह तो सालो को देनी ही पडेगी। डेढ-दो लाख का बकाया मिलेगा।"

परमात्मा जी ऑख सिकोडे, ओठ बद किए हुए, पान चबाते रहे। उनकी शक्ल से लगता था कि उनकी अक्ल इस भविष्यवाणी का साथ नही दे रही है।

इंजिनियर साहब कुर्सी मे दोबारा धॅसकर बैठ गए, मुस्कराए, बोले, "खरे को तो जानते होगे न?"

प्रश्नवाचक चिह्न के रूप मे परमात्मा जी की भौंहे सिकुडी।

"अरे वही, हमारे चीफ इंजिनियर सक्सेना का बहनोई। वार-सर्विसवाला आई ए एस था। सत्ताईस साल की सर्विस मे चार-चार, पॉच-पॉच साल के लिए तीन बार मुअत्तल हुआ। तीनो बार सब जगह से हारकर हाईकोर्ट से जीता, तीनो बार पूरी-पूरी तनख्वाह खीची, लाखो रुपए का एरियर लिया। मुझे गलत न समझिए, मेरा उसका कोई मुकाबला नही, मैं तो सिर्फ यह कहता हूँ कि ऐसे-ऐसे लडाकू भी पडे हैं। मैं उसके जैसा नही लड सकता, उसके लिए बडा जिगरा चाहिए। पर अभी मुझे दफ्तर की कुर्सी सॅभालने की जल्दी नही है।"

परमात्मा जी ने धीरे-धीरे सिर हिलाया, न ऊपर-नीचे, न दाऍ-बाऍ, बल्कि गोल-गोल।

"अब भी अगर इसाफ कही मिल सकता है तो सिर्फ हाईकोर्ट मे," कहकर उन्होने अपनी जलती हुई सिगरेट कमरे मे एक कोने मे फेक दी। मेरी चारपाई भी उसी तरफ थी।

मैं चारपाई से उठ खडा हुआ। चप्पल पहनकर जलती हुई सिगरेट तक गया। इजिनियर साहब के चेहरे पर निगाह गडाकर उसे रौंदा और बुझाया, इस तरह उन्हे असभ्य आचरण के खिलाफ एक खामोश सबक सिखाकर चारपाई पर दोबारा लेट गया।

उधर परमात्मा जी बाहर पान की पीक गिराने गए, इधर इंजिनियर साहब ने खिडकी की ओर तर्जनी उठाई। हवा मे भाला जैसा भोकते हुए बोले, "यह औरत अब भी उधरवाले कमरे मे रहती है?"

"मैंने इंजिनियर साहब से कहा, "कहॉ जाए?"

उन्होने मुँह बिचकाकर, कधे उचकाकर दोनो हाथो के पजे नाटकीय ढग से फैलाए।

परमात्मा जी लौट आए थे। अब उन्हे मुँह खोलने मे कठिनाई न थी। बोले, "क्या है?"

"इंजिनियर साहब जसोदा को देश-निकाला दे रहे हैं।"

उन्होने इंजिनियर साहब से नही, मुझसे पूछा, "क्यो ?"

"इन्ही से पूछिए।"

फिर भी परमात्मा जी मुझे ही देखते रहे। मैंने कहा, "वह बीमार है, ठीक होते ही यहॉ काम करने लगेगी।"

इंजिनियर साहब ने कहा, "उसकी हालत देखी है ? काम कैसे करेगी ?"

"उसके आदमी को मरे पद्रह दिन भी नही हुए।"

"वह तो सभी जानते हैं। पर बात तो काम की हो रही है।"

परमात्मा जी अपनी प्राचीन शैली पर उतर आए "भाई हम लोग पुराने जमीदार हैं। किसी को सताना नही चाहते, पर जब वह काम ही न कर पाएगी तो उसके यहॉ पडे रहने से क्या फायदा। यहॉ उसके लिए कोई हल्का काम नही है ?"

इंजिनियर साहब ने कहा, "यहॉ ऐसा कौन-सा काम होगा ? पन्नालाल टावर्स मे शायद निकल भी आए। वैसे जाना चाहे तो भट्ठे पर चली जाए, सिर्फ इतना देखना होगा कि ठेलो मे कोई 'बी' की जगह 'ए' क्लास का ईंटा न लाद दे।" फिर परमात्मा जी से बोले, "भट्ठे का काम ही वेहूदा है। उसे खत्म कर रहा हूँ। देखा नही आपने, चौकीदार पर भी चौकीदार रखने पडते हैं।"

मैं कुछ नही बोला। इंजिनियर साहब ने कहा, "क्या कहते हो ?"

"मुझे क्या कहना है। मैं उसका सरपरस्त हूँ ? आप खुद उससे बात कर लीजिए।"

"नही, बात तुम करना। उसे बता देना कि या तो पन्नालाल टावर्स पर जाए या भट्ठे पर।"

मैंने चारपाई पर लेटे ही लेटे अपना सिर दाऍ-बाएँ हिलाया।

इंजिनियर साहब फिर पहलेवाली शैली मे बोले, "क्या कहते हो ?"

"कहता यह हूँ कि" मैं चारपाई पर उठकर बैठ गया। "मैं जसोदा से यह जगह छोडकर जाने के लिए नही कह सकता। भट्ठे पर जाने के लिए तो हर्गिज नही। आपको याद होगा उसने बहुत पहले भट्ठे पर काम करने से इनकार कर दिया था। उसे डर है कि वहॉ आपके आदमी गुडागर्दी करेगे। वह वहॉ पर काम नही करेगी। इसके बाद अगर उसे यहॉ से भगाना है, सोने-बैठने का इतजाम कही और करने को कहना है तो ऐसी बात मैं नही कहूँगा। अभी-अभी वह बेवा हुई है, बच्चा पेट मे है। उसकी जान-पहचान के दस-पॉच बिलासपुरी परिवार यही आसपास काम पर लगे हैं। वह उनके साथ रह सकती है। पर मैं उसे यहॉ से निकाल नही सकता। निकालना ही है तो जीजा जी उसे निकाले। मकान उनका है और फैसला भी उन्ही का चलेगा। क्या समझे इजिनियर साहब ?"

"आपके मुँह मे यह जो चमडे की जबान है न, गदी तो पहले ही थी, इधर कुछ लबी भी हो गई है।"

इंजिनियर साहब की यह बात सुनने के पहले ही मुझे एहसास हो गया था, मैं विला वजह गलत डाइलाग बोल गया हूँ। उपर्युक्त डायलाग, जो डेली पैसेजरो वाली बेलौस बेफिक्री के साथ शुरू हुआ था, अपने एक-एक अक्षर मे मेरे मन की पूरी ईमानदारी और कचोट से भीगा होने के बावजूद, खत्म होते-होते मुझे खुद फिल्मी जैसा जान पडने लगा था। इसलिए इंजिनियर साहब की बात, अपनी बदतमीजी के बावजूद, मुझे उतनी बदतमीज़ नही लगी। मैंने समझा कि वह एक तरह से मेरी ही बात थी जो अपने भटके हुए विवेक की वापसी पर में खुद भी कह सकता था।

पर बात जिधर निकल गई थी, उधर और आगे बढते जाने का भी एक नशा था जो मुझ पर हावी हो रहा था। अचानक ऐसा हुआ हो, ऐसा न था। इंजिनियर साहब एड कपनी ने इधर जिस तरह मकान का काम अपने हाथ मे ले लिया था, उससे मेरा यहाँ होना लगभग बेमानी हो गया था और मैं किसी भी समय अपना रास्ता नापने को मजबूर किया जा सकता था। इसी के साथ इंजिनियर साहब का तौर-तरीका जिसे हम आपसी जबान मे नक्शेबाजी कहते—इतना खिझाऊ था कि उनकी शक्ल देखते ही लगता था, नाक के आगे सीवर का ढक्कन खुल गया है। वे ऐसे लोंगो मे थे जिनको देखते ही पहले एक झॉपड रसीद किया जाता है और फिर पूछा जाता है, 'कहो भाई, तुम्हारा नाम क्या है ?' इसी सबसे मैं कई दिन से परमात्मा जी की मुशीगीरी छोडने के लिए अपने को मन-ही-मन तैयार करता रहा था। मैंने इजिनियर साहब से कहा, "आप मुझसे उम्र मे बडे हैं। फिर आपके पीछे बडी-बडी राइफले और कार्बाइने हैं। मैं भारतमाता का एक मामूली-सा निकम्मा बेटा हूँ। आपकी गाली का जवाब गाली से देने की मेरी हैसियत नही।"

परमात्मा जी बोले, "अरे भाई, प्रेम की बोली बोलो। इस सबमे क्या रक्खा है ? मगर क्या है कि "

"क्या है कि " कहने का बबइया तर्ज परमात्मा जी ने इधर नया-नया सीखा था। मैं कई दिन से देख रहा था कि जब कोई टेढी-मेढी बात उन्हे मुँह से निकालनी होती तब इस पस्तावना का वे सहारा लेते थे। मैंने उन्हे ध्यान से देखा।

"मगर क्या है कि मजदूरो की देखरेख तो भाई तुम्हारे ही हाथ मे है। इसलिए जसोदा को हटाना है तो तुम्ही हटाओगे। जैसा चाहो, वैसा करो। बस भाई, मेरे कपाउड मे कोई झमेला न पैदा करो।"

उनके जैसा नर्मदिल आदमी भी ऐसा हो जाएगा, मुझे झटका लगा। बोला, "जीजा जी, क्या है कि अब मेरे लिए यहाँ कोई खास काम तो बचा नही है। दूसरे लोग सारा काम ठीक से कर ही रहे हैं। इसलिए अगर हटने-हटाने की बात चली है तो मुझे ही हट जाने दे।"

तबीयत मे काफी गर्मी भरी थी। अगर मैं कोई फिल्मी हीरो होता तो ऐसी ठडी बात कहने के बजाए पहले कोने मे पडे पेट के खाली डिब्बे को जोरदार ठोकर मारता जिससे

प्रतीक रूप मे यह प्रमाणित होता कि मैं इस जलील नौकरी को ठोकर मार रहा हूँ, फिर वह डिब्बा फुटबाल की तरह हवा मे उडकर सामनेवाली खिडकी के शीशे को चूर-चूर करता जिससे यह प्रमाणित होता कि मैं गरीबी और अमीरी के बीच की दीवारे तोड रहा हूँ। पर मैंने ऐसा कुछ नही किया। चुपचाप चारपाई पर लेटा रहा और परमात्मा जी का मुँह निहारता रहा।

वे बोले, "यहाँ मन नही लगता तो कोई और काम खोज लो। पर आपस मे बिगाड करने की क्या जरूरत है?"

शायद इतनी सभ्यता इंजिनियर साहब के लिए असह्य थी। वे उठकर खडे हो गए। बोले, "नमस्कार! मैं चलता हूँ।"

साथ ही उनकी मुद्रा ने कहा, 'उसी के साथ तुम दोनो जाओ जहन्नुम मे।'

3

गॉव के स्टेशन पर उतरते ही पुरवाई के जिस ठडे झोके ने मेरे चेहरे को छुआ, वह मेरे बचपन के दिनो का बासीपन लिए हुए भी एकदम ताजा था। उसे छूकर जसोदा की जगह पिछले दिनो की चमकदार आँखोवाली मेमसाहब एक पल के लिए लौट आईं। मैंने कहा, "चलो मेमसाहब, यहाॅ से मील भर पैदल चलना होगा।" रेक्सीन से ढकी एक कार्ड बोर्ड की अटैची थी। कभी मुझे उस पर वडा घमंड था। शहर मे फाइवर के सूटकेसो के लकदक विज्ञापन देखते-देखते अव मैं इसकी हैसियत समझ गया था। हिकारत से उसे मैंने सुरेस के सिर पर—या यो कहिए कि सिर पर लदे जसोदा के टीन के बक्से पर फेका। कहा, "चल वेटा गिरधारीलाल।" रेलवे लाइन के किनारे जाती हुई पगडडी पर हम तीनो उतर आए। टिकट मेरी जेब मे थे। किसी ने उनकी फरमायश न की। पुरानी आदत के जोर से एक बार दिल मे कचोट उठी, वेकार ही किराये मे पाँच का नोट फूॅक दिया।

पगडडी पर उतरते ही, असाढ़ की गर्मी के वावजूद, शाम की सुहानी धूप में जब पुरवा ने जमीन पर गर्द के बवडरो की पटखनी दी और नीम के पेडो की टहनियाॅ सरसराईं तो मन मे एक नई उमग और हिम्मत पैदा हुई। अभी सात-आठ दिन मे ही आसमान बादलो से ढक जाएगा, वे पेड असाढ़ के पहले दौंगरे मे भीग रहे होगे, तब मेरी भी जिदगी का मौसम बदलेगा, तपन के छोटे-छोटे धब्बे भले ही रह जाएँ, चारो ओर से बॅधा हुआ दमघोटू उमस का यह घेरा टूटेगा—जरूर टूटेगा।

अपनी भावुक आशावादिता पर हँसी आई। काश, सचमुच ही यह इतना आसान होता! आज तक तुम्हारे साथ जो हो रहा था, उसका धुएँ के किसी जादुई बवडर मे एकदम गुम हो जाना, उसकी जगह अपने मनपसद भविष्य के महल का फिलमी अदाज मे अचानक उभर आना, उस तक पहुॅचने के लिए हरी-भरी क्यारियों, फूलो और आरामगाहो के वीच किसी लवे-चौडे रास्ते का अचानक खुल जाना! काश पर पुरवा मेरे चेहरे पर ठडक उॅडेल रही थी, मेरे खुले हाथो पर रोवो को सिहरा रही थी, मेमसाहब की आॅखो मे नेता की मौत के वाद शायद पहली बार चमक दिखी थी और सुरेस—दो बक्सो के बोझ के वावजूद—मुस्तैदी से यूॅ चल रहा था जैसे इस पगडडी से वह रोज ही गुजरता रहा हो।

यही वह बाग थी जिसमे जाड़े की अँधेरी रातों मे मैंने प्रेमबल्लभ के साथ लकडी के कोयले का रहस्य-रोमाच भोगा था। चोरी की थी। वह मूल्यपरक फैसला आज भले ही दिया जा सके पर तब कोयला उठाने मे चोरी का अपराध-बोध कहॉ था? जगल मे किसी धारा का पानी पीते हुए जब कोई हिरन शेर की आमद के बारे मे चौकन्ना रहता है तो उसे अपने बचाव का एहसास भले ही रहे, पानी की चोरी की बात उसके भेजे मे कभी आ सकती है? हम दोनो ऐसे ही थे। रखवालो से बचे रहना एक बात थी, पर चोरी के अपराध से कुंठित होने की बात हमारे मन मे कभी आई ही नही। जैसे बिना टिकट रेल का सफर, जो ज्यादा-से ज्यादा टिकट चेकरो के साथ ऑख-मिचौनी के खेल जैसा था।

और यह पुरवाई? जिस भरोसे से वह यहॉ घूम रही है, उससे साबित हो चुका है कि यह अपने आपको यही का समझती है। यही की है भी। जिसे मैं पीछे छोड आया हूँ वह उस शहर की होगी। वहॉ जो कल रात से अचानक बहने लगी है वह कोई दूसरी पुरवा होगी जिसे खुले मे चारपाई पर लेटे हुए महसूस किया था। सीमेट और काक्रीट की गुफाओ मे कही-कही इस हवा की फुफकार जैसी गूँजी थी, बस इतना। और दिन मे, यहॉ आने की तैयारी मे जब मैं सडके नाप रहा था, यह होते हुए भी गायब थी। पेडो की टहनियो को यह जरूर झकझोर रही होगी, पर मैंने देखा नही। देखने को रिक्शे, स्कूटर, मोटरे, बसे थी, ट्रक थे, जिनकी चपेट मे आए बिना मुझे सडक पार कर लेनी थी। सुवर, गाय और गध से भरी-पूरी, कूडे के ढेर से गँधाती गलियॉ थी। उन्हे पार करके एक दूसरी चौडी सडक, उसमे एम्प्लायमेट एक्सचेज के बडे हाकिम का बडा कमरा था जिसमे एक बडा कूलर घर्र-घर्र करता हुआ चिपचिपी हवा फेक रहा था। उस हाकिम के हाथ मे मुझे देने को कुछ भी न था। उससे कुछ दूर रेट कट्रोल आफिस का उमस भरा, पसीने से तर-बतर कमरा था जहॉ का इस्पेक्टर सिफारिश के आधार पर मुझे कुदनपुर कोठी का एक कमरा एलाट करने को तैयार न था। "इस एक कमरे के लिए इसे एक हजार की घूस चाहिए। मैं तुम्हारी ओर से दो सौ तक देने को तैयार हो गया हूँ। मान नही रहा है। पर घबराओ नही, टडन साहब को छुट्टी से वापस आने दो। तब इस इस्पेक्टर की खटिया खडी कर दूँगा।" वहॉ के एक क्लर्क ने, जो कभी मेरे साथ डेली पैसेजरी करता था, मुझे समझाया था। उसी दिन तीसरे पहर परमात्मा जी के नए मकान पर लौटकर जसोदा और सुरेस के साथ मैं अपने गॉव के लिए चल दिया था।

परमात्मा जी ने कहा था

"देखो भाई, तुम युवाशक्ति हो। तुम्हारी तुनकमिजाजी मैं समझता हूँ। पर अपने इजिनियर साहब अफसर आदमी हैं। उन्हे ऐसी साफगोई पसद नही है। तुम्हारी उनकी टुन्न-फुन्न होने लगती है तो मुझे बडी उलझन होती है। किसकी तरफ से बोलूँ और बोलूँ तो क्या बोलूँ? तुम हो भाई युवाशक्ति, तुम्हे तो उस वक्त टोका नही जा सकता। और वह ठहरे अफसर, हमेशा यस सर सुनने के आदी। यस्सर, यस्सर, यस्सर–उनके कान इसी के आदी हैं। बीच मे वे कोई दूसरी आवाज क्यो सुनेगे? अब

भैया, युवाशक्ति और अफसर के बीच मारा गया वकील । वकील की किस्मत ही ऐसी है, सभी की अकड उसे झेलनी है । जज भी अकडकर बोलता है, उसके मन की बात न करो तो मुअक्किल भी अकडकर बोलता है । पेशकार तो हमेशा ही अकडा रहता है और जो दूसरे फरीक का वकील है, वह तो अकडकर बोलने की फीस ही पाता है । तो भाई युवाशक्ति, तुम भी जितना चाहो उतना अकड लो ।

''ठीक ही है । यहाँ तो वैसे भी काम खत्म होनेवाला है । जो कल होना है, आज ही हो जाए । तुम छोडना चाहते हो तो छोड दो । तुम्हें इसी में ठीक लगता है, तो वही सही ।

''वाइफ का एक प्लाट तालकटोरा रोड पर पडा है । उस पर भी दो फ्लैट बनवाने हैं । अगर तुम्हारा मन हो तो वह काम हाथ मे ले लेना । वैसे, हमारा क्या? किसी-न-किसी तरह काम चल ही जाएगा ।

''इंजिनियर साहब मे तुम्हारी निभ नही पाई, इसका अफसोस जरूर होता है । वे करोडपति आदमी हैं । तुम्हारी पटरी बैठ जाती तो तुम्हारे लायक सैकडो काम निकलते । उनके यहाँ नौकरी भी चल सकनी थी, साझेदारी भी, ठेकेदारी भी और वकालत भी ।'' तब जैसे कोई बदर सूखी डाल को झिंझोडकर हिला रहा हो, युवाशक्ति मेरी खोपडी पर चढ़कर मेरी नस-नस को झकझोरती हुई बोली, ''इंजिनियर साहब की नौकरी या साझेदारी करनी हो तो उसके मुकाबले डकैतो के किसी गिरोह में घुस जाने में क्या बुराई है? चबल घाटी के मरियल-से-मरियल डाकू की भी इनसे ज़्यादा इज्जत होगी ।''

परमात्मा जी ने युवाशक्ति द्वारा दिए गए इस विकल्प पर थोडी देर गौर किया, कहा, ''उसमे बडी मेहनत है । तुमसे नही सपरेगा ।'' पहली बार मैंने उनके मुँह मे एक बेझिझक अश्लील शब्द सुना, ''वहाँ के भरको मे तुम्हे एक बार भी चढ़ना-उतरना पडा तो तुम्हारी वह जो   है, सडी मारकीन जैसी भर्र से फट जाएगी ।''

मैंने बुरा नही माना, बुरा मानने की बात भी न थी । अपनी आदत के खिलाफ वे पहली बार मेरे आगे एक ऐसा असंसदीय शब्द बोल रहे थे जो अच्छे बच्चे कभी मुँह से नही निकालते । इससे सिर्फ यह साबित होता था कि इंजिनियर साहब के लिए उनके मन मे जो श्रद्धा-विश्वास है, वह उनके मन, वचन और कर्म पर पूरी तौर से छा गया है । मैंने कहा, ''आप ठीक कहते हैं जीजा जी, वहाँ भी मेरा आपसे कोई मुकाबला नहीं । कहाँ आपकी गेबर्डीन, कहाँ मेरी सडी मारकीन!''

अश्लीलता का गोद लगा देने से जीजा-साले का पारपरिक रिश्ता फटते-फटते एक बार फिर जुड गया । वे हँसे, बोले, ''भाई, नो हार्ड फीलिंग्स । आते-जाते रहना ।''

कार्ड बोर्ड की अटैची के अलावा, जिसमे एक पतली दरी और दो-चार पुराने-धुराने कपडे थे, मेरे पास कधे से लटकाने के लिए एक नीला-सफेद झोला भी था । उसके एक

ओर 'एअर इंडिया' लिखा था, दूसरी ओर 'वी आई पी ', दरअसल उसका इन दो से कोई भी रिश्ता न था। ऐसे सस्ते झोले यहीं अमीनाबाद मे बनते हैं। वह, और उसमे एक किताब, कुछ कापियाँ, एक टूथ ब्रश और पेस्ट, साबुन की एक घिसी टिकिया—यही मेरी, सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्ताँ हमारा के एक एम ए डिग्री-शुदा नौजवान की, सारी चलाचल सपत्ति थी। हाँ, इसके अलावा 'भाँग की पकौडी' नामक एक फटी हुई किताब भी थी जिसमे एक नाजनी हसीना को भाँग की पकौडी खिलाकर उसके साथ की गई भाँति-भाँति की लीलाओ का सचित्र वर्णन था। यह उन किताबो मे से थी जो चुराकर छपती और बिकती हैं और चुराकर अकेले में या ऐसे दोस्तो मे पढी जाती हैं जो बिलकुल शाब्दिक अर्थ मे लँगोटिया हो। यह किताब कई महीने से मेरे झोले के पेदे मे पडी हुई थी। जिसके हाथो सौंपकर इस गलीज से मैं फुरसत पा सकता, ऐसे सुपात्र मित्र का इतजार कर रही थी।

जेब मे दो-तीन हरे पत्ते भी थे—सौ-सौ के नोट। अभी दो पत्ते प्रेमबल्लभ से भी मिलने थे। इनके सहारे दो महीने तक परमात्मा जी की युवाशक्ति यानी माबदौलत को असली परमात्मा जी की भी परवाह नही थी।

चलने के पहले जसोदा रोई थी—खामोशी से और दूसरी ओर मुँह फेरकर। सुरेस ने उसका हाथ पकडकर खीचा था। घुडककर रोने से मना किया था।

झोले की इबारत देखी जाए तो लबे सफर पर जानेवाला मैं वी आई पी था। एअर इंडिया से विलायत जाने को तैयार खडा था। पर जसोदा का विलाप देखकर मैं उसी क्षण उस दुनिया के कीडो-मकोडो और भुनगो मे शामिल हो गया था जिसमे जमीन से उखडकर कोई एक सैकडो मील दूर मजदूरी करने आता है, कही पर साघातिक चोट खाकर अस्पताल मे पहुँचता है और वहाँ से लावारिस लाश बनकर निकलता है, पुलिस के कागजो मे एक दुर्घटना बनकर गुम हो जाता है, एक घबराई हुई, गर्भवती बेवा को रात की खामोशी मे थम-थमकर रोने के लिए छोड जाता है।

अब तक वह मेरे आगे कभी नहीं रोई थी। दूर से ही उसका रोना सुना था। उससे भी ज्यादा जिन्होने उसका रोना सुना था उनकी बाते सुनी थी। जब और लोग सो जाते थे तब कही से रोने की आवाज आती थी। उस आवाज मे किसी बिधे हुए घायल जानवर की यत्रणा थी। वह स्वर सीधा आसमान की ओर बढता जान पडता था। फिर मिट जाता था, उसके बाद रह-रहकर उसकी आवृतियाँ होती थी। कभी-कभी देर से लौटनेवाला कोई मजदूर सडक पर, किसी को सबोधित किए बिना, पूछता, 'कौन रो रहा है ?' तब किसी अधबने मकान के अहाते मे पड़ा कोई दूसरा मजदूर निंदारी आवाज मे कहता, 'जसोदा है। उसका आदमी नही रहा।'

मैंने उसकी व्याकुलता का कभी सीधा सामना नही किया था, करना भी नही चाहता था। पर आज कर रहा था। मेरी सारी चालाकी, सारी दुनियादारी इस खुले हुए

विषाद के सामने जड बन चुकी थी।

"मुझे शकरगढ़ पहुँचा दो मुसी।" उसने अचानक कहा था।

मैंने जवाब दिया, "अब शकरगढ नही। जो पहले तय किया है, वही करो।"

"समझ मे नही आता कि क्या करूँ।"

यह दूसरी जसोदा थी, वह नही जो कुछ दिन पहले कह चुकी थी कि उसे किसी की देखरेख की जरूरत नही है।

मैंने कहा, "तब वही करो जो मैं कह रहा हूँ। अब चलो।"

हमारा खानदान एकदम दरिद्र नही है, गरीब ह। बाप बेवकूफ हैं, पर बाबा सुनते हैं ऐसे न थे। गॉव मे झूठ-मूठ की यानी कुछ पाई की जमीदारी थी। यूँ कहिए कि पूरे गॉव की मिल्कियत एक रुपए की हो तो सिक्को मे दशमलव प्रणाली लागू होने के पहले की कुछ पाइयो के बराबर जमीन हमारी थी। पर उसे भी बाबा जमीदारो की तरह नही सँभाल पाए और मुकदमेबाजी, पारिवारिक कलह, कपटी नौकर और रुपए की कीमत की परख न होने से अपने समय मे ही अदना किसान बन गए। इसमे दो और कारण भी जुडे थे। एक तो हमारे बाबा के चार कन्याएँ हुईं जिनके दहेज का जुगाड करते-करते बाबा के पॉव के नीचे कुऑ निकल आया, दूसरे यह कि उन्हे सास्कृतिक कार्यो से बेहद प्रेम रहा, यानी कोई भी जवान बेडिन उन्हे नाच दिखाकर और 'लबरदार' का खिताब देकर अच्छा इनाम खीचने मे कामयाब होती रही।

मेरे लिए ये सुनी-सुनाई बाते हैं। जैसे कि खुदकाश्त और सीर जैसे शब्द भी मेरे लिए सुने-सुनाए हैं। खुदकाश्त जमीदारी की वह जमीन है जिसे कानून मे बताए गए एक किसी खास फस्ली साल के बाद जमीदार साहब ने किसान से छुडाकर खुद जोतना शुरू कर दिया हो। यह दूसरे दर्जे की सपत्ति है। सीर वह चीज हुई जो आपकी जमीदारी मे हो और पुरखो के जमाने से आपके कब्जे मे रही हो। वह पुख्ता तौर पर आपकी अपनी चीज है। पर अपने खानदान की सीर और खुदकाश्त बाप के मालिक होते-होते जिनके कब्जे मे चली गई थी उनके हाथ से नही लौटी और जो लौटी भी उसके आज भी मुकदमे चल रहे हैं। मुकदमे भी किसके साथ? अपने ही खानदान वालो के साथ।

बहरहाल, हमारे बाप ने जब ऑख खोलकर चारो ओर परिदृश्य का सिहावलोकन किया—माफ कीजिएगा, कैसा सिह और कैसा अवलोकन—तो पता चला कि नए भूमि व्यवस्था कानून मे हमारे सारे बटाईदार हमारी जमीन के भूमिधर बन गए हैं, अधिकाश जानवर बहुत पहले मर चुके हैं, उनकी सारी हैसियत पद्रह बीघा घटिया जमीन और आधे बीघे मे बसे हुए कच्चे घर मे सिमटकर रह गई है। कुछ और भी बचा था—सामने के सहन मे नीम के दो सतरीनुमा पेड, एक घटिया गाय, बैलो की एक मरियल गोई और कुछ पुराने जेवर जो कई साल हमे जिदा रखने के काम आए।

अत मैंने जब शहर मे जाकर कालिज मे दाखिला लिया तो फीस से छूट पाने के

लिए कक्षा मे मैं बहुत वाजिब उम्मीदवार साबित हुआ ।

अब आइए इस छप्पर-छाए महल मे ।

घर मे घुसते ही मैंनें देखा, बहन बर्तन मॉज रही है । उसने पुकारकर कहा, "अम्मा सत्ते आ गए ।"

मैंने कहा, "क्या हुआ तेरे उसका ? अब भी लटका है कि नौकरी मिली ।"

उसका चेहरा खिल गया, बोली, "बडे दद्दा ने तीन हजार लगाया, उसी से उन्हे नौकरी फिर से मिल गई । तुम कैसे हो ?"

मैंने कहा, "अम्मा की कुडली मे इस साल के अत तक मृत्यु-योग लिखा है । बची हैं, कि गई ?"

'तभी अम्मा कोठरी से निकलकर छप्पर के नीचे विराट् बरामदे मे आई, बोली, "यह कौन है ?"

'यह' यानी जसोदा तब तक नाबदान के पास जा चुकी थी । जो जूठे बर्तन मलने को बचे थे उनमे से एक को उठाने लगी थी । बहन ने कहा, 'नही-नही मैं कर लूँगी', तब तक वह गीली ईटो पर बैठकर बर्तन रगडने लगी थी । सुरेस मुँह टेढा-मेढा करता हुआ सिर पर बोझ लिए खडा था ।

अपने कधे से झोला उतारकर उसे ऑगन मे नीम के नीचे खटिया पर पटकते हुए, उसके बाद सुरेस के सिर से जसोदा का ट्रक उतारते हुए मैंने कहा, "यह तुम्हारी बहू है ।"

बात मजाक मे कही थी और अम्मा शायद समझ भी गई । दो-तीन दिन पहले मैं खबर भेज चुका था कि दो बिलासपुरी मजदूरो को लेकर गॉव आनेवाला हूँ । पर अम्मा ने तीखेपन से कहा, "लूमड कही का, क्या बक-बक कर रहा है ? यह कौन है ? और यह कौन है ?"

"अपना ही साला है अम्मा । चिल्लाओ नही । जरा चाय बनाओ । उसके बिना काम नही चलेगा ।"

"कौन है ये ?" कहती हुई भाभी ने तब तक घर मे प्रवेश किया । हाथ मे पीतल का लोटा, मत्थे पर खिचा हुआ आधा घूँघट । मोटी देह पर, जिसका सलोनापन अभी मिटा नही था, लिपटी हुई उठग साडी ।

मैंने उनके चरण छुए, झमेले मे अम्मा के चरण अनछुए ही रह गए थे । लोटा एक किनारे रखकर पीठ पर गीला हाथ रखते हुए उन्होने आशीर्वाद दिया ।

कुछ-कुछ हॉफ रही थी । गॉव के किनारे की बागे और पास के जगल जब से कटकर वीरान बन गए तब से उन्हे और दूसरी औरतो को सवेरे-शाम वाली क्रियाओ के लिए दूर जाना पडता है । जहॉ भी कही किसी मेड की आड मिल जाती है या किसी इकलौते अरडे की छॉह, उसी से गुजारा करना पडता है । पुराने जमाने के ऋषिमुनि

आज इस इलाके मे होते तो नदी के एकात किनारे और किसी घने वन की तलाश मे पेट दाबे-दाबे पद्रह साल से भटक रहे होते।

"ये तुम्हारी देवरानी है भौजी।" मैंने कहा, और उन्होने अपने खूब गोल, खूब चौडे चेहरे की मुस्कान का गुब्बारा बनाते हुए गदा लोटा उठाकर मेरी पीठ पर पटकना चाहा। इत्मीनान हुआ कि उन्होने मजाक समझा, पर अम्मा बोली, "इसे लेकर इस्सी दम इस्सी दम वापस जाओ, नही तो टॉग तोड दूँगी।"

मैं भाभी को दूसरी ओर ले गया और जसोदा के बारे मे बताने लगा।

"कौन आया है।" बरोठे मे खटिया तोडते हुए बाप ने इसी बीच मे पुकारा। उनके पास पहुँचा, पैर छुए, असीस पाई। उन्होने अपना सवाल दोहराया। मैंने कहा, "कमर के क्या हाल हैं?"

"अब लाठी के सहारे पुरानी बाग तक टट्टी चला जाता हूँ। पहले तो उधर के खॅडहर मे ही ईंटे रखनी पडी थी," उन्होने बताया। कमर का हाल मुझे मालूम हो गया। उसी के साथ, शहर में रहते हुए जिसे भूल गया था, उसकी याद भी ताजा हो गई, कि चाहे भौजी हो, चाहे बाप, सबके दिमाग पर जो समस्या सबसे ज्यादा हावी है, वह टट्टी है। उसके अनेक नाम हैं। दिशा मैदान, जगल-झाडी, टट्टी। यानी जहॉ भी ओट मिल जाए उसी के पीछे मल-विसर्जन कर दो, उसे ज्यादा गरिमामय बनाना हो तो हमारे इटरमीडिएट के सस्कृत के पंडित का पुरीषोत्सर्ग कह लो। तेन काकेन तस्य शिरस्युपरि पुरीषोत्सर्ग कृत ।

"दवा कौन-सी कर रहे हैं?"

"अब तो ठीक हो गया हूँ। पचगुण तेल की मालिश कराता हूँ।"

"कहॉ मिला?"

"बडे भैया से"—यानी चाचा से, जिन्होने मेरे बाग उजाडे हैं और हम पर दीवानी के तीन दावे ठोक रखे हैं।

"कौन है?" कमर को सीधा करते हुए, और यह दिखाते हुए कि वे कितना ठीक हो गए हैं उन्होने पूछा। मैंने जसोदा का पूरा इतिहास बता दिया।

कहा, "मेहनती औरत है। यह गूँगा लडका भी यहाँ के गरियार मजदूरो से दुगुना काम करता है। असाढ के दिन आ गए हैं। छानी-छप्पर का काम है। खेतो पर भी काम रहेगा। यही पर ये लोग महीना-दो महीना पडे रहेगे, आप लोगो को भी सुभीता रहेगा।"

"पर मैंने दूर से देख लिया है, उसका तो पॉव भारी है। काम क्या करेगी?"

"बर्तन तो मॉज ही लेगी। आते ही बर्तन मॉजने लगी है।"

"मर्द नही रहा तो पॉव कैसे भारी हो गया?"

"भगवान की माया है। सुनते हैं मरने के पहले वही उसके पॉव मे पत्थर बॉध गया था।"

वाप सोचते रहे । दीन भाव से बोले, "सत्ते वेटा, वुढ़ापे मे मेरी नाक न कटाना ।"

"तुममे यही खरावी है वापू, कमर सीधी हुई नही कि ऑय-वॉय-शॉय बोलना शुरू कर दिया ।"

वहन ने पुकारा, "चाय तैयार है ।"

अदर ऑगन मे चारपाई पर कॉसे की थाली रखी थी । उसमे चार-छह आटे के लड्डू थे—गुड के नही, वाकायदा घी और शक्कर के, उनकी मटमैली गोलाकार सतह पर चिपकी हुई चिरौंजी और किशमिश दूर से चमक रही थी । पीतल का एक लोटा नीचे जमीन पर रखा था जिससे भाप उठ रही थी । उसी के पास स्टेनलेस स्टील का ग्लास रखा था । बनानेवाली कपनी का कागजी विल्ला अभी तक उस पर चिपका था । मेरे सम्मान मे, जाहिर था, यह नया ग्लास निकाला गया है । इसे, और इसके जैसे तीन और ग्लास कुछ दिन पहले मैं ही शहर से खरीदकर लाया था ।

तव तक शायद जसोदा और सुरेस की गाथा पूरे परिवार मे फैल चुकी थी और दोनो को अपनी-अपनी हैसियत के मुताबिक आसन दिए जा चुके थे । जसोदा नावदान से कुछ हटकर छप्पर के नीचे लिपे-पुते, पर धूल भरे चवूतरे पर मजदूरो की लोकप्रिय मुद्रा मे वैठ गई थी—पॉवो के दोनो पजे जोडकर आगे जमीन पर रोपे हुए, देह का सारा भार धरती पर जमे हुए नितंबो पर छोडे हुए, दोनो हाथ घुटनो के वाहरी हिस्सो को समेटकर पॉवो को सहारा देने की गरज से आगे आकर फॅसाए हुए, वायॉ पजा दाएँ हाथ की कलाई को जकडकर पकडे हुए । चारपाई पर पडे हुए अँगोछे की मदद से लोटे को पकडकर ग्लास मे चाय उँडेलते हुए मैंने सोचा, सात महीने की गर्भवती को इस आसन मे क्या आराम मिल रहा होगा ? जसोदा वहन से धीरे-धीरे जो वता रही थी उसका सवध परमात्मा जी के ढुलमुलपन से था । जाहिर था, नेता की कथा सुनाई जा चुकी है और बात का रुख़ अब हल्के उपाख्यानो की ओर मुड चुका है । सुरेस ऑगन के दूसरे कोने मे नीम के पेड के नीचे अपने अल्यूमुनियम के लोटे में सत्तू घोल रहा था । मैंने थाली से एक लड्डू उठाकर उसे लेने का इशारा किया । वहन का ध्यान जसोदा पर था । मेरे लड्डू उठाते ही न जाने कैसे उसकी तीखी निगाह मेरी ओर मुड़ी । वोली, "अव घी का लड्डू खिलाकर उसका दिमाग न बिगाडो । अम्मा ने उसे पहले ही गुड दे दिया है ।"

"दिमाग तो वेचारे का क्या विगडेगा, हाज्मा भले ही विगड जाए ।" मैंने कहा, पर उसे लड्डू देने पर आगे जोर नही दिया ।

रात मे पुरवा का जोर कम हो गया और आसमान पर असाढ के पहले वादलो की पर्त दिखाई देने लगी । गर्मी की चिपचिपाहट से वचने के लिए मैंने वान की चारपाई पर दरी भी नही विछाई थी, खटेटे मे लेट गया था । मेरी ऑख के आगे नीम के दो ऊँचे पेड थे । एक पेड जामुन का । चारपाई दरवाजे के वाहर सहन मे पडी थी । उसकी दाई ओर कुछ

हटकर वूढ़े वैलो की एक गोई बँधी थी, एक ऊँचे कद की गाय थी, काफी दूध देनेवाली नस्ल की, पर उसकी पसलियाँ निकली थी और दूध अव वह एक ही जून देने लगी थी। वह कितनी कुलच्छनी है, इसका व्यौरा बाप पहले ही दे चुके थे, एक तो गाभिन होने के पहले ही वह यकजुनी हो गई थी, दूसरे यह कि उसकी पिछली सतान वछडा न होकर वछिया थी। बछडा होता तो आगे चलकर वह इस गोई का जॉनशीन होता, वैसा ही एक दूसरा खरीदकर इन वूढ़े बैलो की जगह एक लस्टम-पस्टम नई गोई बन सकती थी। वछिया वेकार थी।

इस वक्त यह वछिया ही मेरी नीद हराम किए हुए थी। बार-बार रभाती थी और, हार्लाकि पिछले दिनो की लू मे मच्छर-वश का काफी विनाश हो गया था, वह वरावर सिर झटक रही थी और पूँछ पटक रही थी। पूँछ बैल भी पटक रहे थे और रह-रहकर जुगाली रोककर मुँह से फुफकार जैसी निकाल रहे थे। वाहर के सहन मे मैं अकेला था और मुझे नीद नही आ रही थी।

बडे भाई की ड्यूटी दो मील दूर एक डाकबँगले पर थी। वे चकवदी मे लेखपाल थे जो अफसरी जीने की सबसे निचली सीढी है। डाकबँगले मे उनका कोई हाकिम रुका था जिसे गाय का शुद्ध दूध पीने की आदत थी। भाई की ड्यूटी लगी थी कि वे हाकिम के सोने के पहले दूध का ग्लास उसके कमरे मे पहुँचाएँ और सबेरे जब वह सोकर उठे तो शुद्ध दूध मे चाय की कुछ पत्तियाँ मिलाकर उसे बेड-टी के रूप मे अर्पित करे। चूँकि वह ब्रह्म मुहूर्त मे उठने का आदी था इसलिए भाई को वही डाकबँगले पर सोना पड गया था। मजाक मे मैंने भाभी को सुझाव दिया था कि भाई की जगह रात मैं ही छत पर सो जाऊँ, पर उन्होने जसोदा का नाम लेकर मेरे ऊपर मजाक पलट दिया था। कहा था कि तुम मेरे साथ ऊपर सोए तो यह बिलासपुरिया कुएँ मे कूदकर मर जाएगी। इस वक्त, रात के अँधेरे, अकेलेपन और पेडो मे हवा की सरसराहट के बीच इस मजाक पर पुनर्विचार करते हुए मैंने जसोदा के बारे मे सोचना चाहा पर अब बात बदल चुकी थी। मैं उसमे नेता की गर्भवती विधवा के सिवाय कुछ और नही देख पाया। बछिया वरावर रभाती रही।

एक इत्मीनान था। सुरेस और जसोदा यहा महीना-दो महीना चैन से रह लेगे। उनकी सेवाएँ घर मे सभी ने बिना ज्यादा रगड-झगड के कुबूल कर ली थी।

गाँव के दूसरे सिरे से कुत्तो के अचानक भूँकने की आवाज आई। कौन होगा या होगे, जिसे या जिन्हे देखकर कुत्ते भूँक-भूँककर आसमान की छाती फाड रहे है? डाकू? मैंने वेचैनी से करवट वदली।

यह अखवारो और अफवाहो की मेहरबानी है। आज से सात-आठ साल पहले तक मुझे इसान का कोई डर नही था। अँधेरी रात मे घनी वागो और सुनसान वीराने से मैं अकेला निकल जाता था। चोर-उच्चके-डाकू-हत्यारे भी कही होगे, इस कल्पना के

खिलाफ मेरा दिमाग चारो ओर से मोहरबद था। डर तब भी लगता था, पर वह टेढी बाग के पास पीपल पर रहनेवाले ब्रह्मराक्षस का या इमली के पेड के नीचे जिनका मजार बना है उन इमाम अली बाबा का था। धीरे-धीरे भूत-प्रेत-जिन्नात का अवमूल्यन हो गया, उनका खौफ झीना हो चला और, आज से चार-पॉच साल पहले वह दिमागी राम-राज्य कायम हुआ जिसमे मेरे लिए डर-जैसी चीज का कोई खास वजूद नही रहा।

इधर एक अजीब-सा खौफ मुझे घेरने लगा था—मुझे, जिसके दर्जनो हथछुट साथी-संघाती थे, जो खुद डेली पैसेजर्स एसोसिएशन का उपाध्यक्ष रह चुका था। हुआ यह था कि इतनी कम उम्र मे ही मेरे देखते-देखते पूरा इलाका चोरो-उठाईगीरो, डाकुओ और बदमाशो, पियक्कडो और गुडो से उफना चला था। चारो ओर चोरी-डकैती, बदमाशी-छुरेबाजी, तमचाबाजी और हत्याओ का बोलबाला था। अखबार हाथ मे लेते ही चाहे उसका पहला पन्ना हो, या जिलो की खबरोवाला सातवॉ पन्ना—यही खबरे आपको घूरती हुई मिलती थी। और जहॉ कही भी दो आदमी मिलते, सभाषण का शिष्टाचार कुछ ऐसे ही वाक्य से शुरू होता, 'उस्माननगर का हाल सुना ? कल रात ब्रजलाल के यहॉ डाका पड गया। उसे तो वही गोलियो से भून दिया, और उसकी बहू के साथ—वह भी बचेगी नही।'

तो, बकौल किसी फिल्मी डाइलाग के, बात यहॉ तक पहुॅच गई है। सिर्फ, बकौल दूसरे फिल्मी डाइलाग के, आप डाकुओ और हत्यारो से यह नही कह सकते, 'अब आप जा सकते हैं।' अब न वे जा सकते हैं और न आप ही इन सबसे कही दूर जा सकते हैं। ये घटनाऍ अखबारो और अफ़वाहो मे जहरीली मधुमक्खियो की तरह चिपटी हुई हैं। आप पढ़े या न पढ़े, सुने या न सुने, वहॉ से उडकर वे आपके चेहरे पर मॅडराने लगती हैं और आपकी चेतना पर बार-बार बेरहमी से भनभनाती हैं।

नतीजा ? रेल से सफर कर रहा हूॅ। जाडे की शाम, आठ बजे हैं। एक छोटे स्टेशन पर रेल रुकती है। डिब्बे का दरवाजा खोलकर दो नौजवान—मेरे जैसे ही—अदर आते हैं, फर्क इतना कि दोनो के बडी-बडी मूॅछे हैं जो रोबीला दिखने के लिए बढ़ाई गई हैं और वे रोबीले दिखते भी हैं। मेरा तनाव बढ जाता है। मुझे लगता है कि एक की जेब से देसी तमचा अब निकला, अब निकला। अपनी कल्पना मे दूसरे नौजवान को मैं दरवाजे पर पैना छुरा लिए खडा देखता हूॅ। चलती गाडी से बाहर कूदने की राह तक नही बची है। सब मुसाफिर पत्थर-जैसे बैठे हैं। सिर्फ चेहरो पर घबराहट है। तमचेवाला नौजवान एक-एक मुसाफिर की घडी, अॅगूठी, पर्स निकलवाता चलता है—औरतो ने गले की चेन, हाथो के कगन पहले ही उतारने शुरू कर दिए हैं पर यह फिल्म, जिसमे मैं अकेला इन दो लुटेरो पर काबू पाता हूॅ, नेता पर हुई ट्रेन डकैती के बाद कई बार देख चुका हूॅ। उसे दोहराना बेकार है।

तब एक नई फिल्म, जो अभी-अभी रिलीज हुई है। मैं परमात्मा जी की कोठी पर

एक कमरे मे लेटा हूँ। परमात्मा जी मपरिवार पहाड पर गए हैं। यह मेहमानो का कमरा है। बाहर गर्मी है। भीतर कूलर चल रहा है। मेरे नीचे रबर का मुलायम गद्दा है जिस पर मैं ऐसे ऐश मे पडा हूँ जो महाराज चद्रगुप्त विक्रमादित्य, शहशाह अकबर, महाबली नैपोलियन तक की किस्मत मे नही लिखा था। मैंने कमरे का दरवाजा अदर से बद कर लिया है। उधर से किसी के आने का डर नही। खिडकियाँ, जो बाहर पिछवाडे खुलती हैं, सब तरह से सुरक्षित हैं। बाहर की ओर जाली के पल्ले हैं, वे मजबूती से बद हैं, उसके बाद लोहे का ग्रिल है, अदर की ओर शीशे के पल्ले हैं। उनकी सिटकनी लगी है। इस तेहरी किलेबदी को तोडकर किसी का अदर आना आसान नही। कूलर की भन्नाहट की लोरी सुनते हुए में सो जाता हूँ। पर कुछ घटे बाद जैसे ही मेरी नीद खुलती है मैं अपने पलँग के पास कुछ लोगो को खडा देखता हूँ। एक आदमी मेरी खोपडी पर लोहे की मोटी छड ताने खडा है, दूसरा मेरी कमर के पास हाथ मे छुरा लिए, उसकी नोक मेरी छाती से छुवाता हुआ, बैठा है, तीसरा हाथ बढाकर मुझसे कह रहा है, 'चाभियाँ निकालो।' खिडकी की तेहरी किलेबदी टूट चुकी है। कमरे मे बाहर के गलियारे की रोशनी फैल रही है।

ऐसे दर्जनो दृश्य हैं जिनका भूत मेरी खोपडी पर हमेशा चढा रहता है। पर मेरे दिवास्वप्नो ने, मेरी खोपडी मे बराबर चलनेवाले फिल्मो ने इनका इलाज भी खोज लिया है।

इलाज यह है मुझमे अपार पौरुष है, अदम्य साहस है। तभी परमात्मा जी के गेरटरूम मे इस वक्त मेरा जिस्म अचानक तन गया है—पर डाकू इसे भाँप नही पाते। तलवार चलने की-सी फुर्ती से मेरे दोनो पैर ऊपर उठते हैं. मेरी कमर के पास बैठा हुआ खजरबाज लुढककर जमीन पर गिर जाता है, चाभी माँगनेवाले हाथ को घसीटकर मैं पलँग पर फेक देता हूँ और पल के एक बटा चालीस अश मे मेरे सिरहाने खडे डाकू की छड का वार मेरी जगह डाकू नबर दो की खोपडी पर पडता है, फिर डाकू नबर एक के सँभलने के पहले ही वह छड मेरे हाथ मे आ जाती है। उसके बाद शोरगुल, अखबारो की सुर्खियाँ, मेरा फोटू, हजारो बधाई-सदेश। बस इतना हुआ कि तीनो मे मरा कोई नही, तीनो डाकू जिदा पकडे गए हैं, बकौल स्थानीय हिंदी अखबारो के—'घायलावस्था' मे। मैं खुद अपने साहस, अपनी चुस्ती, अपनी फुर्ती से हैरान, बकौल उन्ही अखबारो के, 'अचंभित।'

कदम-कदम पर डकैतो और हत्यारो का खतरा है, कदम-कदम पर बदतमीज बाबू और अफसर मिलते हैं, कदम-कदम पर धाँधलेबाजी है। इस डर और जलालत के माहौल मे मैं बराबर अपने को कभी सूरमा, कभी जन-मन-गण-अधिनायक, कभी चतुर वक्ता, कभी ओलपिक-विजेता के रूप मे देखा करता हूँ। अकेले चलते-चलते कभी-कभी मेरे दाहिने हाथ की मुट्ठी किसी काल्पनिक रिवाल्वर के बेट पर कस जाती है, तर्जनी बार-बार ट्रिगर दबाने को मुडती है, कभी भारत के राष्ट्रपति से इनाम पाते वक्त

बोला जानेवाला कोई शिष्ट वचन मेरे मुँह से निकल पडता है, कभी किसी अफसर को फटकार लगानेवाला जहरीला जुम्ला—पर जैसे ही मेरी नाटकीय आवाज मेरे कान मे पडती है, सिनेमा की रील टूट जाती है।

इस वक्त, जब तक कुत्ते बोलते रहे, परमात्मा जी के बँगले पर प्रदर्शित पुरुषार्थ के सहारे मैंने अपने को सँभाले रखा। पर जब कुत्तो का शोर बढा और उसमे किसी मोटर की आवाज जुड गई तो खौफ के ततुजाल मुझे चारो ओर से बाँधने लगे। यह जीप की आवाज ही है न ? पुलिस की वर्दी पहने हुए डाकुओ का कोई गिरोह सचमुच गाँव मे तो नही घुस रहा है ? मेरी सारी देह पाँच फुट सात इच लबे एक कान मे परिवर्तित हो गई। साँस रोककर मैं मकान से लगभग पचास गज दूरी पर निकलनेवाले गलियारे मे मोटर की रोशनी फैलने का इतजार करता रहा—इस यकीन को भी सहलाता रहा कि कही कुछ नही है, में यूँ ही घबरा रहा हूँ।

पर गलियारे के मोड पर सचमुच ही किसी गाडी की रोशनी दिखाई दी। उसका चक्करदार घेरा गलियारे पर छा गया ओर देखते-देखते एक मोटरसाइकिल मेरे घर की ओर मुडी। मैं चारपाई से उछलकर खडा हो गया, निगाह का एक कोना मोटर-साइकिल की हेडलाइट पे चकाचौंध था, दूसरा चारपाई के नीचे पडी हुई लाठी को देख रहा था। तभी मोटरसाइकिल की भर्राहट बद हो गई, उसका सवार उसी तरह गद्दी पर बैठा रहा और पीछे से मेरे बडे भाई एक प्लास्टिक का थैला सँभालते हुए उतर पडे।

"अभी कैसे आए ?" मेरे सवाल मे थोडी भर्राहट थी क्योकि मन की बेचैनी अभी एकदम दूर नही हुई थी, फेड-आउट होते हुए ख्यालो मे मेरा एक दूसरा रूप पप्पी की कार्बाइन से दनादन गोलियाँ बरसाता हुआ डकैतो के एक बडे गिरोह का मुकाबला कर रहा था।

भैया ने सवाल के जवाब मे सवाल किया, "तुम कब आए ?"

वे इसका जवाब सुने या मेरे पहले सवाल का जवाब दे, इसके पहले ही मोटर साइकिल-सवार ने कहा, "चले भाई, नही तो वह रात-भर सियारिन की तरह हुआती रहेगी।" कहकर और इस तरह अपनी धर्मपत्नी के बारे मे अपना सम्मान जताकर उसने गाडी स्टार्ट कर दी। कुछ ही पलो मे उसकी मोटरसाइकिल गलियारे के नुक्कड पर तेज, तिरछी रोशनी फेकती हुई गायब हो गई। कुछ देर कुत्तो का कोहराम और गाडी की फट्-फट् हवा मे गूँजी, फिर धीरे-धीरे यह सब रात की बेआवाज आवाजो मे थिर हो गया।

भैया ने मेरा ही हालचाल लेना शुरू किया। मैं परमात्मा जी का काम छोड आया हूँ, यह मेरा हाल था। मैं जसोदा और सुरेस नाम के दो मजदूरो को कुछ महीने के लिए, जब तक घर मे छप्पर-छानी और धान की रोपाई का काम है, ले आया हूँ—यह चाल थी। अँधेरा था इसलिए भैया के चेहरे से पता नही चल पाया कि वे उसे चाल मान रहे है या कुचाल। उन्होने सिर्फ इतना कहा, "जमाना खराब है, गाँव मे गुडागर्दी और

दारूबाजी का जोर है। बापू खटिया पर पडे है। मुझे सरकारी काम से दो-दो, तीन-तीन दिन बाहर रहना होता है। ऐसी हालत मे बाहरी औरत का झमेला बडा गडबड है। बाहर से आई है, कोई छेड-छाड दे "

"करेगा सो मरेगा। भली औरत है पर मिट्टी का ढेला नही है। कोई बात हुई तो खुद निवट लेगी। और तुम ? तुम्हे तो कल शाम तक लौटना था ?"

भैया ने समझाया .

"साहब को इसी वक्त शहर जाना पड गया है। शहरी गुंडो के चोचले हैं। वहाँ चौक मे चौराहे के बीचोबीच हनुमान जी का मंदिर बना है। जानते ही हो, आजकल शकर जी के मुकाबले हनुमान जी पर ज्यादा ज़ोर है। कही भी उनकी मठिया बना लो और एक कर्रे किस्म के हिस्ट्रीशीटर को पुजारी का बाना पहनाकर खडा कर दो। हर मगल और सनीचर को सैकडो रुपया चढावे मे गिरने लगेगा, एकाध क्विटल लड्डू ऊपर से। और आठ-दस घटे तक एक से एक फैशनेबुल लेडियो के दर्शन। जो भी हो, वे यह चौराहेवाला मंदिर रातो-रात बनाकर तैयार कर रहे थे कि नगर महापालिकावालो को खबर लग गई। आजकल वहाँ कोई जानदार अफसर आया है। वह उसी वक्त फौज-फाटे के साथ मौके पर पहुँचा और अधबना मंदिर तोड दिया गया। इसी बात पर झमेला खडा हो गया है। दगा हुआ नही है पर किसी भी वक्त हो सकता है। रात से ही भक्तो के जुलूस पर जुलूस निकल रहे हैं। उस बेचारे प्रशासक का पुतला जलाया जा चुका है, तबादले की माँग हो रही है, उसे महमूद गजनवी बताकर गालियाँ दी जा रही हैं। ताज्जुब है कि शहर मे रहते हुए दोपहर तक तुम्हारे कान मे इसकी भनक नही पडी।"

"पर इससे तुम्हारा क्या लेना-देना ?"

"है ! बताता हूँ ! शहर मे शाम से दफा 144 लगा दी गई है। इंतजाम के लिए हमारे सेटिलमेट अफसर को भी इसी वक्त शहर बुला लिया गया है। चकबदी के वे सेटिलमेट आफिसर तो हैं ही, मजिस्ट्रेट भी हैं। अब रात-भर उन्हे चौक की कोतवाली मे पुलिस के साथ ड्यूटी देनी होगी। जिला मजिस्ट्रेट का सदेसा रात को दस बजे आ गया था। उसी वक्त वे झोला-झगड उठाकर शहर के लिए रवाना हो गए। उधर वे शहर गए, इधर हमारे साथ के भाई लोगो ने उनके स्वागत-सत्कार के लिए मँगाई गई मिठाई और नमकीन साफ की। सिर्फ कसालिडेशन अफसर ने कुछ नही खाया। उपवास किए हुए थे। एक दारू की बोतल बची हुई थी। कत्थई रग की। क्या कहलाती है, साली, रम ही न ? बस, वही लेकर चले गए। यह जगन्नाथ है, हमारे साथ का लेखपाल। मुझे मोबाइक पर यहाँ छोडने आया था।"

"अब लेखपाल भी मोबाइक पर चढते हैं ?"

भैया को अपने प्रिय साथी जगन्नाथ की सत्यनिष्ठा पर यह आक्षेप नागवार लगा होगा। बोले, "क्यो, क्यो ? मोबाइक पर चढने के लिए किसी खास बनावट के चूतड होने चाहिए क्या ?"

रात के बारह बजे चकबदी विभाग के कारकुनो के शरीर और शरीर-रचना पर विमर्श करने की इच्छा नही हुई। बात मैंने वही छोड दी। दरवाजा खुलवाने के लिए कुडी खटखटाते हुए मैंने पूछा, "शहर मे तुम्हारे अफसर को सवेरे शुद्ध गाय का दूध कैसे मिलेगा?"

"जैसे यहाँ मिला था। भैंस के दूध मे पानी कुछ ज्यादा मिला दो, गाय का दूध बन जाएगा।"

सवेरे देर से नीद खुली। उठते ही मैं नहर की ओर चला गया। वही, जिसे पंडित लोग दिव्य निपटान कहते हैं, वह हुई और, जैसा कि गॉव के पानी के असर से हमेशा होता है, खुलकर हुई। दातून की। उसके बाद पास ही आम के अपने एक पुराने बाग मे गया। इतना पुराना था कि इमारत होती तो पुरातत्व विभाग इसे अब तक अपनी रखवाली मे ले चुका होता और खर्जूर वाटिका से निकले खजुराहो महोत्सव की तरह अब तक यहाँ दस-पाँच आम्र-कानन-महोत्सव मनाए जा चुके होते। यह सिर्फ अब से नौ-पीढी ऊपर के पुरखो का बाग था। बाद की आठ पीढी के सतोष के पैमाने की शक्ल मे वह अब तक मौजूद था। मतलब यह कि हमारे खानदान की पिछली आठ पीढ़ियो ने इस बाग के होते हुए अब तक कोई दूसरा बाग नही लगाया—कलमी आमो के उस छोटे-से बाग को छोडकर जिसे हमारे एक पुरखे यानी पिताश्री ने लगाया और दूसरे पुरखे यानी चाचा ने उजाडा। पेड लगाने मे जिस तरह हमारे पिछले पुरखो का उद्यम लगभग नदारद था, वैसे ही यह बाग भी अब तक नदारद हो चुका था। रेह-भरी उसरीली जमीन मे सिर्फ तीन-चार आम के ऊँचे पेड खडे थे जिनको सपूर्ण ठूँठ की हैसियत पाने मे दो-तीन मौसमो की ही कमी रह गई थी। पर वसुधरा देवी की महिमा देखिए, उनमे अब भी एकाध हरी डाले थी और उनमे अब भी कुछ पके-अधपके आम लटके हुए थे। जामुन के भी एकाध पेड थे जिनकी निचली शाखाएँ कट चुकी थी और फुनगी पर हरियाली की एक कटी-फटी छतरी बची थी। वसुधरा देवी का यह दूसरा करिश्मा था। उन छतरियो मे पके हुए जामुन लगे थे और उनमे से कुछ चू कर धरती पर गिरे थे।

बाग-बगीचा, आम-जामुन, उमडती हुई घटा आदि-आदि के बावजूद वह मसाला नही बन पा रहा था जो ग्राम-गीतो और रस-भरी ग्राम-कथाओ की इमारत मे लगाया जाता है। क्योंकि धरती मे ऊसर फूट रहा था, वनस्पतियो को पीढ़ियो का निकम्मापन चर चुका था और भारत माता सचमुच ही मिट्टी की प्रतिमा उदासिनी बन गई थी।

इस रेह-भरी धरती पर खडे होते ही दिमाग मे कुछ कौंधा और उसी के साथ कुछ टूटता-सा जान पडा। लगा कि बाप-भाई-माँ-बहन-भाभी—इन सबसे अब ऊपरी रिश्ता-भर रह गया है। मामलो-मुकदमो मे अपने फँसाव के बावजूद अब मेरा जी उनमे रम नही पा रहा है। मैं उनसे उखड़ चुका हूँ।

स्टेशन पर पुरवा का पहला झोका लगते ही तवीयत मे जो उछाल कल जागा था वह वक्त नदारद था। लगा, इस ऊसर धरती को, इन ठूँठो मे भरे वाग के खँडहर को भी मैं पीछे छोड रहा हूँ। वेचैनी यही है कि इसके वाद का पडाव कहाँ होगा, यह साफ नही है।

वहरहाल, रस्म अदायगी के लिए ढेले फेंककर दो-चार पके आम गिराए, कुछ जामुन वीने, उन्हे ले जाकर नहर के मटियाले पानी में धोया, खाया, उसके वाद अचानक मूड वदलने लगा। पेट लगभग भर चुका था। एक दिवा स्वप्न जागा मैं गाँव मे रह रहा हूँ, इधर नहर के पासवाली सारी उपजाऊ जमीन मेरे वाप की है, मैं सवेरे इधर सैर करने के लिए आया हूँ और अकेला नही हूँ। गाँव के दस-पद्रह नौजवान 'भैया जी, भैया जी' कहते हुए मेरे पीछे चल रहे हैं। इस उसरीले वाग की जगह लहलहाता हुआ एक वडा फार्म है, उस तरफ जहाँ वास्तव मे सिर्फ मिट्टी का ढेर है, तीन कमरे का एक फार्म हाउस खडा हे। उसमे वह सवकुछ है जो परमात्मा जी के घर मे है—फ्रिज, टी वी , सोफे।

अचानक एक कौवा सिर के ऊपर कही शीशम की डाल से वोला और दिवास्वप्न टूटा। ऊसर कुछ पहले मे ज्यादा फैला हुआ नजर आया। तव यह भी देखा, आसपास कोई चिडिया उडती नजर नही आती। वे भी इस दृश्य से गायव हो चुकी थी।

नहर से लौटने के वाद मूडू, परीदीन, वदीहीन और सुखदीन नामक चार मजदूर घर पर छप्पर तैयार करते हुए मिले। उनके काम का ढग उनका अपना था। यानी उसमे काम का कम, तैयारी का जोश ज्यादा था। वे चारो वीडी पी रहे थे और आँख फाडकर जसोदा और सुरेस को देख रहे थे। एक पीढी पहले वे अव तक पाव-भर गुड खाकर, दो लोटा पानी पीकर चिलम फूँक रहे होते। वहरहाल, इस वक्त वे काम की तैयारी मे थे। काम करनेवाले सिर्फ जसोदा और सुरेस थे।

लगभग वीस फुट लवे और दस फुट चौडे छप्पर को वाँधने का काम यही दोनो कर रहे थे। इन्हे मैंने ईंट-गारा ढोते, सीमेट कान्क्रीट का मसाला तैयार करते देखा था, उन्हें यह करते देखकर हैरत हुई। छप्पर का नीचे का ढाँचा वाँस और झाँखरो को लेकर वनना था और ये सवेरे से अव तक उसे लगभग पूरा कर चुके थे। अव वे कुश-काम के सहारे छप्पर छा रहे थे। उनकी उँगलियाँ मशीन की-सी नियमितता से चल रही थी। उसी के साथ उँगली की सुघड हरकत पूरी क्रिया को सिर्फ मशीनी होने से वचाती थी। उसके पीछे पद्रह-वीस शताव्दियों की कला थी।

वापू खटिया पर यथावत् पडे थे। उनसे कहा, "धान की रोपाई मे इन्हे देखिएगा। अपनी मेहनत से गाँववालो का मुँह धुँवा कर देगे।"

वे वोले, "औरत वडी फुर्तीली है।"

मूडू वोले, "जनाना खूवसूरत है।"

मैंने कहा, "इससे कभी वदमाशी की वात करोगे तो तुम्हारे सत्तर जूते मारेगी।"

मूडू—खानदानी चोर—विनम्र बन गए, बोले, "भैया जी, मैं इससे क्या बोलूँगा । ये रॉड हमे खुद छोडे रहे, इसे यही समझा दो ।"

शाम को शहर लौटते वक्त, जैसे हमारे बीच हमेशा ऐसा ही रिश्ता रहा हो, मैंने जसोदा के कधो पर दोनो हाथ रखकर कहा, "खुश रहो जसोदा, यहाँ आराम से दो-एक महीना रहो । फिर तुम्हे शहर वापस ले चलेगे । हमारा नन्हा राजकुमार किसी झोपडी मे नही, अंग्रेजी अस्पताल मे पैदा होगा । फिक्र मन करो ।"

कवियो और कथाकारो मे चलन है कि वे अपनी नायिका की आँखो मे अलग-अलग मौको पर अलग-अलग ढग की रोशनी या रोशनी की नामौजूदगी देखते हैं । कभी उनकी आँखो मे चमक बढ जाती है, कभी बुझ जाती है, कभी उनसे रस टपकता है, कभी घृणा चूने लगती है । एक तरह से उनकी आँखे उनके रूहानी मौसम के बैरोमीटर का काम करती हैं । जो भी हो, मेरी इस पीठ-थपथपाऊ और तबीयत-सहलाऊ वार्ता का कोई असर जसोदा की आँखो पर नही पडा । नेता के न रहने के बाद से उनमे जो एक सूनापन आ गया था, वह उसी तरह कायम रहा । पर मेरे हाथों के दबाव से उसके कधे ढीले हो गए ।

उसी वक्त मेरी पीठ पर एक धमाका हुआ । सुरेस ने मुक्का मारा था । मेरे लिए ज्यादा स्वाभाविक होता कि पलटकर मैं सुरेस के जबडे पर अपना मुक्का जमाता और हमेशा के लिए उसे आत्म-सयम का एक धमाकेदार पाठ पढा देता । पर एक अस्वाभाविक माहौल मे मेरी प्रतिक्रिया भी अस्वाभाविक हुई । एक झटके के साथ मै जसोदा से अलग हो गया । सुरेस ओठ दबाए हुए मुझे अब भी ध्यान से देख रहा था । मैंने उसकी ओर ध्यान नही दिया । कहता रहा, "जसोदा, तुम यहाँ आराम से रहना । अम्मा की बकवास पर ध्यान न देना । फटे बाँस की तरह दिन-भर भाँय-भाँय करते रहना उनकी आदत है । आवाज बहन की भी तीखी है पर उसका मन मुलायम है । कोई बात हो तो उसी से कहना, या बडे भैया से । मुझे खबर मिल जाएगी ।"

जसोदा मेरे और पास आ गई । मैं उसे अपनी बाँहो मे ले सकता था पर सुरेस की मुट्ठी अब भी बँधी हुई थी, और यह भी लग रहा था कि जसोदा कोई खास बात कहने के लिए मेरे इतना पास आई है । जब वह बोली तो लगा कि खडे तो हम एक ही धरातल पर है पर हमारे बीच एक नही, दो दुनियाओ की दूरी है एक दुनिया अतीत की है, एक भविष्य की । वह बोली, "पर मुसी, तुम्हारे नेता को क्या हो गया था ? तुमने कभी बताया नही ? वह ऐसा-वैसा नही था । बडा बहादुर था । दो-दो मन का बोझ पीठ पर लादकर कोसो चल सकता था । उसे क्या हो गया ? किसने मार दिया ? उसे किसी ने क्यो मारा ?"

वह रोने लगी थी । एक पल मैं वैसे ही खडा रहा । फिर सुरेस की बँधी मुट्ठी को तिरस्कार से देखते हुए मैंने जसोदा के कधो पर दुबारा हाथ रखते हुए कहा, "परेशान

न होओ जसोदा, मैं सारी वात का पता लगा लूँगा, और एक-एक मे वदला लूँगा।'

गूँगे-वहरे सुरेस ने इस वार मुक्के का प्रयोग नही किया। किस वात का वदला? किससे? सोचे विना ही मैं इतनी वडी वात कह गया। क्यो? जो भी हो, यह कह चुकने पर मैंने अपने को अपने से वेहतर हालत मे पाया।

4

उनका कोई भी नाम हो सकता था—बिहारीलाल, गिरधारीलाल, बनवारीलाल। पर उनके बारे मे जो पुख्ता बात थी वह यह कि दो साल पहले वे इस प्रदेश के श्रममत्री रह चुके थे। उन दिनो वे अपने हँसमुख चेहरे, जोरदार लेक्चरबाजी और पिछडे वर्गों से हमदर्दी के लिए मशहूर थे। उससे भी ज्यादा मशहूर वे एक ऐसी समाजसेवी महिला के पति होने के नाते थे जो साँवली-सलोनी, बकवास मे प्रवीण और सबके बीच मे खुश रहनेवाली और सबको खुश रखनेवाली थी। मौजूदा मत्रिमडल मे न लिए जाने के बावजूद उनकी लोकप्रियता घटी न थी, बल्कि बढ़ी ही थी क्योंकि अब वे शहर मे हर वक्त हर जगह पाए जाते थे। चाहे युवा कांग्रेस के किसी नेता की शादी हो, चाहे किसी बूढे स्वतत्रता-सग्राम-सेनानी का दाहकर्म, अपने पुराने चपरासी के लडके का खतना हो या पी ए की लडकी का कनछेदन—दो ठिगने पैरो पर टिकी हुई जनसपर्क की यह सचल नुमाइश सभी जगह देखने को मिल जाती थी। परमात्मा जी ने उनसे मेरा फोन पर परिचय कराया था। कहा था, यूनियन बनानी है तो उसमे इस तरह के दो-चार भारी-भरकम नाम डाले बिना काम नही चलेगा।

वही लाल बाबू हमारे उत्तर प्रदेश दैनिक मजदूर सघ के अध्यक्ष बने। हमने उनकी साँवली-सलोनी पत्नी को भी कार्यकारिणी मे लेना चाहा पर उन्होने मुस्कराकर 'नही' मे सिर हिला दिया और इसके पहले कि हम कुछ कहे, हमारे हाथ मे पाँच सौ रुपए के नोट टिकाकर कहा, "मेरी ओर से अभी बस इतना ही। इससे तुम सघ का दफ्तर जमा लो।"

लाल बाबू से भी ऊपर, नाम के लिए, हमने अपना एक सरक्षक नियुक्त किया—पाल बाबू को। उन्हे लेकर पति-पत्नी मे कुछ देर बहस हुई। पत्नी ने कहा कि युवाशक्ति इस लाश का बोझ कहाँ तक ढोएगी। पति ने कहा, उसी का नाम लेकर युवाशक्ति पुरानी पीढी को, जो इस वक्त सारी सरकार को अपने पजो मे दबोचे बैठी है,अपनी ओर खीच सकेगी। पत्नी ने पाल साहब के लिए कुछ और अपमानजनक बाते कही, पर पति ने उसकी उँगलियाँ प्यार से दबाई, कहा, "शैल, जिद नही करते।" इसके बाद भोली-भाली मासूम बच्ची की तरह शैल ने एक ओर सिर झुकाकर उनकी बात मान ली।

पाल बाबू का असली, यानी स्कूल का नाम था सत्यपाल । कुछ दिन पहले वे दक्षिण के एक राज्य मे गवर्नर थे । उससे भी पहले कई साल तक राज्य सभा के मेंबर रहे थे । विलायत के पढे थे । राजनीतिज्ञो की उस खेप के थे जो जनता से सौ कोस दूर रहकर जनता की सेवा मे पूरी उम्र बिता ले जाती थी । अब इक्यासीवे साल की उम्र मे यहाँ आकर वे अपनी पुश्तैनी कोठी मे रहने लगे थे । इस समय वे आदमी और प्रेत के बीच की उस योनि मे थे जिसे 'जाबी' कहा जाता है । हमे उनकी इन खूबियो से कुछ लेना-देना नही था, सिर्फ लाल बाबू के कहने पर हमने उन्हे अपने सघ का सरक्षक बना लिया । इस तरह हमारे लेटरहेड पर एक भूत जैसे भूतपूर्व गवर्नर और एक अभिनेता जैसे नेता का नाम सरक्षक और अध्यक्ष की हैसियत से झलकने लगा ।

जैसा कि होना चाहिए, सघ का महासचिव मैं बना । प्रेमबल्लभ का ख़्याल कुछ और था । उसका कहना था कि डेली पैसेजर्स एसोसिएशन का उपाध्यक्ष होने के नाते मुझे सघ का उपाध्यक्ष बनना चाहिए । पर प्रेमबल्लभ खुद कही महासचिव न बन जाए, इस जोखिम से बचने के लिए मैं पहले ही महासचिव बन गया, लगभग वैसे ही जैसे जनता सरकार बनते समय बाबू जगजीवनराम के रगभूमि मे आने के पहले ही मुरारजी भाई देश के प्रधानमत्री बन गए थे । प्रेमबल्लभ को उपाध्यक्ष के पद से समझौता करना पडा ।

कारखाने के मजदूरो की यूनियनबाजी और दूर देस से आनेवाले इन डरे-दुबके दैनिक मजदूरो की नेतागीरी मे बडा फर्क है । कारखानो के मजदूर साठ-सत्तर साल तक बेईमान लीडरो, दमुँहे दलालो, काइयाँ मालिको और जरखरीद पुलिस का साम-दाम-दड-भेद झेलकर मजबूत हो गए हैं, उठापटक के मुकाबले वे जवाबी उठापटक भी दिखा सकते हैं । उनका नेता बनने के लिए सिर्फ कडकदार आवाज, दमखम की बाहरी नुमाइश और जुझारू तेवर की जरूरत है । पर जब सचमुच ही जूझने की जरूरत पडे तो अपने नेता के पहले मजदूर खुद ही अखाडे मे कूदकर आ जाते हैं । नेता के सफेद कालर की कलफ कही से दरकने नहीं पाती । पर हमे डर था कि इन दैनिक मजदूरो की नेतागीरी मे जूझने का सारा काम हमी को करना होगा । एक ओर ठेकेदार और दलाल हमे घेरकर तोडने की कोशिश करेगे और दूसरी ओर जूझने की घडी मे हमारे मजदूर भाग्य और भगवान के गुन गाने लगेगे और हो सकता है कि जिस व्यवस्था की दुम पकडकर वे यहाँ तक पहुँचे हैं उसी का भरोसा करके महाराजा पोरस के हाथी की तरह पलटकर वे हमें ही कुचलने लगे । इसलिए शत्रुपक्ष की गुडागर्दी से निबटने के लिए हमे न सिर्फ पहले से पूरी तैयारी करनी थी बल्कि उस तैयारी की खबर को बढा-चढाकर शत्रुपक्ष की छावनी मे पहले से ही आतक और हताशा फैलाना था ।

लाल बाबू ने कहा, "इसके लिए अपने सघ मे सजीवन भाई को भी डाल लो ।"

सजीवन भाई एक गरीब जिले के भूमिपुत्र थे और सत्ताधारी पार्टी के टिकट पर हाल ही मे चुनकर विधायक बने थे । राजनीति जब ज्यादा अपवित्र होने लगी थी तो वे पार्टी की

ओर से अचूक ढग से ट्रबुलशूटर यानी विघ्नविनाशक का काम करते थे। ऐसा वे कई साल से करते आ रहे थे और उनकी इन्ही सेवाओ को देखते हुए उन्हे इस बार विधायक बनाया गया था। पर उनके बहुधधी कारोबार मे विधायक का पेशा बडी अदना हैसियत्त रखता था। इतना अदना कि वे विधायक के पद का वेतन तक नही लेते थे, उसे पूरा-का-पूरा उस डिग्री कालिज को दान कर देते थे जिसके वे सस्थापक और आजीवन अध्यक्ष थे। एक बडे खूँख्वार माफिया गिरोह के सम्राट् होने के बावजूद वे पच्चीस साल से अपराध की मायापुरी पर चदन-चर्चित भाल लिए हुए राज्य कर रहे थे। (यानी, उनके मस्तक पर सचमुच ही हमेशा चदन का तिलक शोभित होता रहता था।) औसत गिरोहवद गुडे का औसत शासन काल दस साल होता है। यह अवधि बीतने के पहले ही वह प्रतिद्वंद्वियो के हमले, पुलिस की मुठभेड या यह न हुआ तो किसी सदिग्ध दुर्घटना का शिकार हो जाता हैं। पर सजीवन भाई अपनी गिरोहवदी की रजत-जयती मना चुके थे। राजधानी मे विधायक के रूप मे उनके प्रकट होने के पहले हम लोग दूरवर्ती जिले के इस माफिया सम्राट् की गौरवगाथा सुना करते थे। पर जब एक दिन विधानसभा के सामने फुटपाथ पर खडे हुए हमने उन्हे एक ऐंबैसेडर कार से उतरते देखा, उनकी दुबली-पतली मझौली कद-काठी का कलकतिया किनारी की बेशकीमती धोती और सिल्क के कुर्ते मे सौम्य दर्शन किया तो हमे एक झटका-सा लगा ओर बिना किसी तर्क के हमे भरोसा हो गया कि उनके बारे मे गाई जानेवाली अपराध-गाथाएँ अफवाह-भर है। हमे लगा कि बगाल का कोई महान उद्योगपति उत्तर प्रदेश पर तरस खाकर यहाँ की गरीबी हटाने के लिए आया है और कई उद्योग-धधे लगाने के लिए हमारे दीन-हीन मुख्यमत्री से विचार-विमर्श करने जा रहा है। पर तभी हमे ऐंबैसेडर के आगे और पीछे खडी हुई खुली जीपो पर पद्रह-बीस आदमी-बैठे दिखे और उनके हाथो मे टिकी हुई बदूके, राइफले और कार्बाइने दिखाई दी। हमारा मत्था विधानसभा के फाटक की ओर जाते हुए दो गोरे चरणो के प्रति अनायास झुक गया।

हमे मालूम था कि इधर कई सालो से उन्होने ठेके-वेके का काम बद कर दिया था और अब अपना पूरा समय समाज की सेवा को समर्पित किए हुए थे। जीविका के साधनो की टुच्ची चिता उन्हे कभी उलझन मे नही डालती थी। उनके सेनापतियो के मातहत सूबेदारो के भी मातहत जिलेदार लोग वह मोर्चा सँभाले हुए थे। जिलेदार अपने इलाके के बेईमान हाकिमो की, विशेषत जगल और इजिनियरिंग विभाग के ऐसे अफसरो की सूची रखते थे जो इनकम टैक्स की गिरिफत के बाहर की आमदनी करने मे प्रवीण थे। जिलेदार उन्ही से उस आमदनी पर लगनेवाले इनकम टैक्स के बराबर रकम की माहवारी वसूली करते थे और उसके एवज मे इन अफसरो को सरकार से लेकर धौंस से काम करानेवाले ठेकेदारो से, ईर्ष्यालु सहकर्मियो से, बात-बात पर जन-आदोलन की धमकी देनेवाले स्थानीय नेताओं से निर्भीकता का व्यवहार करते हुए अपना कारोबार करने की छूट मिली रहती थी। एकाध को छोडकर उनमे से किसी का

भी सजीवन भाई से कोई सीधा और साबित होने लायक सरोकार न था।

बहरहाल, यह तय हुआ कि चूँकि सजीवन भाई को सघ का सरक्षक, अध्यक्ष या उपाध्यक्ष अब नही बनाया जा सकता, इसलिए कार्यकारिणी मे चीफ टेक्निकल ऐडवाइजर यानी प्रमुख प्राविधिक परामर्शदाता का एक ओहदा निकाला जाए और उस पर उनका नाम दे दिया जाए।

लाल बाबू ने सजीवन भाई से फोन पर बात की। उन्होने हमारी योजना की सराहना की, समय की कमी का सवाल उठाकर अपनी मजबूरी की मुआफी माँगी और कहा, "मैं अस्थाना को भेज रहा हूँ। चाहिए तो उसे ले लीजिए।"

फोन रखकर उन्होने हमारी ओर देखा, पूछा, "क्यो ? ठीक नही रहेगा ?"

प्रेमबल्लभ ने कहा, "अस्थाना बदनाम आदमी है। अभी-अभी तो वह एक कत्लवाले मामले से छूटा है। आप सोच ले।"

"मुझे क्या सोचना ? शाम को अस्थाना यहाँ आएगा तब तक तुम्ही लोग सोच-समझ लेना। मैं तो यहाँ रहूँगा नही।"

शाम को अस्थाना ने खुद हमारी उलझन दूर कर दी। उसने पूछा, "जो मजदूर हमारे मेबर होगे उनसे चदा कितना लिया जाएगा ?"

"अभी कुछ तय नही है।" प्रेमबल्लभ के इस जवाब को मैंने कुछ आगे बढाया, "खर्च बहुत काफी होगा। उनके लिए एक छोटा-सा दवाखाना खोलना है, उनके बच्चो के लिए या तो कोई स्कूल खोलेगे या मौजूदा स्कूलो मे उनकी पढाई का इतजाम करेगे। उनकी ओर से मामले-मुकदमे करने मे भी पैसा लगेगा। फिर दफ्तर चलाने का खर्च। लगता है हर मेबर से कम-से-कम दो रुपया महीना वसूलना पडेगा।"

"दो रुपिया भी भारी पडेगा," प्रेमबल्लभ ने कहा।

"तीन रुपिया महीना कर दो।" जैसे उसने प्रेमबल्लभ की बात सुनी ही न हो, इस अदाज से अस्थाना ने सलाह दी। "दो रुपिया तो तुम लोग अपने छुटपुट खर्च के लिए रख लो, एक रुपिया हर मेबर के नाम से अलग मजदूर सुरक्षा कोष मे जमा होना चाहिए। वह कोष मेरे हाथ मे रहेगा।"

प्रेमबल्लभ ने अस्थाना को घूरकर देखा, पर अस्थाना पर उसका उल्टा असर हुआ। मुँह टेढा करके बोला, "कुछ कहना चाहते हो ?"

प्रेमबल्लभ हँसने लगा। अस्थाना ने फिर कहा, "मैंने कोई दिल्लगी की है ?"

"दिल्लगी नही अस्थाना भाई आपको गलतफहमी हुई है। हमारे मजदूर पैसा लगाकर अपनी सुरक्षा खरीद सकते तो इस सघ की जरूरत क्या थी ? फिर सब तरह के कोष तो सघ के महासचिव देखेगे। प्राविधिक परामर्शदाता का कोष से क्या मतलब ?"

अस्थाना सोचता रहा, "शुरू मे तुम्हारे कितने मेबर होगे ? सात-आठ सौ ?"

इतने ही की हमे भी उम्मीद थी, पर प्रेमबल्लभ ने कहा, "सौ-पचास समझ लो।"

बात वही खत्म हो गई। अस्थाना ने बाहर जाकर अपना स्कूटर स्टार्ट कर दिया।

हम लोग उसे वहाँ तक पहुँचाने आए। चलते-चलते उसने बडी शिष्टता से कहा, "जब भी जरूरत पडे, मुझे पुकार लेना। पर यह प्राविधिकवाला झझट मेरे बूते का नही। दरअसल, हम लोग इतने छोटे काम मे हाथ नही डालते।"

सजीवन भाई का जिक्र आते ही मुझे बेचैनी महसूस हुई थी। अस्थाना ने उसे खुद दूर कर दिया।

उसी रात हमने सजीवन भाई और उनकी मडली को सघ से दूर रखने का निश्चय किया। लाल भाई के कारण हमे भरोसा था कि सजीवन भाई हमारे खिलाफ न जाएँगे। इतना काफी था।

हमने अपनी रणनीति अलग से तैयार की। प्रेमबल्लभ के असर मे चार-छह तेज-तर्रार छोकरे वकील थे। उनमे से कुछ पहले हथछुट किस्म के छात्र-नेता रह चुके थे। इसके अलावा मेरे साथ के कुछ भरोसेमद डेली पैसेजर थे जो रेलवे स्टाफ को पीटने की प्रवीणता हासिल कर चुके थे। इन्हे हमने कार्यकारिणी के सदस्य के रूप मे शामिल किया। कुछ मजदूर रखे, मिस्त्री को शामिल करना चाहा पर वे ढीले पड गए। इन सबके अलावा हमने दो ऐसे गाँधीवादी नेताओ को भी पकडा जो अनशन करने और मार खाने मे बडे तेज थे और हर आदोलन मे पिटकर पुलिस या विरोधीपक्ष की बर्वरता के खिलाफ नारे लगाते हुए घर वापस आते थे। हर झमेले मे आगे करने के लिए ऐसे उत्साही लोगो की हमेशा जरूरत होती है।

परमात्मा जी भी शामिल हुए, पर कुछ दिनो बाद।

परमात्मा जी के ड्राइगरूम मे बैठे हुए पूरा अखबार चाट गया। कई दिन बाद पढ़ने को मिला था। बडे स्वाद से पढा। कुल मिलाकर साबित हुआ कि हालत बडी खराब है। आधी से ज्यादा सरकारी खबरे भविष्यकाल की हैं जिनमे सिर्फ 'ऐसा होगा, वैसा किया जाएगा' की तोता-रटत है। वर्तमान काल मे सिर्फ केद्रीय कर्मचारियो का फायदा हुआ है। तय हो गया है कि चीजो की कीमत जितनी बढ़ेगी उन्हे उसके हिसाब से सौ फीसदी राहत मिलेगी। पर जसोदा को अब भी दैनिक मजदूरी मे ज्यादा-से-ज्यादा दस रुपिया मिलेगा जिसका चीजो की कीमत से कोई रिश्ता नही है, और सुरेस को कुल इतना मिलेगा कि अगर किसी दिन उसने जोश मे आकर एक कुल्फी खा ली तो उस दिन रोटी खाने की हैसियत न रहेगी।

देश के बाहर की हालत भी खराब है। पर खैरियत है, उसकी चिता करने के लिए अपने प्रधानमत्री मौजूद हैं।

ख्याली पुलाव बनाते हुए, फिर उसे खाते हुए मैं अपने आपको प्रधानमत्री के कक्ष मे बैठा देखता हूँ। मैं उस गिरोह मे शामिल हो गया हूँ जिसे सारे अखबार 'प्रधानमत्री के सलाहकार' के नाम से जानते हैं। मैं उन्हे सलाह दे रहा हूँ, 'दरअसल दक्षिण अफ्रीका आदि की समस्या का समाधान दिल्ली मे बैठकर नही निकाला जा सकता। अगर आप

अपना एक शिविर कार्यालय जिनेवा या त्रिपोली मे रख ले, तो बडा सुभीता रहेगा। वहाँ बैठकर आप योरुप और अमेरिका के मामलो मे जब कभी चाहे, आनन्-फानन् अपनी राय दे सकते हैं। अगर आप वहाँ तीन महीने भी बैठ ले तो नामीबिया की आजादी मे कोई शक नही रहेगा। पी एल ओ को भी उसका वाजिब दर्जा दिलाने के लिए वहाँ मे ज्यादा पुरअसर कोशिश की जा सकती है।'

जब सारा ख्याली पुलाव खाया जा चुका तो मेरे लिए वहाँ में और परमात्मा जी का ड्राइगरूम भर बचा।

सुरुचि' और 'सॉफिस्टिकेशन' जैसे शब्दो से मेरा कोई खास परिचय न था। कोश मे इनका जो अर्थ लिखा है, उसका धुँधला-सा आभास भले रहा हो पर व्यक्तिगत या सामाजिक जीवन से इनके रिश्ते पर मैंने कभी गौर नही किया था। तभी मुझे परमात्मा जी का ड्राइगरूम बडे रईसी काट का लगा। उसकी आन-बान-शान मे मैं काफी देर खोया रहा।

आज मुझे वह हाहाहूती कमरा सिर्फ अजीबोगरीब जान पडता है। ऊँची छत, बडे-बडे दरवाजे—जिनमे से अधिकाश बराबर बद रहनेवाले, सिलेटी रग की सीमेट का फर्श जो दो बडे गहरे कत्थई गलीचो के बावजूद अपने सिलेटीपन को छिपा न पाता था, दीवारो का नीला रग—कमरे मे सीलन न होने पर भी सब मिलकर उसमे निरतर सीलन का-सा सचार करते हैं। पर उस वक्त वह मेरी निगाह मे किसी राजभवन का कोना जैसा जान पडा। क्योंकि दीवारो के पास चारो ओर बडे-बडे सोफे लगे थे, जैसा कि मैं अपने नीचे महसूस कर रहा था, हर सोफे का कोई-न-कोई स्प्रिंग टूटकर कही-न-कही ऊपर उठा होगा। इसे मैं पुश्तैनी जमीदाराना शान का प्रमाण समझकर नजरअदाज़ कर रहा था। सोफो पर उजले झक्क गिलाफ मढ़े हुए। एक कोने मे भुस-भरा शेर, जो मुझे खूँखार पर मुर्दा आँखो से देख रहा था। जगह-जगह दीवालो पर जडी हुई साँभर और बारहसिंघे की सीगे। एक ओर दीवार से सटा हुआ रीछ का सिर, उसके मुँह से लटकती हुई जबान, जो अगर बोल सकती तो यकीनन् बोलती, 'हम तो, भई, पुराने जमीदार हैं। हाँका करनेवाले को भी काका कहते हैं।'

एक बहुत बडा फायर प्लेस, जिसमे आग की जगह सुनहरे चमकदार गमले रखे हुए, जिनमे प्लास्टिक के बडे-बडे पौधे और फूल। फायर प्लेस के ऊपर बनी हुई टॉड पर अनगिनत फ्रेमो मे कई बदरग फोटो। इनका मुआयना करने के लिए मैं अपनी जगह से उठा भर था कि बाहर मोटर रुकने की आवाज सुनाई दी। मैं ड्राइगरूम से निकलकर बाहर के बरामदे मे आ गया और पोर्टिको के पास सीढ़ियो पर खडा हो गया। मोटर पोर्टिको के दूसरी ओर लान के किनारे पतली अर्धगोलाकार सडक पर खडी थी।

कार विलायती थी, यानी जापानी टोयोटा थी। इंजिनियर साहब उसे हॉक रहे थे। हमारी बचपन की सहचरी (सचमुच सहचरी, क्योंकि तब हम दोनो साथ-साथ चरने को निकला करते थे) और आज की जिज्जी खिडकी पर झुकी हुई उनसे कुछ कह रही

थी। इजिनियर साहब की बाँह खिडकी पर टिकी थी। मुझे शक हुआ कि उसकी मोटी मासपेशी सिर्फ जिज्जी की साडी को नही छू रही थी, वह छुवन अपनी सारी उष्म-तरगो के साथ साडी को बेधकर कुछ और गहराई मे पहुँच रही होगी। मुझे किसी ने नही देखा। जब गाडी चली गई और जिज्जी पोर्टिको मे आई तब उन्होने मुझे देखा। देखने पर वे या तो मुस्कुराती थी या ऐठ से कोई बडप्पन-भरा वक्तव्य देती थी। इस वक्त उन्होने ऐसा कुछ नही किया। सहजता से पूछा, "तुम कब से खडे हो?"

बचपन से उन्हे गँवार लडकी मानते रहने के कारण मैं अब तक नही देख पाया था कि वे अब एक भरी-पूरी, सजी-धजी, प्यारी-सी शहरी लडकी—दरअस्ल, लडकी नही, बल्कि महिला—बन चुकी हैं। आज देखा। जिस्म पर मौसम के अनुरूप झीनी सूती साडी, जिसके रेशे-रेशे से रईसी झलक रही थी, गले मे छोटे मोतियो का हार, बाल करीने से सँवारकर पीछे एक लबे जूडे मे बँधे हुए, उसके चारो ओर सजा हुआ बेले की कलियो का हार। ओठो पर शादी के बाद फूहड ढग से पोती जानेवाली खूनी रग की लिपस्टिक नही, बल्कि हल्की, सलीके से लगाई गई लिपस्टिक, जिससे ओठो का बनाव-कटाव गोरे मुँह पर निखर आया था—और वही सुडौल, नुकीली नाक जो इस वक्त उनके झुके चेहरे पर बडी कमनीय लग रही थी, जरूरत पडने पर किसी भी वक्त गरूर से ऊपर उठ सकती थी। यह महिला आज गाँव के बाहर पुआल के गोलाकार ढेर को सैकडो प्रकाश-वर्ष पीछे छोड चुकी है। सिनेमाघरो के ड्रेस सर्किल मे, पच सितारा होटलो की किसी भी काकटेल पार्टी मे, अखिल भारतीय महिला सम्मेलन के उद्घाटन मच पर यह कही भी खप सकती है—बशर्ते कि बोलने के लिए मुँह न खोले। बोलने मे, शुद्ध किताबी खडी बोली के बावजूद, अपना गाँव अब भी रह-रहकर बोल जाता है।

"चाय पी?"

"नही, नौकर पूछ गया था। पर बहुत गर्मी है। पी नही।"

"तब? कुछ ठडा पियोगे? बियर पियोगे? कभी पिया है?"

चारो सवालो का एक जवाब . नही। ड्राइगरूम मे वह एक छोर से दूसरे छोर की ओर जा रही थी। मैं उनके पीछे-पीछे था, सोच रहा था, वह शायद अदर के बरामदे मे पखा खोलकर बैठेगी। पर दूसरे किनारे की दीवार तक जाकर एक बडी आलमारी के पास वे रुक गई। चाभी का गुच्छा निकालकर उसे खोला, पूछा, "इसे कभी देखा है?"

अदर शराब की रंग-बिरगी बोतले भरी थी। हरेक पर चमचमाते लेबेल। कुछ मे तस्वीरे भी, शेर-चीतो से लेकर रगीन पोशाको मे सजे हुए मुछदर आदमियो की। देखने ही लगता था, यह सामग्री मरियल इसानो के लिए नही है। इसे ताकत और मर्दानगीवाले असली इसान ही भोग सकते हैं।

"जीजा जी पीते हैं?"

"नही," वह आलमारी बद करने लगी। "यह मेहमानो के लिए है। कल ही यहाँ एक हाई कोर्ट के जज आकर पी गए हैं। क्या नाम है उनका धमीजा, तनेजा, सतीजा, जुनेजा—याद नही आ रहा है। इन पजाबियों के नाम भी न जाने कैसे-कैसे होते हैं। याद

नही रहते।" कहकर वह खिलखिलाकर हँसी। शहरी ड्राइगरूम मे अपने पुराने गाँव की तलैया लहराने लगी।

"वियर यहाँ नही है। मशीन मे लगी है। ठडी हो रही है। खूब ठडी पी जाती है न।"

मैं एक सोफे की नोक पर बैठ गया। पूछा, "जीजा जी कहाँ हैं? उन्ही के लिए घटे-भर से बैठा हूँ।"

"आज तो वे आधी रात के पहले न लौटेंगे," वह अदर के वरामदे मे चली गई। मैंने सोचा, जीजा जी नही पीते तो वह इंजिनियर पीता होगा। उसी के लिए यह आलमारी सजाई गई है। उसके पास सबकुछ है, जबकि यह सब पाने के लिए उसने कुछ भी नही किया है। कभी इन्कलाब आएगा तो सबसे पहले उसकी खोपडी मैं तोडूँगा। या जब ऐसा करूँगा तभी इन्कलाब आएगा। मेरे अदर एक जुलूस निकला और नारा उठा इन्कलाब जिदाबाद। उसी के साथ मेरे भीतर कुछ धम्म से गिरा और मैं समझ गया कि मैं फिर हवाई दुनिया मे उडने लगा हूँ। अपने पर हँसा, अपने को समझाया, 'ठडे हो जाओ पुत्तर। तुम उसकी खोपडी नही तोडोगे। तुम इन्कलाब नही लाओगे। ज्यादा-से-ज्यादा यू पी को-आपरेटिव वैंक मे, घूस या सिफारिश लग गई तो, बाबू बन जाओगे।'

एक तश्तरी मे मिठाई ओर एक हाथ मे पानी का ग्लास लिए वे ड्राइंगरूम मे वापस आई। सामने मेज पर रखकर मेरे पास के दूसरे सोफे पर बैठ गई। बोली, "वे आज उस मदिरवाले मामले मे उलझ गए हैं। एक सौ चौवालीस की दफा लगी है न? उसे तोडने गए हैं।"

"पर उससे तो उन्हे हिरासत मे ले लिया जाएगा।"

"अकेले थोडे ही हैं। उनके साथ चार-पाँच सौ वालंटियर हैं।"

"पर ज़िज्जी " जूडे मे वेले की कलियाँ, गले मे मोतियो का हार, जिस्म पर एक सूती, पर बेशकीमती मखनिया रग की साडी—इस सबमे वे मेरे लिए कुछ भी हो सकती थी, सिवाय जिज्जी के।

" यह काम तो विश्व हिंदू परिषदवालो का है। कॉंग्रेसी होकर भी जीजा जी इस झमेले में कैसे फँस गए?"

जिज्जी बोली, "कल आधी रात तक इसी पर तो यहाँ भ्रमचख होती रही है। वह शर्मा जी हैं न, उधर चौकवाले मिनिस्टर, उन्होने कहा है कि इस मंदिर को हमे बचाना चाहिए। आज सवेरे वे वहाँ खुद पूजा करने गए थे। तभी अब कॉंग्रेसी लोग उस मंदिर के लिए धरना देने गए हैं। सुनो सत्ते " कहकर वे सोचने लगी। मैंने उन्हे कुरेदा, "क्या सुनूँ?"

"सत्ते, यह राज-वाजनीति तो मेरे पल्ले पडती नही है। पर कल जो बहस यहाँ चल रही थी उसमे यह बात भी उठी थी। तब किसी नेता ने कहा कि विश्व हिंदू परिषदवाले

तो इसे हनुमान जी के मंदिर का मामला समझकर चिल्ला रहे हैं। यह बडा तग—पता नही क्या है!"

"नजरिया।"

"अरे बिलकुल वही। नजरिया। पर कॉग्रेस का कहना है कि चाहे हिंदू हो या मुसलमान, सिक्ख हो या या कोई भी। सबको अपने धर्म पर चलने की आजादी है। कोई संविधान है न?"

"हॉ है।"

"उसी मे धरम-करम की पूरी छूट दी गई है। नेता ने कहा कि अगर कोई हिंदुओ का मदिर तोडना चाहता है तो हम हिंदू की हैसियत से नही, संविधान के सिपाही की हैसियत से उसका विरोध करेगे। यह बात है। समझे कि नही?"

"समझ गया जिज्जी। तो जीजा जी संविधान के सिपाही बन गए हैं?"

सिपाही की वर्दी मे जीजा जी का हुलिया उन्हे शायद भाया नही। बोली, "वे कप्तान बनकर गए हैं।"

"तो मैं चलूं। अब वे आज तो लौटेगे नही।"

"लौटेगे क्यो नही। वे उन्हे सचमुच थोडे ही पकडेगे।"

"फिर भी—पता नही कब लौटे?"

जिज्जी ने नाक सिकोडी, जिसका अर्थ था तुम बकवास कर रहे हो। मैं चलने के लिए दरवाजे की ओर बढा, तब उन्होने पूछा, "तुम आए कैसे थे?"

"जीजा जी से मुझे अभी डेढ सौ रुपिया पाना है। वही लेने आया था।"

"बैठ जाओ।"

उन्होने पर्स उठाया। ऋद्धि-सिद्धि से घिरी हुई लक्ष्मी जी की तस्वीर जैसी, सबका कल्याण करने को तत्पर, पर किसी से ऑख न मिलाने की कसम जैसी खाए हुए, उन्होने अपना पर्स खोलकर उसमे झॉका। सैकडो रुपए के तुडे-मुडे नोट दो-दो, चार-चार की सख्या मे निकाले, फिर छॉटकर पचास रुपए के तीन नोट एक-एक के क्रम से मेरी ओर बढाए। निगाह पर्स और नोटो पर, हाथ मेरी दिशा मे। बोली, "ठीक है?"

"थैंक्यू जिज्जी।"

अव उन्होने मेरी ओर देखा। थैंक्यू सुनकर कुछ झेप-सी गई थी। इसलिए बिला वजह ऊँची आवाज मे बोली, "आजकल सभी रुपिया बनाने मे लगे हैं। तुम इन लोगो के साथ रहते हो। इन्ही के साथ कुछ अपने लिए भी कर लो। सौ-पचास के पीछे कब तक चक्कर काटा करोगे?"

उन्हे मेरी गरीबी नापसद होगी—शायद एकदम ऐसा नही। मेरी वजह से उन्हे खुद सौ-पचास रुपए के घटिया स्तर पर उतरना पड रहा है, यही उन्हे शायद पसद न रहा होगा। जो भी हो, मैंने भोलेपन से कहा, "मैं तो बिलासपुरी मजदूरो के साथ रहता हूँ। उनके साथ कितना कमा सकता हूँ?"

"मैं मजदूरो की बात नहीं करती, इनकी बात कर रही हूँ।" उनकी आवाज ने 'इनकी' के नीचे इतनी मोटी रेखा खीची कि उसमे परमात्मा जी के नाम के स्वर्णाक्षर चमक उठे। मैंने कहा, "और इजिनियर साहब की भी।"

"हाँ, उनकी भी।" उन्होने उखडकर कहा।

फिर, कुछ रुककर. "मैं तो तुम्हारे भले की बात करने जा रही थी।"

"फिर क्या हुआ ?"

"तुम कोई-न-कोई उल्टी बात कह देते हो।"

"मान लिया। पर मैं तो जीजा जी ओर इजिनियर साहब के साथ रहता हूँ। उसके बाद ?"

वे मुझे देखती रही। फिर' "तुम इंजिनियर साहब से बहुत चिढ़े हो न ?"

"बिलकुल नही।"

"हर रुपएवाले से तुम चिढ़ा करते हो।"

"गलत बात।"

"रुपएवाला होना बडी खराब बात है न ?"

मैंने उन्हे समझाना शुरू किया। मैं समझाता रहा कि रुपिया बहुत अच्छी चीज है, कि इजिनियर साहब बडे प्यारे आदमी हैं, कि वह बनियाइननुमा कुर्ता उन पर कितना फबता है, कि लोग-बाग उनके और इंजिनियर साहब के सामने मेरी झूठी चुगली खाते रहे है, कि मुझे सचमुच बहुत से ढेर सारे रुपए चाहिए।

वे सहज हो गई। यानी सोफे के पीछे पीठ टिकाकर इत्मीनान से उस आलमारी की ओर देखने लगी जिसमे बियर छोडकर शराब के लगभग सभी रूप स्थापित थे। उसी तरफ देखते हुए बोली, "किसी से न कहो तो एक बात बताऊँ।"

कुछ चीटियाँ इतनी छोटी होती हैं जो आसानी से दिखती नही। सिर्फ उनके काटने की चुन्नाहट से लगता है कि कमीज के नीचे वे कही पर हें। ऐसी ही कोई चीटी बडी देर से कही बडे गहरे मेरे मन मे बैठी थी और बार-बार कही चुभती थी। अब वह अचानक सतह पर आ गई। मुझे लगा, ये अब बहुत पुरानी यादो की आत्मीयता से घिरकर मुझे कोई राज बताएँगी और वह राज शायद उनके और इंजिनियर साहब के बीच का होगा। मै उसे नही सुनना चाहता था, पर एक तरह स सुनना भी चाहता था। मैंने गोपनीयता की शपथ खा ली।

"सुनो सत्ते, इधर सीतापुरवाली सडक पर एक बडा भारी कारखाना लगनेवाला है। टैक्टर-वैक्टर बनाए जाएँगे, ट्रक-वक भी बनेगे। सरकारी कारखाना होगा। दिल्ली से आएगा। यह सब तय हो चुका है, अभी कुछ ही लोग जानते हैं। कारखाना बनते ही शहर उस तरफ फैलने लगेगा। अभी आठ-दस किलोमीटर तक लोगों के खेत है, बाग है, ऊसर-बजर हैं। पर चार-पाँच साल मे ये सब शहर मे आ जाएगे। इसलिए पहले ही से ये और इजिनियर साहब वहाँ पच्चीस-तीस बीघा जमीन लेने जा रहे हे।

जमीन ज्यादा अच्छी नही है, सस्ते मे मिल जाएगी । पर बाद मे उसे सरकार छीन न ले– होता है न ऐसा ? इसलिए वे एक सोसायटी बनाकर उसके नाम से जमीन ले रहे हैं । अब बताओ, मैं तुम्हे यह क्यो बता रही हूँ ?''

कारखाने का जिक्र मेरे लिए नया न था, नई चीज यह सोसायटी थी । फिर भी इसमे मुझे कुछ ऐसा न दीखा जिसके लिए गोपनीयता की कसम खाई जाती । जो भी हो, मैंने उनकी रफ्तार कायम रखने के लिए उन्ही की शैली मे कहा, ''तुम मुझे यह इसलिए बता रही हो कि उसमे कूदकर मैं भी रुपिया बटोर लूँ ।''

कहा तो यूँ ही था पर कहते ही मैं समझ गया कि मेरा निशाना ठीक 'बुल्स आई' के बीचोबीच लगा है ।

वे चहक पडी । फिर, शायद मेरी जबान के लठपन पर गौर करके, बेरुखी से बोली, ''ठीक कहते हो । पर रुपिया इस तरह कूदकर नही बटोरा जाता । थोडी समझदारी दिखानी पडेगी ।''

समझदारी यह थी । सोसायटी मे कोई भी सदस्य एक बीघा से ज्यादा जमीन नही ले सकता । आधी जमीन इजिनियर साहब के नाम से और उनके दस-बारह आदमियो के नाम बेनामी खरीदी जाएगी । बाकी परमात्मा जी, उनकी बीबी, उनके बच्चो और उनके लग्गू-भग्गू लोगो के नाम ली जाएगी । आधा बीघा जमीन मेरे नाम से ली जाएगी—लग्गू-भग्गू के हिस्से मे से । उसकी लागत चार हजार रुपए होगी । जितने मे यहाँ शहर मे चाट का खोचा रखने-भर की जमीन न मिले, उतने मे किसी किसान का आधा बीघा इस तरह मेरे नाम हो जाएगा । यह जमीन जिज्जी अपने निजी रुपए से खरीदेगी । तीन साल के भीतर अगर मैं उन्हे दो हजार रुपिया वापस कर दूँ तो उसमे से आधी जमीन सचमुच मेरी हो जाएगी । न वापस किया तो उस पर जिज्जी का कब्जा रहेगा । मेरे हिस्सेवाली चौथाई बीघा जमीन सात-आठ साल मे डेढ लाख रुपए की न हो जाए तो जिज्जी को जो कहो वह सजा मजूर होगी ।

''मैं किसी के भी नाम से ले सकती हूँ, पर सत्ते, मैं सचमुच चाहती हूँ कि तुम भी लाख-पचास हजार के आदमी बन जाओ ।''

''थैंक्यू जिज्जी ।''

''अब दोबारा थैंक्यू-शैक्यू न कहना ।''

मेरे बाहर आते-आते उन्होने कहा, ''ये बता रहे थे किसी मजदूर औरत को तुम गाँव मे बैठा आए हो ।''

''क्यो ? यह तुम्हे कैसे याद आ गया ?''

''एक नौकरानी काम छोड गई है । उसे यहाँ लिए आओ तो झाडू-पोछा कर दिया करेगी । पचास रुपिया महीना और खुराक—ठीक रहेगा न ?''

''नही जिज्जी, वह न आएगी । उसका सातवाँ-आठवाँ महीना चल रहा है ।''

''देख लेना । यही कह रहे थे कि उसे बुला लो ।''

पूछना चाहा कि जीजा जी उसे एक इज्जतदार मजदूर की तरह तो रख नही पाए, अब शरणार्थी बनाकर क्यो रखना चाहते हैं? पर इस तरह मैं शायद खुद उनमे भी नही पूछ सकता था। सावित्री से कुछ नही कहा।

सडक पर बारिश हो रही थी और मैं भीग रहा था। मेरा मन कह रहा था कि जमीन के व्यापार मे इस घर का मुझे साथ न देना चाहिए। पर मैं जानता था कि मैं जिज्जी का सुझाव ठुकरा न पाऊँगा। अचानक लखपती बनने की चाह मुझे नही थी, पर यह अचभा देखने की चाह जरूर थी कि जहाँ दिन-भर फावडा चलाने के बाद किसी को दस रुपिया मिलता है वहाँ दो हजार रुपया बंजर मे बिखराकर अचानक डेढ लाख रुपए की फसल कैसे काटी जाती है।

5

वकीलखाना घुडसाल जैसा था, चारो ओर से खुला, चीकटदार खभो पर टिकी एक लबी-चौडी बारादरी थी जिसमे बीच से निकलने की झूठ-मूठ जगह छोडकर लकडी के तख्त पडे थे। चारो ओर बासी चारे-दाने की जगह फटे पुराने कागज बिखरे थे, लीद की जगह पीक के बाद बची हुई पान-सुपारी की लुगदी फर्श पर छितरी पडी थी। बारादरी के दो ओर जो छिछली, कश्तीदार नालियाँ थी, उनमे बहती हुई पान की पीक का रगीन घिनौनापन कई घोडे दिन-रात मूत्र-धारा बहाकर भी नही हासिल कर सकते थे। मेरे मुँह मे पान भरा था, इन नालियो को देखकर मुझे अपने मुँह से घिन होने लगी। रोज की भाँति मैंने उसी वक्त आगे के लिए पान का बहिष्कार करने की प्रतिज्ञा की।

नालियो के उस पार लबे बरामदो के टुकडे करके छोटी-छोटी दुकाने बना ली गई थी, औसत नाप के तख्त के बराबर। उनमे तख्त पडे थे, कुछ मे कुर्सी-मेज, जो कम असफल या ज्यादा भाग्यवान् वकीलो की होगी। सब लोग मिलकर जिस पदार्थ का पक्के इरादे से उत्पादन कर रहे थे उसका नाम था शोर, अर्थात् बमचख। वकील, मुशी, दलाल, अर्ज़ीनवीस, स्टाप-विक्रेता, मुअक्किल, पेशेवर ज़ामिन, पेशेवर गवाह, सभी पेशेवर। पर सबकी हालत घुडसाल के घोडो से बदतर, कोई भी खाया-पिया, तरोताजा नही दीख रहा। वकील और उनके मुशी मुअक्किलो से मुस्कुराते-खिलखिलाते-खौखियाते, उन्हे पुचकारते और कभी-कभी राज-ज्योतिषियो की मुद्रा मे गभीर भविष्यवाणी करते हुए जानदार आवाज मे बोल रहे थे। पर लगभग सभी की आवाजे एक थकी हुई नाटक मडली के अभिनेताओ जैसी थी जिन्हे कई दिन से ढँग से खाने और सोने का मौका नही मिला है।

मैं एक तख्त के पास प्रेमबल्लभ के पीछे खडा हो गया। मुझे बिना देखे वह अपने या अपने वकील के मुअक्किल से किसी मुकदमे की बात करता रहा। मुअक्किल धीरे से बता रहा था कि उसका चचेरा भाई सेल्स टैक्स अफसर है और उसका मजिस्ट्रेट के साथ बडा उठना-बैठना है। "कहो तो वकील साहब, उससे कुछ कहला दिया जाए।"

"नही भाई, जहाँ घूस चलती है वहाँ सिफारिश नही चलेगी।"

प्रेमबल्लभ के इस सिद्धात-वाक्य का मैंने हार्दिक अनुमोदन किया। तब उसने मुझे

देखा और बरसो से बिछडे प्रेमियो की तरह हमने एक-दूसरे का आलिगन किया। उसके मुँह से अब तक वासी रम की भभक आ रही थी।

"मालूम है बेटा, मैं अब असली वकील बन गया हूँ।"

"यल यल बी थर्ड इयर का नतीजा निकल गया?"

"बिलकुल। और, कुछ और मालूम है? फर्स्ट डिविजन पास हुआ हूँ, थर्ड पोजीशन आई है।"

मैंने उसके चेहरे की ओर देखा। उम्मीद की थी कि वह ऑख मारेगा क्योंकि वह भी जानता था और मैं भी जानता था कि इस बार परीक्षा कक्ष मे एक के बजाय तीन निरीक्षक लगाए गए थे ताकि विद्यार्थी उनकी सद्भाव-भरी देखरेख मे इत्मीनान से नकल कर सके। पर फर्स्ट डिविजन और तीसरी पोजीशन पाकर वह शायद यह सब भूल जाने के लिए बेचैन था। उसका चेहरा कोरे कागज जैसा बना रहा। वह एक पुराने मित्र के साथ दगाबाजी जैसी थी, पर वह तुरत खिली हुई आवाज मे बोला, "चलो, तुम्हे उम्दा लस्सी पिलाएँ।" मुअक्किल से उसने कहा, "तुम कोर्ट चलो, हमारे सीनियर वही आ रहे होगे।" कहकर, जब इसकी कोई उम्मीद नही थी, उसने मेरी ओर देखते हुए ऑख मारी।

उम्दा लस्सी टीन के नीचे चाय-बिस्कुट-लस्सी की एक चीकट दुकान मे मिलती थी। दही के तीन-चार खाली कुडे नाली के पास पडे थे। उन पर टूटती हुई मक्खियो की और दुकान पर जल्दबाजी मचाते हुए काले-मटमैले कोटवाले वकीलो की इफरात देखकर शुबहे की रत्ती-भर गुजायश न थी कि इस हल्के मे लस्सी की यही सर्वश्रेष्ठ दुकान है। वही मैंने लगभग अपनी उम्र के एक वकील को देखा जिसकी मरियल देह पर काला कोट विशेष रूप से चमक रहा था। कोट मे मटमैलापन अभी घुस नही पाया था। मटमैलापन था जरूर, पर वह सारा-का-सारा कभी सफेद रह चुके पतलून मे था। पैरो मे रबर के हवाई चप्पल। मेरी तबीयत गिर गई। दो साल बाद, यल यल बी पास कर चुकने पर, हो सकता है कि इसाफ के मंदिर के इर्द-गिर्द फैली हुई फिसलन भरी, बदबूदार पगडडियो मे मुझे भी ऐसी ही चप्पले चटकानी पडे। इस वक्त मैं जूता पहने था। पर यह कितने दिन टिक पाएगा? कानून के पेशे का भेडियाधसान दुकान पर वकीलो की भीड और उनकी पोशाक की दयनीयता के साथ मुझे दमघोटू जान पडने लगा। मैं दुकान से दो-चार कदम पीछे हट आया।

प्रेमबल्लभ लस्सी का ग्लास मेरी ओर बढा रहा था पर तिरछे होकर किसी दूसरे वकील से सुना रहा था, "राघवन् का तो भागवन् हो गया।"

उस वकील ने सिर हिलाकर इस खबर को लस्सी के घूँट के साथ खामोशी से पी लिया। मैंने पूछा, "क्या हुआ?"

कुछ ज्यादा ही जोर से, ताकि सारे समाज के ठस खोपडे मे वह सनसनीखेज खबर ठुँस जाए, प्रेमबल्लभ ने अपनी बात दोहराई। फिर उसकी व्याख्या की, "वह चोट्टा

राघवन् भागवन् हो रहा है। भाग रहा है। तबादला हो गया साले का।"

राघवन् जिला मजिस्ट्रेट थे। एक घूसखोर क्लर्क और टिकियाचोर वकील के झगडे को लेकर दो महीना पहले वहाँ वकीलो का जो आंदोलन हुआ था, उसमे काले कोटो की प्रमुख माँग यही थी कि जिला मजिस्ट्रेट को मुअत्तल किया जाए और उसका तबादला किया जाए। यह साफ नही था कि इन दो मे से पहले क्या हो। जो भी हो, बडे घमासान आदोलन के बावजूद और उसके बाद भी इन दो मे से कोई बात नही हुई थी। अब तबादलो की साधारण कडी में राघवन् का भी तबादला हुआ है। प्रेमवल्लभ का दावा था कि यह उसके सीनियर के असर से, जो कि वकीलों के असोसिएशन के महामत्री हैं, और एक तरह से कुछ खुद उसके असर से हुआ है।

पर लस्सी की दुकान के आगे खडे हुए वकीलो का जत्था ऊपरी हाँ-हूँ के सिवाय इस बारे मे उदासीन हो चुका था। शायद उनको लग रहा था कि यह किसी बडे दूर-दराज देश की खबर है, हाइती या फिलिपीन मे राज-सत्ता पलटने जैसी, जिससे उनकी नून-तेल लकडी का कोई लेना-देना नही। मुझे हैरत हुई कि प्रेमवल्लभ, जो और चाहे जो कुछ हो, बेवकूफ नही है, श्रोताओ की प्रतिक्रिया से बिलकुल अछूता रहकर इस बारे मे कैसी बक-बक कर रहा है।

इन वकीलो की उदासीनता कुछ-कुछ मेरी समझ मे आ रही थी। ये संघियो, जेठमलानियो, गोरेवालाओ की जमात के न थे। ये मामूली घरो मे से और उससे भी ज्यादा मामूली दिमागवालो मे से थे। इनकी दैनिक आमदनी इतनी भी न थी कि इनसे रिक्शावाले तक रश्क करे। हडताल ने, जो प्रेमबल्लभ के सीनियर ने अपने अहकार को थपथपाने और अपनी नेतागिरी को जमाने के लिए इन पर थोपी थी, इन्हे अधमरा बना दिया था। वह हडताल इनके लिए भीषण आगजनी, सूखा, भूकप आदि की तरह भुखमरी फैलाती हुई आ गई थी और अब जबकि फुहार पड़ने लगी थी, पिछली गर्मी की भयानक तपिश पर वे प्रेमवल्लभ का व्याख्यान नही सुनना चाहते थे, शायद उसके बारे मे वे सोचना भी नही चाहते थे।

बच सकूं तो मुझे बचना चाहिए, मटमैली पतलून और रबर की चप्पल मे एक चमकते काले कोट का निकम्मा हथियार लेकर देशव्यापी गरीबी के खिलाफ लडी जानेवाली इस निजी और शर्मनाक लडाई से मुझे बचना चाहिए—मैंने सोचा। प्रेमवल्लभ लस्सी और राघवन्-भागवन् की गाथा को समाप्त करके मेरे पास आ गया था। मैंने कहा, "कभी फुरसत से मिलो तो अपने मजदूरो की यूनियन की रजिस्ट्री करा ली जाए।"

"इसी इतवार को बैठ लिया जाए" कहकर वह अदालत की इमारतो की ओर बढा। जो मेरे मन मे नियाग्रा प्रपात बनी हुई थी, वह बात प्रेमवल्लभ के लिए बुलबुले जैसी उभरी और फूटकर गायब हो गई।

तब हिंदुस्तानी प्रथा के अनुसार, जिसके अतर्गत घटे भर बकवास करने के बाद

चलने के वक्त ही असली बात पर आया जाता है, मैंने उससे अपनी समस्या और उसका समाधान बताया, "मैं एक ठेकेदार का मेट बनकर कुछ दिन परमात्मा जी के नए मकान के पास सरकारी इमारतो का काम देखूँगा। और रात तुम्हारे यहाँ बिताया करूँगा।"

उसने शाहाना अदाज मे कहा, "आजकल तो मेरे पास दो-तीन कमरे हैं। जब चाहो, आ जाओ।"

अदालत के दरवाजे तक पहुँचते-पहुँचते मुझे यह भी मालूम हो गया कि उसके सीनियर वकील उस पर सदेह करने लगे हैं। अपनी बेवा बहन को उन्होने उसकी ससुराल मे ही रखने का फैसला किया है। प्रेमवल्लभ से उनका नाता अभी टूटा नही है पर अगर वह जरा भी चूक जाए तो किसी भी वक्त टूट सकता है। इसीलिए दिन-रात उनके घर मे घुसे रहने के बजाय अब प्रेमवल्लभ विधायक-निवास मे एक विधायक के फ्लैट मे रहने लगा है। वहाँ रहनेवाले दो-चार लोग और भी हैं। पर, प्रेमवल्लभ ने कहा, "वे सबके सब चिडीमार हैं। विधायक जी के क्षेत्र के रहनेवाले हैं, निकम्मे हैं। उनका वहाँ रहना न रहना, सब बराबर है।"

मेरे चलने के पहले प्रेमवल्लभ ने अचानक जोश से कहा, "सत्ते, सत्ते, सुनो भाई। आज शाम फोकट की दावत खाना चाहते हो ?"

मेरे पूछने पर बोला, "कुँवर साहब आए हैं। मैंने भी उनकी फिल्म के लिए एक ऐसी कहानी सोची है कि गुलशन नदा और समीर—सब चित्त हो जाएँगे। क्या समझे ? शाम को बैठक होगी। आनद साहब भी रहेगे।"

कहकर उसने इस बार आँख मारने की कोशिश मे उसे बिलकुल कानी बना डाला। मैंने कहा, "आज जाने दो, फिर कभी।"

चलते-चलते उसने मुर्ग मुसल्लम के बारे मे कुछ कहा जो मैं ठीक से सुन नही सका।

परमात्मा जी से मेरे सबध खराब हो सकते थे, पर हुए नही थे। वैसे तो मैंने उनका काम अपनी खीझ के सम्मान मे छोडा था, पर उससे उन्हे भी एक असमजस से छुटकारा मिल गया था। इंजिनियर साहब के रगमच पर आ जाने के बाद भवन-निर्माण के नाटक मे मेरी भूमिका एक एक्स्ट्रा की सी हो गई थी। वहाँ से अपने आप हटकर मैंने परमात्मा जी को इस उलझन से बचा लिया था कि वे मुझे खुद हट जाने को कहे। इसी के साथ मैंने उन्हे यह कहने का मौका भी दे दिया था कि कैसा समय आ गया है भाई, अब अपने लोगो का भी भरोसा नही रहा। इन्ही को देखो, घर के आदमी की तरह रखा था। जब काम का वक्त आया तो ठेगा दिखाकर किनारे खडे हो गए। मुझे मालूम था कि वे इस मौके का पूरा-पूरा इस्तेमाल भी करते रहते थे। मिस्त्री इसका जो जवाब देते होगे, उसका भी मुझे अदाज था। 'अब भलमसी के दिन नही रहे सरकार,' या, 'अब आदमी की आँख मे सील नही रहा साहेब।'

दिहाडी मजदूरो की यूनियन मे मैं किसी अपने वज़नी आदमी को रखना चाहता था। मेरे लिए वह वजनी आदमी अकेले परमात्मा जी थे। पर इस समय इंजिनियर साहब खुद उन्ही की पीठ पर वज़नी होकर बैठे थे। सवाल यह था कि परमात्मा जी यूनियन के सहारे नेतागिरी के खुले बाजार मे अपनी एक स्वतत्र दुकान जमाना चाहेगे या इजिनियर साहब बनाम श्रमशक्ति के झमेले मे इजिनियर साहब के पिछलग्गू रहेगे।

इतना तय था वे यूनियन मे आकर भी इन दिहाडी मजदूरो का मामला उठा कर अपनी पार्टी या सरकारी तत्र के आगे कोई तेजी नही दिखाएँगे। फिर भी उनसे कई लाभ हो सकते थे। वे कानूनी मामलो मे पक्की सलाह दे सकते थे, जोश मे आ जाएँ तो रुपए-पैसे की मदद भी। परमात्मा जी के घर की ओर बढते हुए मैंने समस्या का हल निकाल लिया . परमात्मा जी को हमे इस यूनियन का दूसरा सरक्षक बनाकर उन्हे उस परम पुनीत काम मे जोतने की कोशिश करनी चाहिए जिसे गाँधीवादी सुधारको से लेकर सरकारी प्रचारक तक 'रचनात्मक कार्यक्रम' कहते हैं मजदूरो के लिए छोटा-सा औषधालय, उनके बच्चो के लिए छोटा-सा स्कूल (आश्रमनुमा, ताकि इमारत के अभाव पर कोई उँगली न उठाए) प्रौढो की शिक्षा के लिए एक रात्रिशाला जिसमे न प्रौढ होगे, न शिक्षा होगी, जो सरकारी अनुदान के लिए सिर्फ एक छोटे से सोख्ते का काम करेगी जैसा कि ऐसी लगभग सभी शालाएँ कर रही हैं और जिसके सहारे यूनियन के दूसरे रचनात्मक कार्यक्रम चलेगे। यह भी सोच लिया कि इंजिनियर साहब तक बात पहुँचने के पहले ही हमे परमात्मा जी से हामी भरा लेनी चाहिए।

सोचा था कि परमात्मा जी से आज इसका जिक्र भर करूँगा, ठोस प्रस्ताव तब प्रस्तुत किया जाएगा जब हम तीन-चार युवाशक्तियो का प्रतिनिधि मडल उनके सामने औपचारिक ढग से उपस्थित होगा। पर जिक्र करने का अवसर नही आया। मालूम हुआ कि परमात्मा जी कोर्ट से सीधे दिल्ली से आनेवाले एक मिनिस्टर के यहाँ चले गए हैं। और मेम साहब? वे अभी-अभी इंजिनियर साहब के साथ गई हैं। वह उनकी मोटर है न, विलायती, सफेद, उसी पर अभी आए थे। शायद अपने घर गए हैं।

यह कैसे मालूम?

मेम साहब कह गई हैं, साहब आ जाएँ तो इंजिनियर साहब के यहाँ फ़ोन कर देना।

अचानक ऐसा काम कर बैठा जिसका कोई तुक-ताल नही था। बिना कुछ सोचे, बिना योजना बनाए इंजिनियर साहब के बँगले की ओर चल दिया। अधकचरे मनोवैज्ञानिको के लिए यह मानना कितना आसान होगा कि मेरे भीतर कही गहरे मे सावित्री के लिए गहरी लालसा रही होगी, उसे इंजिनियर साहब के बँगले पर गया हुआ सुनकर मेरी ईर्ष्या भडक उटी होगी, आदि-आदि-आदि। पर बँगले की ओर बढते हुए मेरे मन मे एकाध बार भले ही इस जिज्ञासा ने सिर उठाया हो कि सावित्री वहाँ क्या करने गई है, मेरा ध्यान ज्यादातर प्रेमबल्लभ के बहुमुखी व्यक्तित्व पर टिका रहा। शाम के

मुर्ग मुसल्लम पर नही, इस कल्पना पर कि उसी कहानी पर जो गुलशन नदा और समीर को चित्त करके गढ़ी गई है । कुँअर साहब की फिल्म बन चुकी है । प्रेमबल्लभ के पास दर्जनो बबइया प्रोड्यूसर नई कहानी के लिए क्यू लगाए खडे हैं । प्रेमबल्लभ अपनी लँगडी टाँग को बेशकीमती पतलून से ढके हुए, अब बडी मोटर पर चढ़ता है, बबई के एक लकदक फ्लैट मे रहता है, किसी तलाकशुदा फिल्मी अभिनेत्री पर फ़िदा है, अपने प्रेम की प्रगति-रिपोर्ट हर सप्ताह मुझे लिखकर भेजता है, मुझे बबई बुला रहा है । कैसी होगी बबई ?

अपनी निरर्थक यात्रा और बेवकूफी का एहसास बँगले के फाटक में घुसते ही हुआ । सोचा, लौट चलूँ, पर नही लौटा ।

कुछ सप्ताह पहले नेता के दाहकर्म के लिए मदद माँगने इसी बँगले पर आया था । तब इसकी रगत कुछ और थी । बदरंग हो रहा था । आज यह दूर-दूर तक 'लैट' मार रहा था । मामूली शक्लो-सूरत की कोई अधेड महिला, जिसे कल सब्जी मडी मे झोला लिए हुए घूमते देखा था, आज जगमगाते स्टेज पर रँगी-पुती सजी-सँवरी नृत्यागना के रूप मे आकर मुझे तिरछी चितवन से देख रही थी । बँगले का कायाकल्प हो गया था, जैसे किसी ने जनेऊ-चुटिया, चीकट कुर्ता छोडकर बिलकुल नए फैशन का सफरी सूट पहन लिया था और फैब्रिक्स के किसी विज्ञापन फिल्म मे माडेलिंग के लिए तैयार खडा था ।

उस बार बँगले के सामनेवाले सहन मे कुछ झाड-झखाड, दो-एक टूटी-फूटी ट्रके, एक ट्रैक्टर और लोहा-बालू सुर्खी का भडार जैसा दीखा था । आज वहाँ करीने से लगी हुई लबी-चौडी लॉन थी जिसमे घास पूरी तौर से उगी न होने पर भी दूर से हरियाली का आभास होता था । चहारदीवारी के किनारे जो पेड-पौधे-लताएँ थी, वे बारिश से धुल चुकी थी । चारो ओर रगीनी, नफासत और तरतीब का माहौल था । अदर बरामदे मे हरे-भरे गमले, बगीचे की कुर्सियाँ और ताजे पेट मे झलझलाते दरवाजे और खिडकियाँ, गही सब करिश्मा देखकर पुराने पंडित पुराणो की कथा बाँचते हुए कहते हैं 'तो जजमान ये भया, जो है सो कि द्वारवती मे शिरी किशन जी ने उस जीर्ण-शीर्ण पुराने महल को पाँव के अँगूठे से दबाके रसातल मे पहुँचाय दिया और उसके अस्थान पर शिरी विश्वकर्मा जी महाराज ने अमरावती से एक मणिजटित, रत्नरचित सुवर्ण प्रासाद उतार करके शिरी किशन जी के भोग-बिल्लास के निमित्त उस नगरी मे प्रस्थापित कर दिया ।'

मैं बरामदे के पास कुछ अचकचाया, कुछ चौंधियाया-सा खडा था । बॅगले की विस्तीर्ण चहारदीवारी के पार सडक थी जिसे शहर मे सबसे ज्यादा साफ-सुथरी, सबसे ज्यादा शानदार माना जाता था । सडक के दूसरी ओर किसी रिटायर्ड कर्नल ने अपने पुश्तैनी बॅगले को तुडवाकर एक आधुनिक बाजार बनवा लिया था । उस क्षेत्र मे नगर प्राधिकरण ने बाजार बनवाने की स्वीकृति कैसे दे दी, उस मुद्दे पर कुछ महीने पहले

अखबारो मे कई भडा-फोडवादी खबरे आई थी। पर उधर खबरे छपती रही, इधर बाजार बनता रहा। बन जाने पर उसी बाज़ार के उद्घाटन के अवसर पर उन्ही अखबारो ने दो-दो पृष्ठ के विशेषाक निकाले, एक पृष्ठ मे सत्तर व्यापारियों के अलग-अलग शुभकामना सदेश, दूसरे मे कर्नल का फोटो, और मुख्यमंत्री का सदेश जिसमे इसे नगर विकास का कीर्ति-स्तभ कहा गया था। क्योंकि उसमे ऊपर की मंजिल के लिए एस्केलेटर लगनेवाले थे। राज्यपाल का भी एक शाकाहारी गॉधीवादी चित्र छपा था जिसके बीच सूचना थी 'जिनके करकमलो द्वारा आज इस शापिंग कापलेक्स का उद्घाटन होगा।' बहरहाल, इस वक्त कापलेक्स मे मोटरे खॅची पडी थी। रग-बिरगी रोशनी मे वह जगमगा रहा था। बडी कर्री तबीयत का होने पर भी आज तक इस कापलेक्स मे पॉव रखने की मेरी हिम्मत नही हुई थी। मन भी नही हुआ था। इस समय भी यह कापलेक्स मुझसे सिर्फ दो सौ गज दूर नही था, मेरे लिए वह पेरिस था, लॉस एंजिल्स था, टोकियो था, मेरे लिए वह इतिहास की वैशाली था, अवंतिपुरी था, काव्य की अलका नगरी था।

शापिंग कापलेक्स से कुछ आगे, जिसे मैं बरामदे के कोने से देख सकता था, एक पच-सितारा होटल की इमारत का उजाला पूरे अतरिक्ष को दबोचे बैठा था। पर अदृश्य आसमान की पृष्ठभूमि मे उसकी छत पर लगे लाल रोशनी के सितारे दमक रहे थे। एक और अलका नगरी।

सडक पर दोनो ओर, विपरीत दिशाओ को भागती हुई मोटरो की कतारे, वैभव से उपजी, वैभव से चलती हुई, वैभव का ही पीछा करती हुई—भले ही वह चोरी और सीनाजोरी का वैभव हो। फुटपाथो पर टहलते हुए, अपने आपसे मुदित सजे-धजे जोडे, लहराती हुई लडकियो के झुड—जिनके बालो की खुशबू मैं ऑख मूँदकर यहाँ तक से सूँघ सकता था। लगता था, उँगली के एक इशारे से सारी हरकते किसी भी वक्त थम सकती हैं, फिर सिनेमा के किसी बेशकीमती सेट पर 'ऐक्शन' कहते ही वे धीरे-धीरे थिरकना शुरू करेगी, प्रेमियो के ये जोडे प्रणय-मुद्राओ का धीमी लय से अभिनय करने लगेगे। उसके बाद, अगर कोई कह दे कट्!

'कट्' मेरे दिमाग मे हुआ।

बरामदे के आगे अकेला खडा हुआ एक मैं हूँ जिसने जसोदा से न जाने किस बूते पर वादा किया है। नेता को किसने मारा, क्यो मारा, इस घटना के जासूसी उपन्यास मे मैंने हीरो बनने का बीडा उठाया है। शायद यही है गदहपचीसी।

बरामदे मे खडे-खडे मुझे पॉच मिनट हो रहे थे पर कोई भी मेरे पास नही आया था। सामने सहन मे भी कोई न था। न माली, न चौकीदार, न कार्बाइनधारी पप्पी। पोर्टिको मे मोटर तक नही। मैंने चुपचाप फाटक के बाहर निकलना ही वाजिब समझा। मुडकर फाटक की ओर चला।

तभी दरवाजा खोलकर इंजिनियर साहब बरामदे मे बाहर आए। चौखाने की कमीज, कसी हुई जीन्स, ऊँचे बूट जूते। मुझे देखते ही बोले, "तुम ?"

मैं पलटकर खडा हो गया था। अपनी अचकचाहट दबाकर इंजिनियर साहब को नमस्कार किया। खुले दरवाजे से सावित्री भी दीख पडी। हरी साडी मे तोता-परी बनी हुई, उनसे कुछ दूर पीछे हटकर वह एक सोफे के पास खडी थी। कायदे से मुझे असमजस दिखाना चाहिए था, पर इजिनियर साहब के चेहरे ने मेरे भीतर का आत्मविश्वास जगा दिया, शरारत की पुरानी आदत सिर झटककर खडी हो गई। जरूरत से ज्यादा हैरत भरी आवाज मे आगे बढकर मैंने जोर से कहा, "सावित्री ? तुम ?"

वह भी बरामदे मे आ गई। भली लडकी की तरह साडी के पल्लू को दोनो कधो पर समेटते हुए बोली, "तुम्हारा यहाँ कैसे आना हुआ ?"

इंजिनियर साहब मुझे लगातार घूरे जा रहे थे, पर मुझे अपनी मजबूती का पता था। सावित्री के सामने कोई अप्रिय घटना न हो पाएगी, उनका घूरना जलती आग मे दियासलाई लगाने से ज्यादा सार्थक नही था। मैंने घूमकर पीछे देखा, एक मजदूर जैसा आदमी बरामदे के पास आ गया था। माली-वाली होगा। पप्पी भी न जाने कहाँ से आ गया था, वह लॉन के पास था, कार्बाइन नदारद थी।

मैंने सावित्री से कहा, "यूँ ही उधर शापिंग कापलेक्स की ओर जा रहा था। फाटक के पास से निकलते हुए लगा कोई बँगले मे 'बचाओ-बचाओ' कहकर चीख रहा है। जनाना आवाज थी, मैं झपटकर यहाँ आ गया, खैर, भगवान की दया से यहाँ सब राजी-खुशी है।"

इंजिनियर साहब के बस मे होता तो अपनी टाँगे अपनी ही गर्दन मे फँसाकर ऐटम बम की शक्ल मे तब्दील हो गए होते। कम-से-कम उनकी आवाज़ से ऐसा ही लगा। बोले, "मेरे बँगले पर तुम्हारे आने की कोई जरूरत नही है। तुम गलत आदमी हो।"

ऐसी ही मौको पर फिल्मी हीरो अपने प्रतिद्वद्वी पर अवज्ञा की हँसी हँसता है। उस स्टैंडर्ड हँसी मे अस्सी फीसदी कटौती करके मैंने कहा, "माफ कीजिएगा। पता नही था कि यह आपका बँगला है। पिछली बार जब आया था न उस मजदूर की चिता के लिए कुछ मदद माँगने, तब तो आपका कोई दूसरा ही बँगला हुआ करता था। बाहर पुरानी ईंटो पर पीला-पीला रामरज पुता हुआ था न ? यह तो कोई दूसरा बँगला है। मैं जानता कि आपका है तो मैं यहाँ हरगिज न आता। चाहे 'बचाओ-बचाओ' चिल्लानेवाली ये सावित्री ही क्यो न होती।"

इजिनियर साहब ने मेरी पूरी बात नही सुनी। अदर चले गए और दूसरे ही क्षण हाथ मे चाभी का गुच्छा हिलाते हुए बाहर आ गए। सावित्री से बोले, "आईए, आपको घर पहुँचा दूँ। अब आज सावित्री टावरवाली स्कीम पर क्या बात हो पाएगी ? मैं कल पूरी फाइल लेकर आपके ही यहाँ आ जाऊँगा। भाई साहब होगे तो और भी अच्छा रहेगा।"

डेली पैसेजरी से इतना फायदा तो होता ही है कि किस्म-किस्म के लोग देखने को मिलते है। सिर्फ दूसरे की ऑखो मे झॉककर आप जान सकते हैं कि यह मुसाफिर चाहता क्या है। अब यह समझने के लिए मुझे किसी लंबे-चौडे तजुर्बे की जरूरत न थी कि मुझे अपनी निगाहो से जलाना चाहते हुए भी इजिनियर साहब सावित्री के वहॉ होने की सफाई दे रहे हैं।

हाथ मे चाभी का गुच्छा झुलाते हुए वे बॅगले के पिछवाडे की ओर चले गए। मैंने सावित्री से कहा, "तुम यहॉ अपने मन से आई थी तो फिर चिल्लाने की क्या जरूरत थी ?"

वे कुर्सी पर बैठ गई थी। तुनककर बोली, "मैं चिल्लाई कब थी ?"

"यह भी कह दो कि मैं आई ही कब थी।"

वह चुप रही, फिर मुस्कराई, हॅसी। बोली, "तुम बडे बेढब हो। यह 'बचाओ-बचाओ' कहॉ से सुन लिया ?"

"मैं इधर से निकल रहा था "

"अब वही न रटते रहो। मैं सब समझती हूॅ। यहॉ रुके क्यो हो, जाओ न। कुछ कहना हो तो घर पर आना।"

इंजिनियर साहब गाडी लेकर सामने आ गए थे। सावित्री के साथ मै गाडी की ओर बढा। इंजिनियर साहब से बोला, "बुरा न मानिएगा साहब, मैं बिना जाने हुए आपके बॅगले पर आ गया था।"

फाटक के बाहर आ जाने पर पप्पी ने कहा, "मान गए मुसी जी ! पक्के शोहदा हो।"

"ठीक कहते हो।" कहकर मैं सडक पार करने के लिए बढा। आत्मविश्वास की इसी लहर मे मैं सामने के शापिंग कापलेक्स को भी नाप लेना चाहता था।

पप्पी ने मेरा हाथ पकड लिया, कहा, "ठीक हो या गलत, पर तुम्हे एक बात बता दूॅ मुसी जी। साहब के इधर अब कभी मत आना।"

"क्यो ? आऊॅ तो क्या गोली मार दोगे ?"

"गोली लायक तुम नही हो मुसी जी। यही माली-वाली कभी तुम्हारी पीठ की गर्द झाड देंगे, और क्या ?"

"तो फिर पप्पी भाई, गोली खाने लायक लोग कौन से है।"

"अब मुझसे क्यो पूछते हो मुसी जी, मैं तो खुद अपने घर वापस जा रहा हूॅ।"

उसने बिना मेरे उकसाए अपने घरेलू हालात सुनाने शुरू कर दिए। घटना कुछ इस प्रकार की थी। पप्पी बिहार के भोजपुर जिले के रहनेवाले हैं। उनके बडे भाई को डकैत का दर्जा देकर, जब कि वह इस सम्मान के लायक न था, पुलिस ने एक मुठभेड मे उसका सफाया कर दिया है। बकौल पप्पी, मुठभेड फर्जी है। घर पर खेती-बाडी है, उसकी देखरेख के लिए पप्पी को अब गॉव मे जाकर रहना होगा।

"ऐसा न करना पप्पी भाई, पुलिस दूसरी मुठभेड मे तुम्हारा भी सफाया कर देगी।"

पप्पी ने इसे वडे सयत ढग से स्वीकार किया। कहा, "पर यहाॅ मन भर गया है।"

"तो उधर अहमदावाद की ओर चले जाओ।"

"वहाॅ क्या है?"

वहाॅ डकैती की अमित सभावनाएँ हैं। मैंने उन्हे समझाया। हमारे क्षेत्र के कई साहसी लडको को न जाने क्यो-भरोसा हो गया है कि गुजरात की धरती डाकेजनी के लिए इधर के पुरविहा लोगो के स्वागत मे अपना आॅचल फैलाए खडी है। वहुत से लडके उधर जाकर इस व्यवसाय मे फल-फूल रहे हैं। कुछ पकडे भी गए हैं, यह नही वताया। इसका भी जिक्र नही कि उनकी तरफ से जमानत की दरखास्त तक देनेवाला कोई नही है।

मैंने कहा, "जाना चाहो तो एकाध लडको के पते मेरे पास हैं। तुम्हे वे एकदम अपना सरदार वना लेगे।"

पप्पी खिसखिसाकर हँसे, इतने रोवदार चेहरे और इतनी खतरनाक मूँछो मे वह हॅसी सचमुच ही वडी दिलकश लगी। वोले, "मुसी जी, तुम मुझे डकैत समझते हो? अरे भाई, नेकनामी-वदनामी तो भगवान जाने, मैं फौज का पुराना हवलदार हूँ। आर्टिलरी मे था। पेशन पाता हूँ। मुझसे डाका क्यो डलवा रहे हो।" खामोशी से मैंने इसे पचाया, फिर कहा, "तो जाओ हवलदार साहव, अपने भोजपुर मे खेत गोडो।"

वे फाटक के वाहर फुटपाथ पर खडे रहे। कहने लगे, "यही तो करना चाहता हूँ मुसी जी। पर तुम ठीक कहते हो। पुलिस यह भी नही करने देगी।"

"तव फिर यही वने रहो।"

उन्होने वाएँ हाथ का पजा पलटकर उँगलियाॅ फैला दी। मुझे समझने मे दिक्कत नही हुई यह हारे हुए खेतिहर की हताश मुद्रा थी।

6

जो मजदूर मजदूरो के सिर पर खडा होकर काम कराता है, उसे इधर मेट कहते हैं। पर ठेकेदार साहब ने मुझे पहले दिन से ही सुपरवाइजर साहब कहना शुरू कर दिया था। दैनिक मजदूरी की जगह मासिक वेतन की बात तय हुई थी। ठेकेदार साहब एक बडी सरकारी योजना के मकान बनवा रहे थे। लोहा, सीमेट आदि सामग्री सरकार लगा रही थी। मेरा वेतन तय करते समय यह मानकर चला गया था कि जहाँ ठेकेदार साहब और सरकारी अफसर इस सामग्री को डकैतो की तरह लूटेगे, मैं भी, कुछ बना तो उठाईगीरो की तरह, थोड़ा-बहुत चोरी से बचा ही लूँगा। मुझे यहाँ अभी आए सात-आठ दिन ही हुए थे, मेरे लिए इस सार्वजनिक लूट का 'इन्फ्रास्ट्रंक्चर' नही बन पाया था, इस बारे मे मैं कुछ तय भी नही कर पाया था।

वैसे, ठेकेदार साहब एक बुजुर्ग सज्जन थे। उन्हे देखकर कोई नही कह सकता था कि ये कभी पुलिस के डिप्टी यस पी रह चुके हैं, ऐसा शायद इसलिए कि वे अपने मुहकमे मे ज्यादातर ऐसी इमारत मे बैठे रहे थे जिसकी छत से टपककर अगर कोई चूहा भी फर्श पर गिरता तो भूखो मर जाता। वे खुफिया पुलिस मे थे। उनके दामाद यहाँ इंजिनियर थे, इसलिए एक दूसरे इंजिनियर ने उनको यहाँ एक बडा ठेका इस सद्भावना से दे दिया था कि खुद उनके साले को पहले इंजिनियर अपने नीचे उतना ही बडा ठेका दे देगे। ठेके का काम दो हिस्सो मे बँटा था, पहला तो एक टीले से मिट्टी खुदवाकर निर्माण की निचली जमीन मे भराई कराना, दूसरे सरकारी अमले के लिए कुछ दुमंजिले आवास बनवाना। पहले मे सरकार रुपए को मिट्टी बनाती थी, दूसरे मे ये मिट्टी को रुपिया बनाते थे। दूसरे मे निर्माण-सामग्री की लूट थी, जिसके खिलाफ अपनी अतरात्मा को छोडकर कोई भी आवाज उठानेवाला न था, वहाँ लूट की सीमा या सीमाहीनता लूटनेवाले की हिम्मत के सीधे अनुपात मे तय होती थी।

ठेकेदार साहब का असली काम सिर्फ मौजूद रहना था, ठेके का सारा काम इजिनियर साहब के मातहत लोग सँभालते थे। ठेकेदार के कागज-पत्तर किसी सरकारी आदमी की लिखावट मे न बने, इसलिए, लाजमी न होते हुए भी, मुझे काम पर लगा लिया गया था। तनख्वाह किसी अच्छी कपनी के चपरासी की चौथाई, और

मजदूरो की उजरत की दो-तिहाई थी। शहर मे अपने पाँव टिकाने और दूरस्थ नियत्रण अर्थात् रिमोट कट्रोल की प्रक्रिया से यल यल वी करने के लिए मेरे लिए फिलहाल इतना काफी था।

पानी रात से ही वरस रहा था। सवेरा घने वादलो से ढँके आकाश, झकझोरती पुरवा और चारो ओर घने होते धुँधलके के वीच हुआ, पर 'प्रकट हुआ' जैसी कोई चीज नही हुई। बचपन की लोककथाओ मे 'कजरी-वन' सुनकर मन मे जिस घने, अँधेरे, दिशाविहीन, मार्गविहीन जगल की तस्वीर उभरती थी, सडको और वहुखंडी भवनों से भरा हुआ शहर कुछ देर के लिए मेरे मन की इस तस्वीर मे विलीन हो गया। फर्क यह था कि आतक की जगह मन मे हुलास था। क्योंकि वारिश हो रही थी और अभी होती रहेगी। मौसम विभाग कुछ भी कहे, किसी को भी यह वताने की जरूरत न थी कि आज पानी जमकर वरसेगा।

गाँव का रहनेवाला हूँ और जानता हूँ कि लहलहाती हरियाली, लहराते पोखर, हिंडोले, कजरी, रोपाई के गीत, तीज, राखी, जन्माष्टमी आदि-आदि-आदि-आदि का चाहे जितना वडा मायालोक फैलाया जाए, हहराती-हरी-लहराती-लता चाहे जितना झूमें, वर्षा ऋतु गाँव के लिए नरक है। टपकते छप्पर और ढहती हुई कच्ची दीवारे, पशुओं और नरपशुओ के मलमूत्र से गँजे हुए कीचड सने गलियारे, भारी पखो की मक्खियाँ, झुड-के-झुड मच्छर, कीडे-मकोडे, केंचुए, जोंक, बिच्छू और साँप, धुँआते-धुँधवाते चूल्हे और गँधाते ओसारे, जुकाम-खाँसी-मलेरिया, जानवरो का खुरहा और धान की रोपाई से लौटनेवाले आदमियो के मडे पजे, जल-भराव और वाढ़। यह सव जानते हुए भी अचभे की वात यह कि उस मायालोक मे उतरनेवाली एक परी का मैं हमेशा इतजार करता हूँ। केवल एक परी का जो पानी वरसाती है। किसी भी मौसम मे हो, अगर वादल घुमड रहे हो और पानी वरस रहा हो तो मेरा मन अपने लिए अपने आप एक मायालोक रचने लगता है, वह हुलास और उमगो का लोक है, उसमे हताशा नही है, हार नही है। यही मैं एक-सौ-एक फीसदी रोमांटिक हूँ।

सवेरा ऐसा था कि उसमे सिर्फ मैं रह गया और खुली खिडकी के उस पार वारिश रह गई। इस पार, मेरे पास टीक के सरकारी पलॅग पर मुलायम सरकारी गद्दे के ऊपर अपनी मैली गैरसरकारी चादर विछाए प्रेमवल्लभ मुँह-वाए खर्राटे ले रहा था, यह फौजी रम और उत्तम हाज्मे और गदहपचीसी का प्रसाद था। विधायक के चुनाव-क्षेत्रवाले निठल्ले लोग पहले ही धारीदार अडरवियर या लुगी मे फ्लेट का दूसरा क़मरा छोडकर वरामदे मे आ गए थे और दतून चवाते हुए वार-वार नीचे सहन मे थूक रहे थे। मैंने जल्दी से तैयार होकर अपनी साइकिल निकाली और वरसते पानी मे, यह जानते हुए भी कि आज मजदूर अपना नफा-नुकसान सोचे विना सिर्फ वर्षा मगल मनाएँगे, 'साइट' पर जाने के लिए निकल पडा। छाता या वरसाती से हमारा क्या

लेना-देना, सिर्फ एक सूखी बुश्शर्ट पॉलीथीन के एक थैले मे रक्खी और उसे अपने नाभिप्रदेश के पास पतलून मे ठूँस लिया।

कल परमात्मा जी का आदमी एक निमत्रण-पत्र दे गया था। आज उनके नए मकान के गृहप्रवेश की साइत थी।

सबसे ऊपर हिंदीवाली 'श्री' नही, बाकायदा संस्कृत की 'श्री '। उसके नीचे गणेश-जी की अठन्नी की नापवाली तस्वीर। फिर कोई वेदमत्र, जिसकी पंक्तियो पर उदात्त-अनुदात्त आदि के निशान बने हुए। फिर 'स जयति सिंधुरवदनो' इत्यादि का श्लोक। फिर निमत्रण की इबारत, जिसमे सावित्री-सदन नामक सदन मे प्रवेश के पुण्य अवसर पर श्रीमती सावित्री सरन और श्री परमात्मा सरन ने अमुक तिथि-मास-विक्रमाब्द सवत् तदनुसार फलॉ अगस्त सन् फलॉ ईसवी को सायकाल छह बजे आपको पूजन का प्रसाद ग्रहण करने, तदुपरात प्रीति भोज का उपभोग करने के लिए सादर, सस्नेह, सविनय निमंत्रित किया है। पीला कार्ड, उस पर सिंदूरी वर्ण के अक्षर। भारत की महान सस्कृतनिष्ठ सस्कृति के निर्मल केसरिया पटल पर एकमात्र कोई कलंक था तो वह था लोक भाषा का 'सरन', किसी पंडित के धवल अँगरखे पर रम के कत्थई धब्बे जैसा। पर उसके जिम्मेदार परमात्मा जी नही, उनके पिता जी थे जिन्होने 'शरण' की शरण न लेकर 'सरन' की सरन ली थी।

निमत्रण-पत्र क्या था, कलियुग मे हम जैसे गँवारो की छाती पर ठोकी गई धर्म की ध्वजा थी। दूसरी ओर, वह इक्कीसवी सदी की ओर बढ़ते हुए निमत्रणदाता की पीठ पर चढा हुआ ग्यारहवी सदी का कोई सास्कृतिक बैताल था। जिस तरह देवी-देवता मनाए जा रहे थे और किसी भी प्रकार के विघ्न के ख़िलाफ़ चारो ओर मत्र-तत्र जैसी किलेबदी की जा रही थी, उससे लगता था कि आधुनिक सुख-सुविधा से लैस एक खूबसूरत बँगले मे ठीक के खुले दरवाज़े से प्रवेश न करके परमात्मा जी, सिर पर कफन बाँधे और जान हथेली पर लिए, ताना जी की तरह गोह मे बँधे रस्से के सहारे दीवार लाँघकर दुश्मनो से भरे हुए सिहगढ क़िले मे आधी रात को घुस रहे हैं। हर हर महादेव!

बहरहाल, यह जलसा तो शाम को देखना है, अभी बरसते पानी का नज्जारा देखते हुए मैं सरकारी आवासो के 'साइट' पर हूँ। एक कच्चे फर्श के खुले, अधबने बरामदे मे, ईट की एक अस्थाई चौकी पर, सीमेट की दो खाली बोरियाँ बिछाकर बैठा हूँ। उधर एक मजदूर महिला अपने दो-ढाई साल के चीखते हुए नग-धडग बच्चे की बाँह अपने एक हाथ से टाँगकर दूसरे अधबने मकान से बाहर निकलती है और सामने सडक पर पानी मे टट्टी करने के लिए पटक गई है। यह मेरा जाना-बूझा, सुपरिचित परिदृश्य है। ये सभी महिलाएँ बच्चो को इसी तरह मरियल चूहे की तरह झुलाती हुई ले आती हैं और किसी भी जगह उन्हे गोबर के छोत की तरह पटककर चीखने और टट्टी करने के लिए छोड़ देती हैं। यहाँ न इक्कीसवी सदी की उमग-भरी आशाएँ हैं, न ग्यारहवी सदी के

सास्कृतिक सपने। यह इस महिला की और बच्चे की, और खुद मेरी बीसवी सदी है—घोर बीसवी सदी।

जहाँ अभी बच्चा बैठा हुआ चीख़ रहा था, वही से पानी की फुहारें उडाते हुए ठेकेदार साहब स्कूटर पर आते दिखाई दिए। आते ही बोले, "अच्छा हुआ आप आ गए। दिल्ली से ऊँचे अफसरो की एक टीम आई है। उनके साथ वर्ल्ड बैंक वाले भी हैं। वे सब तीन बजे यहाँ मुआयना करने आ रहे हैं।"

"ऐसी बारिश मे?"

"बारिश तो होती ही रहती है। टीम आज ही मुआयना करके शाम के हवाई जहाज से लौट जाएगी। कल दोपहर तक उन्हे तमिलनाडु मे एक प्रोजेक्ट का मुआयना करना है।"

"हमे क्या करना होगा?"

"कुछ नही, सिर्फ यहाँ मौजूद रहना है। टीम को खिलाने-पिलाने, दिखाने-सुनाने का काम तो सरकार का है।"

कहकर उन्होने बरसाती के बटन खोलने के बाद बुशशर्ट के बटन खोले, उसके नीचे खद्दर की बनियाइन मे छातीवाली जेब से कागज का मुडा हुआ एक पैकेट निकाला। बोले, "यह देखिए।"

पाँच-छह पन्नो मे टाइप किए हुए कुछ चार्ट थे, कुछ नक्शे, मकानो की कुछ डिजाइने। उन्होने कहा, "दो-एक बार पढ़ लीजिएगा। शायद कुछ पूछताँछ हमी लोगो से होने लगे।"

मैंने कहा, "आप बुरा न माने तो कहूँ। आप अपनी पुरानी आदतो से मजबूर हैं। इस वक्त आप डिप्टी यस पी नही, ठेकेदार हैं। आपको न कुछ पढ़ना है, न कुछ बताना है। मुआयना और मीटिंग का नाम सुनते ही आपकी आदत आपको परेशान करने लगती है। पर इस वक्त आप अपने डी आई जी की माहवारी बैठक मे कोई रिपोर्ट नही देने जा रहे हैं। अब आप वहाँ हैं जहाँ से आप दूसरो को इन नक्शो से माथापच्ची करते हुए देख सकते हैं और खुश हो सकते हैं कि आपका इससे कुछ लेना-देना नही है। अभी दो-तीन घटे यहाँ कोई नही आएगा। आप चाहे तो तब तक कही जाकर चाय-वाय पी आएँ। फिर लौटकर बैठिए और तमाशा देखिए।"

उन्होने मेरी समझदारी की दाद दी, मुझे स्कूटर पर बैठाला, दो-तीन किलोमीटर चलकर एक धुँआते हुए ढाबे मे मुझे उम्दा चाय पिलाई, समोसे खिलाए, खुद टोस्ट खाया और दूध पिया, फिर हम दोनो तमाशा देखने के लिए वापस लौट आए।

पर तमाशा कुछ ज्यादा देखने लायक न था। बस इतना हुआ कि दोपहर बाद दो इजिनियर वहाँ जीप से आए। तब आसमान कुछ और काला हो चुका था और हवा पहले से तेज बह रही थी। पर पानी के नाम पर बहुत हल्की फुहार भर रह गई थी। दोनो हाकिमो के हाथ मे एक-एक फाइल थी। वें ठेकेदार साहब से मसाले के अनुपात

आदि के बारे मे बात करते रहे । आधी हिंदी और आधी अग्रेजी बोलते रहे और फाइल भी देखते रहे । मैंने जीप के पास आकर देखा, वे वही चार्ट देख रहे थे जो ठेकेदार साहब की जेब मे था ।

चार बजे के लगभग इन्ही दो इंजिनियरो के पीछे एक ऐबैसडर गाडी से चार और अफसर आए । वे चारो आपस मे सिर्फ़ अग्रेजी बोलते रहे । उनमे से एक ने उतरकर इंजिनियरो के साथ, कीचड़ के बावजूद, दो-तीन अधबने मकानो में झाँककर देखा, फिर अपनी फाइल खोलकर पढने लगा। मुझे लगा कि उसमे भी ठेकेदार साहब की जेबवाला चार्ट रखा है ।

उनके चले जाने के बाद लगभग छह बजे दूर से एक जीप का हार्न सुनाई दिया । हम लोग सडक के किनारे आकर खडे हो गए । जीप और ऐबैसडर के बाद तीन-चार मोटरो का एक कारवाँ धीमी गति से सडक का कीचड दाएँ-बाएँ हमवार करता निकला । इन मोटरो मे दो विलायती मोटरे भी थी । एक मे दो गोरे बैठे थे, बाकी सब काले अफसर थे। हमारे सलाम के जवाब मे गोरो ने मुस्कुराकर हाथ हिलाए। हिंदुस्तानी अफसर उन्हे कुछ समझाने मे मशगूल रहे । गाडियाँ तीन सेकिंड के लिए लगभग रुक गईं । हम दौडते हुए एक विलायती मोटर के पास पहुँचे, तब तक हम गोरो के लिए ईंट और लोहे का हिस्सा बन चुके थे । एक हिंदुस्तानी अफसर गाडी की खिड़की से हाथ निकालकर अधबने मकानो की क़तार की तरफ इशारा कर रहा था । दूसरा आगे की सीट पर टेढा-मेढ़ा होकर पीछे देखता हुआ एक फाइल से कुछ पढ़ रहा था । यकीनन् वह भी वही चार्ट पढ़ रहा होगा ।

धीरे-धीरे गाडियाँ पानी और कीचड भरी, पर चौडी और सीधी सडक पर रेगती हुई वहाँ पहुँच गईं जहाँ धरती और आसमान मिल रहे थे । मैंने ठेकेदार साहब की ओर देखकर जोर की साँस खीची, कहा, "चलिए, अब चला जाए ।"

उन्होने बताया कि जे.ई साहब अभी आनेवाले हैं, कुछ देर रुकना होगा । फिर पूछा, "कही से फौजी रम की दो-चार बोतले नही मिल सकती ?"

"आज ?"

"नही, जल्दी नही है । चार-छह दिन मे ।"

मैंने डेली पैसेजरीवाली बेफिक्री से कहा, "इतजाम हो जाना चाहिए। मेरी जान-पहचान के एक कर्नल साहब हैं । उन्ही से कहूँगा ।"

यह नही बताया कि कर्नल साहब का नाम कुछ और नही, प्रेमबल्लभ है । ठेकेदार साहब खुश थे । कहने लगे, "आपने एक फिक्र दूर कर दी । मुझे अपने लिए नही, इन्ही जेई-शेई टाइप के लोगो के लिए मँगानी पडती है ।"

-

परमात्मा जी के नए मकान पर कुछ देर से पहुँचा । जब पहुँचा, अश्वमेध यज्ञ समाप्त हो चुका था, पूजन-प्रसाद बँट चुका था । प्रीति-भोज चल रहा था ।

वारिश के कारण सारा आयोजन छतो के नीचे हुआ था, सिर्फ नीले वल्वो की झालरे ऊपर मुँडेरो पर और मकान के तीन ओर चमक रही थी। वरामदे से लगे हुए छोटे कमरे मे नकली फूलो की मालाएँ, टूटकर समेटी जानेवाली दर्जनो कुर्सियाँ, बडे-वडे पेडस्टल पखे, विजली की राडे और न जाने कितना सामान इशारा कर रहा था कि वारिश न हुई होती तो जलसे की शक्ल और भी शानदार हो सकती थी। फिर भी वह जैसी थी, एक वार मुझे चौंधिया देने के लिए काफी थी।

केले के वदनवारो और आम के पल्लव की झालरो के वीच से निकलकर ड्राइगरूम मे आया। सफेद सीमेट मे सफेद सगमरमर की वहुत छोटी चिप्पियो के मोजेइक का वना साफ-सुथरा चिकना फर्श। एक ओर जहाँ हवन हुआ था, वहाँ से सुगधित धुआँ अभी भी धीमी गुँजलको मे उठकर खिडकी के रास्ते वाहर जा रहा था। उसके तीन ओर विछे हुए कालीनो पर पूजन-सामग्री के अवशेष, खासतौर से गुडहल के लाल फूल अव भी छितरे पडे थे। एक कालीन पर हमारे गाँव के एक वुजुर्ग पुरोहित वैठे हुए माला जप रहे थे। मैंने जाकर उनके पाँव छुए। ऊपर जगमगाती शीशे की कदीलो से झकाझक उजाला हो रहा था। फिर भी उन्होने आँखे मिचमिचाई। कहा, "कौन?" फिर पहचानकर कहा, "अच्छा, सत्ते हो? अव आए हो?" अचानक उनका चेहरा भाव-विह्वल हो गया, छत की ओर देखा, जहाँ से शायद इद्र, वरुण, कुवेर, आदित्य, वसु, साध्य, नाग, गधर्व, यक्ष, किन्नर मरुद्गण, सप्तर्षि और अप्सराओ के समूह विमानो पर चढे हुए उनको देख रहे थे। वोले, "देर से आए। भगवान सिद्धनाथ जी महाराज अभी-अभी गए हैं।"

"तव तो मैं चूक गया।"

गाँव-घर के चार-छह लोग तव तक मेरे आसपास आ गए थे। पूजा करानेवाले पडितो की, वेदमत्रो का उच्चारण करनेवाले पुरोहितो की प्रशसा करने मे तल्लीन। एक ने कहा, "एक पंडित काशी जी से भी आए है।"

"पर सिद्धनाथ महाराज जैसा कोई नही। मुझे यह केला दे गए हैं।" दूसरे ने कुर्ते की जेव मे सुरक्षित रखे हुए केले को थपथपाया, मैंने कहा, "मत्र से पैदा किया हुआ होगा?"

"मत्र भी नही, खाली हाथ हवा मे घुमाया और हाथ मे केला आ गया।"

"चलो, तुम्हारी भी वन गई।" मैंने वह कहा जो वह सुनना चाहता था।

सिद्धनाथ जी शहर के मशहूर योगी हैं, प्रसिद्ध तांत्रिक। यहाँ से सात-आठ किलोमीटर दूर एक लवे-चौडे रियासतनुमा आश्रम के अधिष्ठाता हैं जिस पर किसी खुदाई कानून से जोतो की सीमा का इसानी कानून लागू नही होता। लगभग सभी वडे नेता, अफसर और व्यापारी उनका आशीर्वाद लेने जाते हैं और उसके सहारे अपनी, और उसके सहारे देश की सपत्ति वढाते हैं। वे विचारमात्र से अपनी हथेली मे भभूत, मेवा, फल—कुछ भी प्रकट कर देते हैं। वही उनकी सिद्धि है और इस सिद्धि मे

निकलनेवाली उनकी बहुमुखी समृद्धि है। उनके इस अवसर पर आ जाने से यह गारटी हो गई है कि परमात्मा जी की भूमि पर मेघ समय से बरसेगे, उनकी जायदाद फले-फूलेगी और अजब नही कि उनके और सावित्री के सयोग से सावित्री-सदन का उत्तराधिकारी इसी साल पृथ्वी पर अवतार लेकर आ जाए।

परमात्मा जी भीतर के विशाल लाउज मे विराजमान थे। अपने गॉव-घर के सिद्धिनाथ-भक्तो से किसी तरह छुटकारा पाकर उनकी ओर बढा, पर मेहमानो की भीड मे उन तक पहुँचना मुश्किल था। इस वक्त जो बचे थे वे ज्यादातर जज, वकील, इंजिनियर, प्राध्यापकगण, डॉक्टर लोग थे। कुछ बडे व्यापारी भी। उनकी बातो के जो टुकडे सुनने को मिले उससे पता चला कि गृह सचिव महोदय आए थे, जा चुके हैं, न्यायमत्री जी आए थे, जा चुके हैं; मुख्य न्यायाधीश जी आए थे, जा चुके हैं। मुझे लगा कि इन लोगो की भी पैंट की जेबे थपथपाई जाएँ तो वहॉ सबके अपने-अपने केले सुरक्षित मिलेगे।

लाउज मे सीधे न जाकर एक दूसरे कमरे मे गया, वहॉ खाना चल रहा था। लौट आया, दूसरी तरफ से एक कमरे मे गया, वही कमरा जहॉ कभी जसोदा अपनी रसोई रॉधती थी। वहॉ भी खाना चल रहा था, पर वहॉ सिर्फ महिलाएँ थी। सावित्री की एक झलक मिली, और फिर नही मिली। वह महिलाओ की प्लेटो को बराबर भरा रखने मे व्यस्त थी। पलटकर मैं ड्राइगरूम मे आया, फिर परमात्मा जी के पास पहुँचा।

वे एक तख्त पर बिछे हुए काश्मीरी नमदे पर बैठे थे। झर्राकादार धोती, सिल्क का कुर्ता, मत्थे पर लाल तिलक। इतना फब रहे थे कि उनके पास का आदमी होने के नाते मैंने खुद एक क्षण के लिए बडप्पन का, एक तरह के गर्व का अनुभव किया। लपककर उनके पॉव छुए।

"अरे भाई, इतनी देर से आए? यह तो तुम्हारे ही घर का गृहप्रवेश था।"

मैंने उन्हे समझाया कि मैं बहुत देर का आया हुआ हूँ। बाहर इतजाम देख रहा था।

"प्रसाद लिया? भोजन किया? अरे भाई, इस सबसे निबट आओ तब इधर आना। कुछ काम की बाते करनी हैं।"

आसपास सम्मानित मेहमान सोफो और कुर्सियो पर बैठे थे। इंजिनियर साहब एक ओर खडे हुए किसी अलीगढी पायजामे और कुर्तावाले आदमी से बातचीत कर रहे थे। धोती और चिकन का कुर्ता पहने और जो अब मुश्किल से ही कही नजर आती है ऐसी दुपल्ली टोपी लगाए एक आदमी चॉदी की बडी तश्तरी मे चाँदी के वर्क लगे हुए पान लेकर आया। सब ओर मेहमानो को दिखाकर परमात्मा जी के पास लाया, बोला, "सरकार तो कुछ देर मे भोजन करेगे। तब तक यह तांबूल ग्रहण किया जाए।"

तश्तरी से पान उठाने के पहले परमात्मा जी ने चारो ओर देखा। एक बुजुर्ग कुछ दूरी पर आरामकुर्सी मे धँसे हुए थे। परमात्मा जी ने उनसे कहा, "मौसा जी, ताबूल ग्रहण कीजिए।"

मौसा जी न अपने पोपले मुँह की ओर इशारा किया। खीसे निकालकर मुस्कुराते हुए मजबूरी दिखाई, सिर हिलाया और उसे छाती पर लटका लिया।

तब परमात्मा जी ने ताबूल ग्रहण किया।

प्रसाद लेकर और खाना खाकर मैं बाहर बरामदे मे निकल आया। इस भद्र समुदाय मे मिस्त्री का कही पता नही था। इन दीवारो की एक-एक ईंट जिसके हाथो चिनी गई है, वह आया भी है या नही, और है तो कहाँ है ?

ज्यादा नही खोजना पडा। मजदूर मंडली गैरेज मे बैठी थी। मिस्त्री, तीनो छोटे मिस्त्री, अपने सभी पुराने मजदूर, बिजली मिस्त्री, प्लबरिंग फर्मवाला छोकरा—सभी मौजूद थे। सभी ने ललककर मुझे अपनी पुरानी खटिया के सिरहाने बैठाया। मिस्त्री पैताने बैठे, बाकी सब नीचे बिछी दरी पर।

गैरेज के बाहर एक कोने मे पडे जूठे पत्तल मैं देख चुका था। वे खाना खा चुके थे। मुझे अच्छा लगा कि परमात्मा जी इन्हे भूले नही थे।

तब मुझे नेता की याद आई। कुछ कहना चाहता था पर अपने को रोका। पर किसी जादू से मिस्त्री ने मेरा चोर पकड लिया। बोले, "अपना नेता नही है। यही मन को सालता है मुसी जी।"

दूसरे भी उसी विषय पर आ गए—और उस विषय के भी सबसे नाजुक नुक्ते पर, "कौन थे वे लोग मुसी ? नेता से उनकी क्या दुश्मनी थी।"

अपनी होशियारी का सिक्का जमाने के लिए यहाँ झूठ बोलने की मजबूरी न थी। फिर भी आदत की लाचारी—मेरे मुँह से निकला, "धीरे-धीरे सब पता चलेगा। तब एक-एक से निबटा जाएगा।"

मिस्त्री बोले, "मैं अभी यही लगा हूँ मुसी। पिछवाडे दीदारो का ऐपरन बनाना है, जमीन मे पानी का टैंक बनेगा। कई काम हैं। कभी-कभी आ जाया करो। नेता के लिए कही चलना हो, तो वह भी बताओ। थाना, कचहरी—मुझे किसी का डर नही है।"

"मौका आने दो, बताऊँगा।"

दो-तीन लोग चलने के लिए उठने लगे। मिस्त्री बोले, "अब चला जाए।"

"जीजा जी से तो मिल लो जाकर।"

किसी ने कहा, "इत्ते-इत्ते बडे आदमियो मे हम कैसे घुसेंगे मुंसी जी ? तुम्ही कह देना उनसे कि बहुत छककर खा लिया है सबने।" तब तक छोटे मिस्त्री बोले, "अदर पान होगा मुसी जी। दो-चार बीडे मँगवा दो, तब चले।"

जिस मजदूर ने छककर खा चुकने का ऐलान किया था, वह अब भी खडा था। उसके पाँवो मे प्लास्टिक की चप्पल थी, फिर भी ऐडी पर सूखा हुआ कीचड साफ़ दिख रहा था। बँगले का चिकना सफेद फर्श अब इन पाँवो से कोसो दूर हो चुका है। हलवाहे को काका कहने के, मजदूरो के बीच मिल-बाँटकर पान खाने के दिन बीत चुके हैं।

जेब से दो रुपिए का नोट निकालकर मैंने छोटे मिस्त्री की तरफ बढ़ाया, कहा, "अपनी पुरानी दुकान पर ही पान खा ले यार। अदर पान नही है।"

"किसी से पता तो लगा लो।"

"पता लगा लिया है। वहाँ पान नही है, ताबूल है।"

उस रात मेहमानो के चले जाने पर, जब मैं एक बाथरूम का दरवाजा बद करके उसका अपनी शैली मे उद्घाटन कर रहा था, तब दरवाजे के दूसरी ओर मुझे परमात्मा जी की आवाज सुनाई दी। इस स्वर का अदाज बिलकुल दूसरा था। लगता था कि नाराज और अभद्र होने की कोशिश मे वे क्षमायाचना जैसी कर रहे हैं। दूसरी आवाज इंजिनियर साहब की थी। पर वह पूरे तौर से समझ मे नही आ रही थी।

मैं उनमे तो हूँ नही जो किसी की चिट्ठी पढ़ने मे या छिपकर किसी की बातचीत सुनने मे किसी तरह का गुरेज करे। इसलिए मैंने अपने कान दरवाज़े के उस पार होनेवाले कथोपकथन पर लगा लिए।

पहले लगा, बातचीत सावित्री को लेकर हो रही है, फिर शायद किसी इमारत के बारे मे। उसके बाद मैं पूरा प्रसग समझ गया।

परमात्मा जी कह रहे थे, "भाई तुम समझदार हो। इसके बावजूद इतनी बड़ी बेवकूफी कैसे कर बैठे? दस आदमियो के बीच सावित्री टावर्स, सावित्री टावर्स बकते हुए घूम रहे हो। तुम्हे इस प्रोजेक्ट के लिए कोई दूसरा नाम नही मिलता?"

इसके जवाब मे इंजिनियर साहब का अंग्रेजी मे कुछ मुन्न-मुन्न। फिर परमात्मा जी की कुछ तीखी आवाज, "सावित्री ने सिर्फ़ दो दुकानो का प्रीमियम जमा किया है। पॉच-पॉच दुकानो का प्रीमियम देनेवाले भी मौजूद हैं। उनके नाम से ये टावर क्यो नही बनाते?"

कुछ और मुन्न-मुन्न।

फिर परमात्मा जी "भाई, देखो, ये झिकझिक मुझे अच्छी नही लगती। माना, सावित्री नाम पर मेरा कोई कापीराइट नही है, पर साफ बात यह है कि मैं यह तमाशा बरदाश्त नही करूँगा। इस शहर मे सावित्री के नाम से सावित्री-सदन बन चुका है। आपको अगर उसी तरह कोई टावर बनवाना है तो अपनी बीबी के नाम से चाहे टावर बनवाइए, चाहे पूरा शहर बसा दीजिए। मैं कुछ नही बोलूँगा। ज्यादा क्या कहूँ, तअज्जुब है कि आप इस पर बहस कर रहे हैं।"

दोनो ओर से कुछ देर चुप्पी। मुझे लगा कि उनमे से कोई भी दरवाजे की मूठ घुमाकर देख सकता है कि बाथरूम खाली नही है। अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करने के लिए मैंने फ्लश का हैंडिल घुमाया, थोड़ी देर इतजार किया, फिर वाशबेसिन का टैप खोलकर मुँह धोने लगा। दो-तीन मिनट बाद बाहर आया, कमरे मे कोई न था।

7

दूरदर्शन पर उस शाम श्रीकृष्ण भगवान की लीलाओ पर एक फिल्म आनेवाली थी। विधायक-निवास का नीचेवाला सभाकक्ष, जिसमे रगीन टी.वी. लगा था, पहले ही मे भर गया था। दर्शको मे विधायक-निवास के नौकर-चाकर और उनके वीवी-वच्चे थे। प्रेमवल्लभ जैसे विधायको के कुछ अतिथि या मुझ जैसे उन अतिथियो के अतिथि भी थे। विधायक नही थे, उनके लिए यहाँ कुछ नही था, उनका 'कुछ' कही और था।

श्रीकृष्ण लीला का रगीन शीर्षक टी वी के पर्दे पर झलका और उसी के साथ श्रीकृष्ण का ट्रेडमार्क यानी वशी की तान हमारे कान में पडी। हम अपनी-अपनी सीटो पर हुमसकर बैठे ही थे कि शीर्षक और ट्रेडमार्क, दोनो ही गायव हो गए और उनकी जगह एक नौजवान लडकी, चूडीदार गरारे और कुर्ते मे वडी तेजी से चलती दिखाई दी। वह फूलो और लहराती लताओ से घिरे रास्ते को फुर्ती से नापती हुई चली आ रही थी। मैं सोच ही रहा था कि वृदावन के ये कैसे लताकुंज हैं और उनके बीच राधा जी का यह कैसा रूप है कि वह झपटकर सडक पर आ गई। उसके आगे कुछ दूरी पर एक वस आकर रुक गई थी। वह दौडकर उसकी ओर वढ़ी और आँखो पर उडकर आए हुए वालो की परवाह किए विना बस पर कूदकर चढ गई। वशी वहुत पहले गायव हो गई थी। अव जो अग्रेजी वाजे बजकर हमारे कान फाड रहे थे उनकी जगह अग्रेजी मे कोई कुछ ललकारकर कहने लगा। छितरे हुए फूलो की सेज पर एक पैकेट उभरा। उस पर भी वैसे ही फूल बने थे। बस चल पडी थी, लडकी ने खिडकी से झाँककर अपने सुडौल दॉतो और ओठो से हम पर मुस्कान फेकी, हाथ हिलाया और पर्दे पर कुछ देर के लिए वही फूल और वही पैकेट रह गए। अतरिक्ष मे वही अग्रेजी वाजे, वही ललकार-भरी आकाशवाणी। हमारी हैरत अभी खत्म नही हुई थी कि फिर से वशी की तान गूँजी और कृष्ण जी की साँवरी सूरत मोहनी मूरत की पृष्ठभूमि मे फिल्म वनानेवालो के नाम पर्दे पर आने लगे। मैंने प्रेमवल्लभ से पूछा, "अबे यह क्या है?"

"विज्ञापन"

"काहे का विज्ञापन बे?"

"सेनिटरी टावेल का।"

"यह क्या होता है ?"

पर्दे पर नए-नए नाम झलक उठते थे, विलीन होते थे, पृष्ठभूमि मे वादल उमड रहे थे, बिजली चमक रही थी, जमुना बह रही थी। वशी-ध्वनि की जगह अव गीता का एक प्रसिद्ध श्लोक बडी मर्दानी आवाज मे गाया जा रहा था।

प्रेमबल्लभ घोडो की हिनहिनाहट के वजन पर हॅसने लगा था, मेरी पीठ पर अपना उल्टा हाथ पटककर बोला, "यार, सच ? तुम यह भी नही जानते ?"

"बता दो।"

"एक बच्चे के बाप बनने जा रहे हो और तुम्हे यह भी नही पता कि औरतो की माहवारी क्या चीज होती है ?"

सबकुछ उलजलूल। टी वी पर कृष्ण लीला, उसी मे बस पर कूदकर चढती हुई एक चुस्त-दुरुस्त लडकी। फिर एक ही सॉस मे सेनिटरी टावेल, मुझे अचानक पिता बनाने की कोशिश, औरतो की माहवारी। दुनिया मे सबकुछ हासिल हो सकता है, सिर्फ एक साथ दो पल ऐसे नही मिल सकते जिसमे सबकुछ तुक से हो रहा हो।

"ठीक है, ठीक है, मैं समझ गया।" कहकर मैंने उसे चुप करना चाहा, पर आज भले ही समझ गया होऊँ—उस वक्त कुछ नही समझ पाया। जो भी हो, अचानक प्रेमबल्लभ की ओर से जसोदा का इशारे से प्रसग उठ जाने के कारण मुझे यह बात याद आ गई जो मुझे भूलनी न चाहिए थी।

कल सावित्री-सदन के उत्सव मे गॉव के एक आदमी ने मुझे बडे भैया की चिट्ठी दी थी। बाद मे पढने के लिए मैंने उसे अपनी जेब मे रख लिया था, पर अब तक उसे पढ नही पाया था। रात को जब लौटा तो दिमाग मे सावित्री-सदन बनाम सावित्री टावर्स का मुकदमा चल रहा था। पूरी बात मेरे गदहपचीसीवाले दिमाग मे भी साफ थी। मान लीजिए कि आपकी श्रीमती जी का नाम सावित्री है। आप उन्हे प्यार ही नही करते, दुनिया को यह दिखाना भी चाहते हैं कि आपको उनसे प्यार है। इसके लिए आप क्या करेगे ? इतना तो करेगे ही कि सावित्री नाम की अपनी प्यारी, अधेड उम्र मे पाई दुलारी पत्नी के नाम से कही सावित्री-सदन बनवा दे और दॉत से ओठ दबाकर उस शुभ घडी का इतजार करे जब सावित्री जी वहॉ आपके बच्चे की माता बनेगी, और उसके पहले कई महीने तक सेनिटरी टावेल का विज्ञापन देखे विना भी काम चला लेगी। अब इस पूरे घरेलू आयोजन मे अगर कोई सरकार का मुअत्तल इंजिनियर सावित्री टावर्स नाम का वृहत् बाजार बनाने का सकल्प करे और दुनिया को यह दिखाना चाहे कि सावित्री-सदनवाली सावित्री उसके लिए भी उतना अर्थ रखती है कि उसके नाम पर सावित्री टावर्स बना दिया जाए तो आप क्या करेगे ? आप क्या करेगे, मैं नही जानता पर मैं यह जरूर करूँगा कि इजिनियर साहब के ऊँची एडीवाले बूटो से उन्ही की खोपडी ठोकना शुरू कर दूँगा। परमात्मा जी सचमुच परमात्मा हैं जो पापियो के बडे-से-बडे पाप क्षमा कर सकते हैं। यह न मैं कर सकता हूँ न आप कर सकते हैं। आप करे, तो आप भी मेरे लिए दूसरे परमात्मा हैं।

पर मेरे दिमाग मे एक दूसरी बात भी थी । परमात्मा जी सावित्री और इंजिनियर साहब के बीच चलनेवाली मुहब्बत और मुहब्बत न हो तो कम-से-कम उनके बीच चलनेवाली सॉठ-गॉठ का शायद पता पा चुके हैं । इसका परिणाम इटरमीडिएट मे पढ़ी हुई डिडक्टिव लॉजिक के सहारे मेरी निगाह मे यह होना चाहिए कि वे अब इंजिनियर साहब से खिचेगे, और चूँकि मैं पहले ही उनसे खिचा हूँ इसलिए वे—यानी परमात्मा जी अब मेरी ओर झुकेगे । यही वक्त है, सत्ते, जब चूकना नही है । यही वक्त है जब परमात्मा जी को अपनी प्रस्तावित यूनियन का सरक्षक बनाया जा सकता है । यही वक्त है जब भट्ठो पर पुष्ट-दुष्ट देहवाली मेहनतकश लडकियो को अपनी दुष्टता का शिकार बनानेवालो पर परमात्मा जी की तरफ से दूरगामी अस्त्रो का वार कराया जा सकता है । ये अस्त्र सत्ते और उसी जैसे चुचके गालवाले कई बेकार नौजवान होगे, बाकायदा वकालत की सनद लिए बिना भी काला कोट ओढकर जिला कचहरी मे घूमनेवाले प्रेमवल्लभ जैसे वकील होगे ।

रात मे मैं इसी तरह के जुगाडो की जुगाली करता रहा था । तब तक वह चिट्ठी मेरी जेब मे स्याही का आलोकवृत्त कागज पर फैलाती हुई खंडिता नायिका की तरह पडी रही थी । हिंदी के मास्टर साहब बता चुके हैं, खंडिता नायिका का काजल भी इसी तरह ऑखो से बहकर गालों पर फैला करता है ।

चिट्ठी ठीक से पढ़ी नही जा सकी । स्याही सचमुच ही इधर-उधर फैल गई थी । पर बडे भैया की खीझ का पूरा-पूरा पता चल गया । कुछ यह भी आभास हो गया कि वे जसोदा की समस्या को लेकर खीझे है । वह सुरेस के साथ खेत पर धान की रोपाई करने गई थी । गॉव के और भी मजदूर थे—ज्यादातर महिलाएँ और लडके । वे रोपाई कर रहे थे, घुटने झुकाकर वे धान की बेड कीचड-कॉदो से भरे खेत मे लगा रहे थे । कुछ औरते कोई रोपाई का गीत भी गा रही होगी, जिसका कैसेट तैयार करने के लिए अब जगह-जगह क्षेत्रीय सास्कृतिक केद्र तैयार हो रहे हैं । यह पत्र मे नही लिखा था, पर मैं पढ रहा था । लिखा था कि धान रोपते-रोपते जसोदा मुँह के बल कीचड़ मे गिर पडी । उसे उठाया गया । तब उठ न पाने की मजबूरी मे वह वही कीचड मे लेट गई और उसने पेट के दर्द की शिकायत की ।

उसे घर पहुँचाया गया । लिखा नही गया था पर मैं सुन रहा था, बाप मुझे फूहड गालियाँ दे रहे हैं, लोगो को बता रहे हैं कि इस बेचारी गाबिन बेवा को खुद उनका लड़का यहाँ छोडकर शहर भाग गया है । अब अगर यह मर गई तो थाना-कचेहरी को क्या उस साले का बाप भुगतेगा ? जो लिखा था वह यह था कि बडे भैया ने समझदारी से गॉव की ए यन.यम. को बुलाया । ए यन.यम यानी आक्जिलरी नर्स मिडवाइफ । यह नही लिखा था कि वह उस दिन प्राइमरी हैल्थ सेंटर के पियक्कड ड्राइवर के साथ मलयालम, अंग्रेजी और हिंदी मे चूं-चूँ-चूँ करती हुई शहर मे सिनेमा देखने चली आई

थी। लिखा था कि वह उसी वक्त शहर से सिनेमा देखकर वापस लौटी थी और वही, गाँव मे, प्रधान जी के मकान की एक कोठरी मे अपने बालो को नारियल का तेल पिला रही थी। उसे पकडकर मेरे घर ले आया गया। उसने जसोदा को देखकर बताया कि इसे प्राइमरी हैल्थ सेटर ले जाओ। पता नही इसे क्या हो रहा है। पर उसे सिर्फ पेट का दर्द हो रहा है। हो सकता है उसे प्राइमरी हैल्थ सेटर ही ले जाना पडे। भैया ने लिखा था, अपनी इल्लत खुद तुम्ही आकर सँभालो।

राजनीतिशास्त्र के पडितो ने धान पैदा करनेवाले, बगाल, आध्र प्रदेश-जैसे राज्यो मे नक्सली आंदोलन के कारण खोजे हैं। यह आदोलन उन्ही राज्यो मे चमका है। उनकी निगाह मे इसका प्रमुख कारण धान है। गेहूँ बोने का काम राजसी किस्म का है। तब शरत् ऋतु आ जाती है। अब डॉ. बोरलॉग की कृपा से, हेमत भी। ठडी हवा और चिकनी धूप-छाँह और खिली धूप मे खेत जोते जाते हैं। दशहरा और दीवाली के बीच की स्निग्धता धरती मे रची-बसी होती है। आकाश पहले से ज्यादा नीला, धरती पहले से ज्यादा हरी दीखती है। चिडियाँ खुलकर चहकती हैं और लडकियाँ ज्यादा खुले गले से गाती हैं। गाती धान रोपते समय भी हैं। पर धान के खेतो मे बेड लगाते समय माहौल बडी बेरहमी का होता है। घुटने-घुटने पानी मे खडे होकर सारे दिन देह झुकाकर काम करना पडता है। पानी बरसता रहता है। घुटने दर्द से चटकने लगते हैं। पाँव की उँगलियो के बीच की खाल सडने लगती है। केंचुए टखनो पर खिसकते हुए निकल जाते हैं और जोके पिंडलियो मे चिपक जाती हैं। पनिहा, बरजतिया, अबरहा-जैसे स्थानीय साँप पानी मे तैरते हुए मारने लायक जहर न होने पर भी मौत के राजदूत बनकर डिप्लोमैटिक कोर की स्वच्छदता के साथ घूमते हैं। और जब सबेरे से शाम तक मजदूरी के नाम पर धान की कटाई के समय मिलनेवाले अन्न का आश्वासन लेकर रोपाई करनेवाले वापस लौटते हैं तो उनका तन-बदन चूर-चूर हो चुकता है। कुछ का वदन मलेरिया मे टूटने लगता है या जानकेपाऊ खाँसी के आतक से आँधी से झकझोरे हुए बाँस की तरह हिलने लगता है। बरसात मे उनके यहाँ रबी की फसल का अवशेष नही होता क्योंकि उस इलाके मे रबी की कोई कहने लायक फसल नही होती है। आम की गुठली, महुए के फूल और साँवा-कोदो के सहारे पेट को फुसलाने की कोशिश की जाती है। दिन भर झुकी रहनेवाली कमर की मालिश के लिए कडवा तेल मिल जाएगा, इसका भी भरोसा नही रहता। धान उपजानेवाले इलाको से जो सस्कृति-प्रेमी विद्वान् रोपाई के ग्राम-गीत कैसेट पर उतारने की कोशिश करते हैं, उन्ही की जाति मे वे भी होते हैं जो मसान मे जलती चिता की लकडियाँ खीचकर नदी मे बुझाते हैं और फिर उसका चूल्हे के ईधन के लिए कारोबार करते हैं। तभी उल्टी-सीधी, अधकचरी, टेढी-मेढी क्रांति की गर्जना जिन खेतिहर मजदूरो को पहले सुनाई देती है वे धान उपजानेवाले इलाको के हैं। जसोदा भी उसी इलाके की है। यह और बात है कि अभी उसने वह गर्जना नही सुनी है। पर कभी-न-कभी सुनेगी ही, वह नही सुनेगी तो भले ही

आधा बहरा हो, कुछ दिन बाद सुरस सुनेगा।

कृष्ण लीला को वही छोड दिया।

यह पहली बार हुआ था जब ड्राइवर मोटर चला रहा हो और मैं उस पर मालिकाना अदाज मे बैठा होऊँ। मेरे साथ प्रेमबल्लभ भी था। जीप पर बैठकर देहात की बरसाती हवा का लुत्फ लेने के लिए वह भी मेरे साथ आ गया था।

भाई की चिट्ठी पढकर पहले मैंने सोचा था कि उसी रात ट्रेन से गॉव चला जाऊँ, पर उसमे बडा झमेला जान पडा था। अगर जसोदा की हालत सचमुच खराब हुई और एक-आध महीना पहले ही बच्चा होने को हुआ तो उसे रेल से शहर तक लाना मुश्किल हो जाएगा। हमारे गॉव मे जब कोई मरने को होता है तो उसके घरवाले हैसियत के प्रतीक के रूप मे उसे सीधे शहर के मेडिकल कालेज के अस्पताल मे ले आते हैं। उस मौके पर परिवहन का जाना-माना साधन तॉगा होता है जिस पर उसे लादकर दो घटे मे अस्पताल तक पहुँचा देते हैं, वहाँ ज्यादातर, वह इमर्जेंसी वार्ड की देहरी पर घटे-दो घटे गुमसुम पडा रहता है और फिर अस्पताल के बाहर कतारो मे लगी हुई लाश की गाडियो मे से किसी एक को चुनकर उसे पहले गॉव वापस लाया जाता है फिर गगा घाट पर फूँकने के लिए उसे नब्बे किलोमीटर की अंतिम यात्रा कराई जाती है। यही स्टैंडर्ड प्रक्रिया है। तॉगे पर जसोदा को धक्के खिलाने की कल्पना तो भयानक थी ही उससे आगे जुडी हुई स्टैंडर्ड प्रक्रिया की मैं कल्पना भी नही करना चाहता था। तब एकमात्र विकल्प दिमाग मे कौंधा जीप। उसी के साथ एक और नाम कौंधा डॉक्टर साहब।

शहर के बडे अस्पताल के अपने पुराने डॉक्टर साहब सचमुच बडे प्यारे साबित हुए। आजकल पुराने एहसानो की याद रखनेवाले लोग हैं कहाँ? दीर्घगामी रिश्ते भलमनसाहत और एहसान के तो रहे नही, घूस या लेन-देन के भले ही हो। मैंने यहाँ देखा है, अगर किसी इजिनियर ने किसी ठेकेदार को हेराफेरी करके कोई बडा ठेका दे दिया तो वह इंजिनियर को भाई साहब बनाकर कमीशन देगा, उनकी बीवी को भाभी बनाकर उनके लिए सिंगापुर से लाई हुई साडियाँ पहुँचाएगा और पद्रह साल बाद भी अगर बिटिया की शादी हुई तो बेबी के ब्याह मे अपनी मोटर और दो खिदमतगारो के साथ पहुँचकर एक नेकलेस का सेट तक भेट कर आएगा। जब इंजिनियर साहब के खिलाफ़ कोई जॉच चलेगी तो उनके साथ दौड-धूप करेगा, जाँच करनेवाले के खिलाफ उससे भी कडी जॉच बैठालने की कोशिश करेगा और हाईकोर्ट मे याचिका दायर करने के लिए किसी मशहूर घुमाऊ-फिराऊ वकील का इतजाम भी करेगा। इसके विपरीत, अगर किसी दूसरे इजिनियर ने ठेठ मुसीगिरी के सहारे किसी का ठेका देन-लेन की बात उठाए बिना मजूर कर लिया तो उसका सत्कार ज्यादा-से-ज्यादा दीवाली के त्योहार पर—बशर्ते कि दीवाली का त्योहार ठेके की रकम का भुगतान होने के पहले पड रहा हो—एक मिठाई के डिब्बे से हो जाएगा, काजू का दूसरा डिब्बा भी हो सकता है, पर

उसकी मेरी ओर से कोई गारटी नही, और उसके बाद ये दोनो विपरीत दिशाओ के राही अपनी-अपनी दिशाओ मे चल देगे और कभी पीछे मुडकर नही देखेगे।

तो, ऐसे विकट जमाने मे भी हमारे डॉक्टर साहब अपने घर पर ऐसे बैठे थे गोया वे टी वी पर कृष्णावतार नही, हमारे द्वारा उन पर किए हुए एहसान का विडियो टेप देख रहे हो। स्वागत, सोफे का आसन-दान, चाय-शाय, कॉफी-वाफी, शरबत-वरबत का आग्रह, जिसका निषेध करके मैंने कल सबेरे के लिए जीप की मॉग की। एक कोई रईस है जिनकी बहू का डॉक्टर साहब साल भर से इलाज कर रहे हैं। उसकी हालत मे बराबर सुधार हो रहा है, यह और बात है कि रोग छूट नही रहा है। उनकी जीप कल सवेरे विधायक-निवास पर मुझे लेने को पहुँच जाएगी आश्वासन मिला। तब तक कृष्णावतार हो चुका था और छोटे बच्चे टी वी के परदे पर जीभ लपलपाते हुए किसी बच्चे को ही देखने लगे थे जो कोई चाकलेट खा रहा था। मैंने उधर से पूरी उपेक्षा दिखाते हुए डॉक्टर साहब को समझाना शुरू किया कि हो सकता है, कल दोपहर तक नेता की मेमसाहब को हमे यही लाना पडे। उन्होने कहा, "यहॉ नही, पडोस के जनाना अस्पताल मे। मैं वहॉ की सुपरिंटेडेट से बात कर लूँगा।"

हमारा ड्राइवर टी-शर्ट और जीन्सवाली खदान का था, झबरी मूँछ और अँगोछेवाले जगल का नही। चुस्त छोकरा, लगभग हमारी ही उम्र का। गीली, बरसाती सडक पर दस-पद्रह किलोमीटर चलते ही उसने हमसे पूछा, "यह तो कलकत्तेवाली सडक है न, सर ?" यह भी पहली बार हुआ था जब किसी ने मुझे 'सर' कहा हो। कबूतर की तरह मेरी गर्दन अपने आप तन गई। पर उसकी बात का मतलब समझा प्रेमबल्लभ ने और कहा, "रायबरेली जाती है।"

"हॉ, रायबरेली भी रास्ते मे पडती है।"

हमारे पूर्वी उत्तर प्रदेश मे जिस तरह दही और हाथी जैसे ईकारात शब्द स्त्रीलिंग हो जाते हैं वैसे ही ड्राइवर ने रायबरेली जैसे शहर को स्त्रीलिंग बनाकर उसे एक घटिया बस्ती की हैसियत पर छोड दिया। साक्षात् श्रीमती इंदिरा गॉधी ने जिसे अपना चुनाव क्षेत्र बनाकर सॅवारा-सिगारा था, जहॉ पर उनको हराकर चरणसिह रूपी राम के अनुचर राजनारायण ने हनुमान के साथ ही जैक द जाइट किलर की पदवी धारण की थी, वहॉ के इस पौराणिक और ऐतिहासिक महत्व को बिलकुल अनदेखा करते हुए ड्राइवर ने कहा, "तो बनारस भी इसी सडक पर होगा।"

प्रेमबल्लभ ने कुछ इस तरह से सिर हिलाया और ऑखे सिकोडी जिससे ड्राइवर को कुछ और कहने का बढावा न मिले। तब मैं समझा। यह ड्राइवर हमे बता रहा था कि असली शहर कलकत्ता है। रायबरेली, बनारस, पटना आदि उसके लिए छोटे-छोटे गॉव भर हैं। अगर उसकी बात जारी रही तो वह हमे सिगापुर और हागकाग तक ले जा सकता है। प्रेमबल्लभ की बेसब्री वाजिब थी। समझ का यह दौर अभी खत्म ही हुआ था कि ड्राइवर ने जीप रोक दी। जिस देहाती बाजार मे गाडी रुकी वह हमारे गॉव से

तीन किलोमीटर था। जहाँ जीप रुकीं वहा के ज़्यादातर दुकानदार, खासतौर से पनवाडी समुदाय हमारा जाना-बूझा था। ड्राइवर ने कहा, "दो मिनट रुक ले।"

सडक के किनारे का कीचड तीन डगो मे पार करके वह पान की दुकान तक गया, वोला, "पान लेगे, सर?"

"तवाकू अलग से।" प्रेमवल्लभ ने कहा। हम तक पान पहुँचाकर ड्राइवर फिर दुकान पर गया और एक सिगरेट खरीदकर हमारी ओर पीठ करके, धुआँ उडाने लगा। उसकी इस सभ्यता से हम खुश हुए। हमे खुशी के चरम विंदु तक पहुँचाने के लिए अव इतना भर वाकी था कि दो-चार परिचित हमें जीप पर वैठा हुआ देखे। वह भी हो गया। हमारे गाँव के पास के एक ठाकुर साहव झोला लटकाए घूम रहे थे। पास आकर उन्होंने नमस्कार किया, जीप का गौर से मुआयना करते रहे। वोले, "जीप किसकी है?"

मैंने प्रेमवल्लभ की ओर इशारा करके कहा, "वकील साहव की। गाँव जा रहा हूँ।"

"हो आओ। सुना है तुम्हारे चचा वहाँ घर पर आजकल वडी आफत जोते हैं।" कहकर वे फिर जीप को देखने लगे। हमने इस समाचार को खामोशी से पचा लिया। वे फिर वोले, "तुम्हारे पिता जी तो सारी उमर कुदाल चलाते-चलाते वूढ़े हो गए। तुम लोगो के राज मे उन्हे दम मारने का कुछ मौका मिला है। भगवान चाहेगे तो उन्हे अव भला-ही-भला देखने को मिलेगा।"

मेरी खुशी ने अव चरम विंदु छू लिया। उनकी ये शुभकामनाएँ उनके मुँह से निकलनेवाली उस ज्वाला की चिनगारियाँ थी जो जीप पर मुझे वैठा देखकर उनके भीतर धुधुवाने लगी थी। मैंने उन्हे लगभग पुचकारते हुए कहा, "आप ठीक कहते हैं।"

पर जीप पर चढकर गाँव पहुँचने के जोश मे लगाम लग चुकी थी। वाप के कुदाल चलाने का जिक्र आते ही मुझे अपना फटेहाल घर याद आ गया था और इस स्मार्ट ड्राइवर के आगे अपनी गरीवी के कोढ को दिखाने से तवीयत हिचकने लगी थी। हम उस तिराहे पर पहुँचे जहाँ से पक्की सडक छोडकर हमे अपने गाँव की ओर मुडना था। आगे सिर्फ सडक का सपना था, चकवदी मे खेतो के वीच से सडक नाम का गलियारा निकाल दिया गया था जिसे हर साल सरकारी अमला पक्का कराने का वादा करता था और उसी के साथ किनारे का हर किसान उसे फावडो से काट-काटकर सँकरा करता जाता था। ड्राइवर ने पूछा, "इस पर चलना होगा सर?"

"हाँ, पर कोई दिक्कत न होगी। इस पर ऐंवैसडर तक चली जाती है।" कहने को तो यूँ कह दिया जैसे उस पर रोज मेरी ही ऐंवैसडर निकला करती हो पर उसी के साथ मेरी हिचक वढ गई। हो सकता है कि मकान और घर-गिरिस्ती के मामले मे ड्राइवर की हैसियत हमसे ऊँची हो। उस दशा मे अजव नही कि इस समय के 'सर' दस मिनट मे 'भाई साहव' और उसके दस मिनट वाद 'देखो' वनकर रह जाएँ। इस गिरावट की

आशका से पेशबदी के तौर पर मैंने पहले ही ड्राइवर से भाईचारा बनाने की चतुराई शुरू की। वह कहाँ का रहनेवाला है, शादीशुदा है या नही, घर मे कौन-कौन लोग हैं, आदि के बारे मे पूछताछ करने लगा। पहले ही जवाब मे उसने मुझे धराशायी कर दिया . सदर मे हमारी कोठी है, फादर महापालिका के हैडक्लर्क और ट्रासपोर्ट के इचार्ज हैं, बडा भाई वही ट्रासपोर्ट इस्पेक्टर है, खुद फिलहाल ड्राइवरी कर रहा हूँ, वैसे मोटर मरम्मत का गैरेज खोलने की सोच रहा हूँ।

प्रेमबल्लभ चारो ओर फैली हरियाली और मघा नक्षत्र मे वर्षाकालीन प्रकृति की छटा निहार रहा था, कुछ गुनगुना भी रहा था। मेरे लिए वह इस समय बडी अश्लील मन स्थिति मे जान पडा।

घर पहुँचते-पहुँचते मौसम बदल गया। बारिश शुरू हो गई। छप्पर के नीचे पडे हुए चीकट तख्त पर बैठने से इनकार करके ड्राइवर जीप मे बैठा रहा। जीजा जी घर से बाहर निकले और जसोदा का हालचाल देने के बजाय वे कब आए थे, इसका हवाला देकर अपनी नौकरी की तत्कालीन स्थिति के बारे मे खबर प्रसारित करने लगे जिसें प्रेमबल्लभ ने सुनना शुरू कर दिया। घर के अदर जाते ही बाप ने खटिया पर पडे-पडे, बिना किसी आक्रोश या वेदना के छप्पर के बाँसो को सबोधित करके बडबडाना शुरू किया जिसका अर्थ था कि उनका छोटा बेटा नालायक व नामाकूल है, एक औरत को चक्कर मे डालकर अब उन सबको घनचक्कर बना रहा है। बहन मुस्कुराती हुई कोठरी से बाहर आई, बताया कि लगता है कन्हैया होनेवाले हैं। परसो से पेट मे पीर उठी है। यहाँ पडोस के प्राइमरी हेल्थ सेटर के डॉक्टर हमेशा की भाँति शहर गए हुए हैं, कपाउडर कहता है कि पता नही यह सातवाँ महीना है कि आठवाँ कि नवाँ, इसे शहर ले जाएँ, यही अच्छा है। जसोदा खुद कोई ठीक हिसाब नही बता पा रही है, पता नही कैसी बेलच्छ है। बेलच्छ का तत्सम हुआ विलक्षण, उससे मेरे लिए कोई नतीजा नही निकला। अम्मा ने रसोईघर से पुकारकर कहा कि वे तो अब सठिया गए हैं, उनकी बात सुनने की जरूरत नही, पहले चाय पी लो, रोटी खा लो, तब इसे शहर ले जाओ, घबराने की कोई बात नही है। आज अम्मा सचमुच ही प्यारी अम्मा लगी। सुरेस अदर दहलीज मे बैठा हुआ अरहर के गीले झाखरो से एक डलिया बुनने की कोशिश कर रहा था। बुन नही पा रहा था। उछलकर पास आया, चलने का इशारा किया और बाहर जीप देखने चला गया। जसोदा दहलीज के दूसरे कोने मे टाट बिछाकर आँखे मूँदे पडी थी। आँखे खोलकर एक बार मुझे देखा और उन्हे फिर बद कर लिया। पडी रही। अम्मा ने दोबारा पुकारा। पूछा कि बाहर कौन है। प्रेमबल्लभ भी आया है, मैंने बताया। बहन से पूछा, "क्या हुआ ? मिसिर जी फिर नौकरी से निकाल दिए गए क्या ?" उसने कहा, "अभी तक तो नही। पर न जाने क्यो इनका किसी से निभाव नही होता। अपने अफसर से फिर झगडा कर बैठे हैं।" बड़े भैया नौकरी पर गए थे। भौजाई नैहर चली गई हैं।

अपने पर बडी ग्लानि हुई। यह भी क्या हुआ कि एम.ए की डिग्री लेकर ठेकेदार

का मेट बना हुआ घूम रहा हूँ। जितने भी नाते-रिश्तेदार हैं, फटीचरी के ओलंपिक्स मे स्वर्ण पदक जीतने की होड लगाए हुए हैं। जनता की सेवा करने चले तो वहाँ भी क्या हुआ ? रायपुर, बिलासपुर या न जाने कहाँ की यह गर्भवती मजदूर वेवा मिली जिसे कुछ हो गया तो झमेला खडा हो जाएगा। वह मिली और एक गूँगा मिला। एक वे हैं जिनके वाप अस्सी साल की उम्र मे गवर्नर बन जाते हैं, खुद प्लानिंग कमिशन की मेंवरी हथिया लेते हैं, बीवी राज्य सभा की सदस्य हो जाती है। होटल की लकदक नौकरी करते-करते कोई मोहतरमा अचानक विधायक वन जाती हैं और उसी के दूसरे दिन मत्री बनकर हमे देश की अखडता और एकता की सीख देने लगती है। विलायत से लौटते ही कोई अचानक दिल्ली मे किसी सस्था का चेयरमैन हो जाता है और देश की गरीवी हटाने के लिए वीस सूत्री कार्यक्रमों का परिपत्र भेजने लगता है। इंडिया इटरनेशनल सेटर मे लच खाते-खाते कोई कूदकर कही राजदूत वन जाता है और कोई जयवर्द्धन को तमिल समस्या के वारे मे राय देने की तनख्वाह खीचने लगता है। कोई युवा मुँह से जोशीले जुम्ले और थूक बहाते हुए अचानक किसी युवा कॉग्रेस या युवा जनता का अध्यक्ष तैनात हो जाता है और रूस या पूर्वी वर्लिन का एक दौरा करने के वाद हमे आतकवाद के खिलाफ सगठित होने का पाठ पढाने आता है और हवाई जहाज से दिल्ली लौट जाता है। और मैं, सत्ते, इसी पर इतरा रहा हूँ कि कभी डेली पैसेंजर्स एसोसिएशन का उपाध्यक्ष बनकर गुडागर्दी के जोर से तीन टिकट चेकरो को धमका चुका हूँ।

अम्मा से कहा, "सिर्फ चाय पिला दो। हो सके तो हलुवा-शलुवा बना दो। अभी ही लौटना है। खाना वही खाएँगे।"

प्रेमवल्लभ भीतर आकर चारपाई पर बैठा। बारिश जिस तेजी से आई थी उसी से निकल भी गई। लबे-चौडे छप्पर के नीचे की जगह लहराती हवा से भर गई। अलगनी पर सूखने को टँगी हुई दो मैली, गँधाती धोतियाँ पेंगे भरती हुई हम दोनो के सिर को सहलाने लगी। हम चारपाई पर वैठे रहे।

प्रेमवल्लभ वाप की तंदुरुस्ती के हालचाल पूछकर उन्हे अपने और मेरे उज्ज्वल भविष्य के वारे मे उत्साहित करता रहा। उसकी वातो से मै विलकुल प्रभावित नही हुआ, कुछ खीझ भी हुई, वाप भी शायद प्रभावित नही हुए।

चाय, हलुआ। प्रेमवल्लभ ने बहन की तारीफ की, हलुआ वहुत अच्छा वना है। वहन ने हँसकर कहा, "अम्मा ने बनाया है।"

प्रेमवल्लभ वोला, "तुम जीजा की फिक्र न करो। इनके अफसर को जिस दिन दो हाथ लग जाएँगे, उसकी सारी अफसरी फिस्स हो जाएगी।" वहन ने कहा, "यह उन्ही को सुनाओ, जैसे लवाडी तुम हो वैसे ही वे।" मैं जसोदा की तैयारी देखने के लिए खडा हो गया।

उसका चेहरा साफ-सुथरा और चिकना हो रहा था। पर दर्द का एहसास होने पर

उसके होठ खिंच जाते थे, कभी-कभी दबे हुए दाँतो की झलक भी दिख जाती थी, आँखे सिकुड जाती थी। इसके सिवाय उसके आसपास किसी प्रकार की दीनता नही थी, सिर्फ उसकी चालढाल एक ऊँघते हुए आदमी की सी थी। दोनो हाथ मत्थे से लगाकर उसने घर मे बडो को प्रणाम किया, मुँह से कुछ नही कहा। आशीर्वाद मे बाप मुझसे बोले, "गूँगे को चाहो तो यही छोडे जाओ। इसे अब इधर-उधर लेकर घूमने की जरूरत नही है।"

'गूँगा,' नाम मेरे कान पर हथौडे जैसा पडा। मेरे लिए वह सिर्फ सुरेस था। शायद उसे मैं यहाँ छोड भी जाता, पर उसी ने फैसला कर दिया। इशारे से कहा, "यह भी साथ ही जाएगा।"

अम्मा ने जिस शाहदिली से पाँच रुपए का नोट बढाकर जसोदा को और दो का नोट सुरेस को दिया उससे मैं चौकन्ना हो गया। पूछा, "इनकी पूरी मजदूरी मिल चुकी है?"

बाप बोले, "खर्चा भी तो हुआ है इन पर।" भूखा भूखे को लूट रहा है, इस पर कोई व्याख्या न देकर मैंने बहन की ओर देखा। उसने कहा, "बारह दिन की बाकी है—दोनो की।"

बाप को छोडकर, जीजा समेत घर के सारे लोग जीप तक जुलूस बनाकर आए। मैंने ड्राइवर से पूछा, "चाय पी ली?"

जिस तरह से उसने 'हाँ' मे सिर हिलाया, साबित हो गया वह किसी 'सर' से नही एक खेतिहर के लडके से मुखातिब है।

फिर पूछा, "हलुवा खाया?"

"मैं मीठा नही खाता।"

इसका जवाब हमारी भाषा मे है तो साले जूता खाना। कोई जवाब नही दिया, कहा, "इन्हे पीछे बैठाओ।"

ड्राइवर ने पीछे का दरवाजा खोलने के बजाय आगे की सीट गिरा दी और जसोदा को चढने का इशारा किया। बहन ने उसे सहारा देकर पीछे बैठाला। उसके बाद सुरेस। तब ड्राइवर ने कहा, "लेने किसको आए थे? उन्हे नही चलना है क्या?"

इसके जवाब मे प्रेमबल्लभ गुर्राया, बोला, "आँख हैं कि बटन? देख नही रहे हो?" मैं भी सबके पैर छूकर उसके पास बैठ गया।

जब ड्राइवर जीप स्टार्ट करने जा रहा था, अम्मा अचानक मेरी पीठ पर झुकी और जसोदा का हाथ पकडकर बोली, "भगवान करे सब ठीक-ठाक हो जाए। सदा सुखी रहो। बाद मे हँसी-खुशी के साथ यहाँ एक बार आना जरूर।"

ये मेरी सचमुच की अम्मा थी।

गाँव पार करते-करते गाडी कीचड मे फँस गई। गलियारे मे एक गढ़ा था, कब से चला आ रहा था, कहना मुश्किल है। कभी भी किसी ने उसमे चार टोकरी मिट्टी डालकर

पाटने की जरूरत नही समझी थी। हम लोग उसे पहचानते थे और अँधेरी रात मे भी साइकिल से किनारा काटकर निकल जाते थे। आते समय मैंने ड्राइवर को पहले ही आगाह कर दिया था। कीचड और पानी से भरा होते हुए भी गढ़े का भूगोल मुझे भूला नही था। लौटते से मैं कुछ कहूँ, इसके पहले ही गाडी का पहिया उसमे धँस चुका था।

पहली चिंता जसोदा की। वह पेट दाबकर बैठी थी और कराह रही थी। मैंने ड्राइवर से कहा, "इसका कुछ गडबड हुआ तो "

"मैं क्या करूँ। रास्ता ही ऐसा है।" सधे चेहरे से उसने जवाब दिया और बद इजन को फिर से स्टार्ट किया। प्रेमवल्लभ ने मेरा हाथ दबाकर शांत रहने का इशारा किया। गाडी भर्र-भर्र करती रही, आगे नही बढी। उतरकर देखा, कीचड मे धँसा पहिया वही चक्कर लेने लगा था। "धक्का लगेगा।" ड्राइवर ने राय दी।

पाँच-छह नंग-धडग लडके दूर से तमाशा देख रहे थे। कुछ लोग अपने-अपने दरवाजे छप्परो के नीचे बैठे हमी पर निगाह लगाए थे। धक्का देने के लिए कोई नही उठा, न हमे ही किसी को बुलाने की हिम्मत पडी। गाँव की हालत प्रेमवल्लभ भी उतना ही समझता था जितना मैं। मेरे साथ वह भी जीप से उतर आया, सुरेस भी। हम तीनो कीचड सने गलियारे मे जीप को धकियाते रहे। कोई नतीजा नही निकला। फिर सुस्ताने के लिए हाथ ढीले किए ही थे कि इंजिन नए ढग से गुर्राया और गाडी आगे बढकर सपाट मे आ गई।

प्रेमवल्लभ ने कहा, "यह जानबूझकर अब तक नौटकी कर रहा था। स्पेशल गियर इसने अब लगाया है!"

"जसोदा को पहले अस्पताल पहुँच जाने दो। तब इसे भी देख लेगे।"

हम लोग तने चेहरे और खिंची तबीयत से गाडी मे आकर बैठ गए। रास्ते भर कोई बात नही हुई। ड्राइवर ने ही दो-एक बार वार्तालाप चलाने की कोशिश की, पर हम, जो 'सर' की उपाधि बहुत पहले गँवा चुके थे, संधि के लिए तैयार न थे। खामोश बैठे रहे। जसोदा अब रह-रहकर कराहने लगी थी।

शहर पहुँचकर ड्राइवर को कुछ व्यावहारिक प्रशिक्षण देने का इरादा था। दो-चार जूते न लगाए, तो गालियाँ ही सही। पर वहाँ जसोदा की जो आवभगत हुई, उससे तबीयत खिल उठी। प्रेमवल्लभ से मैंने कहा, "जाने भी दो, यह मालिको का गुलाम है। ऐसे लोग हम जैसे गुलामो के भाई तक बनना गवारा नही करते। वे गुलामो के गुलाम कहाँ से हो जाएँगे?"

डॉक्टर साहब का करिश्मा! जसोदा को जनरल वार्ड मे एक बिस्तर दे दिया गया। लेडी डॉक्टर ने हमसे मुस्कुराकर बात की, जसोदा के लिए सहानुभूति उकसाने के लिए हमे अपनी ओर से कुछ कहने की ज़रूरत नही पडी। डॉक्टर साहब ने कह दिया था कि जसोदा के लिए दूध और खुराक का इतजाम अस्पताल से ही हो जाएगा। सुरेस को भी अस्पताल के बाहर एक बरामदे मे पडे रहने की इजाजत दिला दी गई।

रेडियो और दूरदर्शन की भाषा म कहा जाए तो माननीय प्रधानमत्री के सपनो को साकार करने और भारत देश मे उत्पादकता बढाने के लिए एक महान् श्रम-शक्ति की जरूरत है। स्वर्गीय नेता और जसोदा के प्रयास से उसमे आज इजाफा होने जा रहा है। हम लोग डॉक्टर साहब के घर पर बैठे हुए काफी देर तक भविष्य के एक अनुशासनबद्ध, विनम्र और परिश्रमी मजदूर के जन्म की प्रतीक्षा करते रहे।

प्रतीक्षा चार घटे बाद सफल हुई।

तीसरा भाग

1

कार्बाइन के बिना पप्पी को देखकर ऐसा लगा जैसे किसी हाथी के दाँत उखाड दिए गए हो। और जब दुलगी धोती और टेरिलीन के मटमैले कुर्ते मे पप्पी को आप नए बाजार की एक शानदार दुकान मे पाएँ--काउंटर के पीछे खडे हुए एक अग्रेजीबाज दुकानदार से मोलभाव करते हुए, तब कैसा लगेगा ? मुझे लगा कि सावित्री सदन के चिकने दरवाजे पर कोई मिट्टी पोत रहा है।

दुकान के अदर मुझे झाँकता देखकर पप्पी ने काउंटर पर पडी हुई साडियाँ एक ओर बेमुरव्बती से खिसका दी। मूँछो पर अपनी मोटी-मोटी उँगलियाँ फेरते हुए वह बाहर आया। आते ही मेरे सामने ऐलान किया, "ठग है।"

"साडियॉ खरीद रहे थे ?"

"साडियॉ नही, साडी। और साडी भी क्या, उसे कहो धोती। हमारे घर में साडी नही पहनी जाती, धोती पहनती हैं। साडियॉ तो परमात्मायिन खरीदती हैं।"

पप्पी के मुँह से एक साथ इतना लबा वक्तव्य पहली बार सुना था। बात कुछ समझ मे आई, यह आजाद परिंदे की चहक थी। पूछा, "क्या घर जा रहे हो ?"

"आज ही रात को। सोचा घर के लिए एक धोती ले ले।"

"तुम इन बडे आदमियो की बाजार मे कहाँ फँस गए ? तुम्हारे लायक दुकाने तो उधर अमीनाबाद मे हैं।"

"जल्दी है न रात की गाडी से जाना है।"

इस झलझलौआ बाजार मे भी किसी पुराने-धुराने सरकारी दफ्तर जैसी एक हैंडलूम की दुकान थी, मद्रास या हैदराबाद की। वहाँ ज्यादा लकदक न थी। जैसे किसी कलेक्टर के बूढे बाप हो जो कभी पटवारी रहे हो और अब उसके बँगले के पीछेवाले कमरे मे पडे खाँसा करते हो। ऐसी ही दुकान से मैंने पप्पी को साडी यानी धोती खरीदने की सलाह दी। खुद भी एक मोटी धोती जसोदा के लिए खरीदी।

"अब पप्पी भाई, कब आना होगा ?"

"खेती-पाती, पुलिस की झॉय-झॉय, देखो कब मौका मिले !"

शाम हो गई थी और पच्छिमी आसमान पर घटा घहरा रही थी। नीचे मरकरी लाइट मे झलझलाती चौडी सडक, जगमग दुकाने—सब बडी साफ-सुथरी, धुली-पुँछी

लग रही थी। शहर के इस हिस्से पर हमारा कोई हक नही, इस सडक से सिर्फ गुजरने का रिश्ता है। मैं अनमना हो गया।

"ए मुंसी।" पप्पी ने बिहारी लहजे मे कहना शुरू किया, "जाने के पहले एक बात बता रहा हूँ। बस सुन लो और भूल जाओ।"

"न भूल पाऊँ तो?"

"तो नही बताऊँगा।"

हम लोग साथ-साथ चलते रहे, कुछ देर बाद अपनी ओर से उसने कहा, "दो एक ठेकेदार हैं—बडे गिरोहबद। दिन को ठेकेदारी करते हैं, रात को सरकार के खुले गोदामों का माल उठवाते हैं, लोहा, सीमेंट, सैनिटरी पाइप—जो भी मिल जाए।"

"नेता की यह हालत उन्होंने की थी?"

हम लोग इंजिनियर साहब के बँगले के पास पहुँच गए थे। पप्पी फाटक के बाहर खडा हो गया। बोला, "अगर कसम खाकर कहना हो तो नही कह पाऊँगा। पर हो सकता है, नेता के न रहने पर वे कानपुर की तरफ चले गए थे। अपनी मैटाडोर वान वे उधर ही कही बेच आए हैं। मैटाडोर की चर्चा होने लगी थी न? उसकी जगह वे अब एक ट्रेकर पर चलते हैं। हरे रंग का ट्रेकर। गडबड आदमी हैं।"

"मैं सालों को हवालात दिखाए बिना नही रहूँगा।"

"तुम्हारा खून गरम है, मगर यह सब तुम्हारे बूते का नही। तभी कहा था, सुन लो और भूल जाओ।"

"तो बताया ही क्यो?"

"तुम्हे बताना तो था ही, खून भले ही गरम हो पर आदमी तुम समझदार हो।"

समझदारी इसी मे थी कि चुप रहूँ। पप्पी ही ने कहा, "इंजिनियर साहब से भी छेडछाड मत करना। ये बडे पावरफुल लोग हैं।"

ताकतवर कहा होता तो वे शायद इतने ताकतवर न लगते। अंग्रेजी में पावरफुल कहते ही पप्पी ने उन्हे नाभिकीय अस्त्रो की श्रेणी में बैठा दिया।

जिन सरकारी मकानो पर मैं काम की देख-रेख कर रहा था, उनमें से कुछ मे जसोदा के गाँव की तरफ के लोग लगे हुए थे। उसी जमात की कुछ मजदूरिने अस्पताल में उसे देखने आती थी। टखनो के ऊपर तक आनेवाली कुछ मैली, पर रगीन साड़ियाँ, अपने-आपसे दुबके हुए ब्लाउज। सभी के पाँवों मे प्लास्टिक के चप्पल, जो गारे-चूने से तलुवों को बचाने के लिए अनिवार्य हैं—पीछे से देखने पर वे सब कम-उम्र की छोकरियाँ जैसी दीखती; वही दुबले-पतले टखने, वही तनी हुई पीठ, पीछे को लचकती-सी कमर, पर सामने से दिखते असमय में बूढ़े होते चेहरे; बुझा हुआ रूप—सिर्फ दो-एक को छोडकर, जो जवानी के पचसाला फरेब से अभी छूटी नहीं थी। प्रेमवल्लभ इन दो-एक चेहरों के साथ रंगीन कल्पनाओ के ततुजाल भले ही बुनता रहे,

इस हुजूम को देखकर मेरा उससे अजीव-सा वुजुर्गाना लगाव हो चला था।

वे आई थी और अपनी छत्तीसगढ़ी मे जोर-जोर से बोलने लगी थी। चाहे किसी किशोरी की सगीत भरी आवाज हो, चाहे किसी बूढ़ी खूसट की भाँय-भाँय, सभी अपने सुर की वुलदी पर वोल रही थी। मुँह फाडकर हँस रही थी, पता नही वह क्या था, पर हँसने के लिए शायद उनके पास, सबकुछ के बावजूद, अब भी वहुत कुछ था।

वार्ड मे एक नर्स थी। पहली वार देखने मे वडी नाजुक जान पडी थी, पर पहली वार जव वह बोली तो भरम मिट गया। उसकी आवाज पत्थर पर गिरनेवाले हथौडे जैसी थी। लगता था, शव्दो की चिप्पियाँ बिखरकर आपके चेहरे पर पड रही हैं। उसने इस महिला-समुदाय को सभ्यता सिखाना शुरू किया। कई वार शू-शू करके उसने उन्हे खामोश रहने का इशारा किया। वाद मे आवाज़ के हथौडे के सहारे उन्हे वार्ड के वाहर कर दिया जहाँ वे फिर उसी तरह वोलने और हँसने लगी।

अस्पताल से छूटते ही जसोदा इस जमात मे शामिल हो गई थी। एक अधबने मकान के कमरे मे जहाँ दो कोनो मे दो परिवार पल रहे थे, उसने तीसरा कोना अपना लिया था। साथ मे वच्चा भी था। मानव ससाधन और श्रम मंत्रालय को जसोदा की विनम्र देन।

सुरेस चौथे कोने मे पसर गया था।

"मुसी, ये धोती कितने की है?"

धोती उसे पसद आई थी. हालाँकि मुझे अब लग रहा था कि इसका रग कुछ और चटख होना चाहिए था। जसोदा अपनी दरी के नीचे उसे दबाने के पहले उसकी कीमत जानने की जिद कर रही थी।

"तुम्हे आम खाने से मतलब कि पेड गिंनने से?" मेरी यह कहावत उसकी समझ मे नही आई। थोडी देर मुँह ताकने के वाद उसने फिर अपना सवाल दोहराया। मुझे वताना पडा। चालीस रुपए लगे थे।

उसने सुरेस को अपने पास इशारे से वुलाया, पूछा, "कितने दिन का पगार वाकी है?" यह शायद मुझे सुनाने के लिए था क्योंकि वह न पूरा सुन सकता था, न जवाव दे सकता था। जसोदा ने उँगली और पजो के इशारे से उससे कुछ जानना चाहा, गो-गों की आवाज के साथ वह भी उँगली और पजो से उसे कुछ समझाता रहा।

एक दूसरे पर सिर झटककर और मुँह से विकृत आवाजे निकालकर खीझ उतारते हुए, कभी पंजा, कभी पूरा हाथ, कभी एक-आध उँगली उठाकर लगभग पूरे शरीर के सहारे वे एक-दूसरे की समझ को छूने की कोशिश मे थे। अत में जसोदा ने कुछ समझ लिया। मैं कुल इतना समझा कि कोई लेन-देन का हिसाव है।

तव [illegible] ई टुकडे किए, मेरी मौजूदगी को भुलाकर वह काफी देर उन टुकड़ों को [illegible] र एक मे, फिर दो-तीन जगहो पर रखने में

व्यस्त रही। बाद मे बोली, "एक सैकडा और बीस हमे अभी और पाने हैं।"

"क्या?"

"रुपए और क्या," उसने इस तरह कहा जैसे इससे अच्छी कोई दूसरी ठिठोली नही हो सकती थी, "तुम्हारे घर पर हमारा एक सैकडा और बीस अभी पडा हुआ है।" जसोदा की बोली और उसकी अपनी निजी पद्धति से निकाला गया हिसाब मेरी समझ के बाहर था। जिस प्रक्रिया से उसने सुरेस की और अपनी मजदूरी के दिन जोडे और उनकी मजदूरी निकाली वह यकीनन गणित की कक्षा मे नही पढ़ाई जाती। फिर उस रकम से अम्मा जी से मिले हुए रुपयो को उसने जिस तरह घटाया, और लकडी के टुकडो से जिस तरह उसे सही सिद्ध किया वह और भी जटिल तरीका था। अत मे उसने कहा, "यह हुआ सैकडा और यह तीन बीसी। इसमे इस धोती की दो बीसी कट गई। अब अम्मा जी से हमारा एक सैकडा और एक बीसी और मँगा दो।"

इस हिसाब के बाद धोती दरी के नीचे उसके सिरहाने चली गई।

मैंने जेब से कुछ नोट निकाले, एक सौ साठ गिनकर उन्हे जसोदा की ओर बढाते हुए कहा, "अम्मा से जो तुम्हे एक सौ साठ मिलने हैं उनका पूरा-पूरा हिसाब यह हुआ। और वह साडी मेरी ओर से है। उसकी कीमत तुम्हे नही देनी है।"

वह मेरी ओर देखती रही। चेहरे पर शरारत थी। मुझे लगा, मैं उसे बरसो से जानता हूँ। कई साल पहले खलिहानो और बागो मे पुवाल के ढेर पर मेरे साथ जो खेलती रही थी, वह लडकी सावित्री नही थी, वह जसोदा थी। उस चेहरे पर निगाह जमाकर मैं इस पहचान को पुख्ता करता रहा। जसोदा ने कहा, "तुम मुझे यह धोती क्यो दे रहे हो मुसी?"

मैं जान-बूझकर इस सवाल की सतह के नीचे नही उतरा। कहा, "तुम्हारे पास एक ही बची है न?"

उसके चेहरे पर जो शरारत की चमक थी, बुझ गई। सिर नीचा करके वह अपने बच्चे की ओर देखती रही। उसी तरह बैठे-बैठे बोली, "मुसी तुम मुझे क्या-क्या दोगे? जो देनेवाला था वह तो चला गया।"

मेरे नोट जमीन पर पडे थे। उन्हे हममे से किसी ने नही छुआ। मैं उठकर खडा हो गया और चुपचाप बाहर निकल आया। पीछे जसोदा के बिलखकर रोने की आवाज आई।

एक दिन हरे रग का ट्रेकर अचानक ही मिल गया।

जाडे के दिन आ गए थे। सुहावना मौसम था, बकौल प्रेमबल्लभ के किसी हरे-भरे पार्क मे किसी बेच पर बैठकर रम पीने का मौसम। हम दोनो ने उस दिन, यह जानते हुए कि इतवार का दिन है और कामकाजी आदमियो को आज ही उनके घर पर पकडा जा सकता है, काफी दौड-धूप की थी।

यूनियन का काम जमाने के लिए हम दोनो ने लगभग एक दर्जन दरवाजे खटखटाए थे। अब विधायक-निवास से मिले हुए एक ढाबे मे सस्ता खाना खाकर, दो घटे सोकर, पार्क की किसी बेच पर रम पीने के इस सुहावने मौसम मे दिन के चौथे पहर हम पार्क मे आए। वकील बाबू प्रेमबल्लभ वैसे तो काफी कमाई कर रहे थे—अदालत के दो-तीन पेशकार और मुहर्रिर उनके लॅगोटिया यार बन चुके थे—पर रम हासिल करने की लॅगोटिया यारी आज उन्होने मुझ पर उतारी थी। उन्हे मैंने रम का एक पौवा खरीद दिया था। मेरा हिस्सा सिर्फ उस मूँगफली के छोटे थैले मे था जो उन्होने अपनी जेब से सौ-सौ के कुछ नोटो के बीच से खोजे हुए तीन रुपयो से खरीदी थी।

बेच पर रम नही पी जा सकी, प्रेमबल्लभ को खडे-खडे ही गटकना पडा। पार्क मे सभा हो रही थी। तिरगा लहरा रहा था। और इत्तफाक यह कि एक नेता झटकदार सिर, मटकदार कमर और हथौडे की तरह चलते नाजुक हाथो से शहर के इस नए हिस्से मे मजदूरो के शोषण पर भाषण दे रहा था। जाहिर था कि बिना जाने हुए या शायद जान लेने के कारण ही वह हमारी प्रस्तावित यूनियन का प्रतिद्वद्वी बनने पर आमादा था। पर कुछ देर भाषण सुनने के बाद हमे सुकून मिला। हम समझ गए कि वह सिर्फ जबानी जमाखर्च है—वही जो दिल्ली की विकास गोष्ठियो मे होता रहता है। भाषण उगलनेवाले नेता और मच पर बैठे लोगो की शक्ल ही बता रही थी कि ये बोलनेवालो की कौम के हैं, करनेवालो मे से नही। यह भी मालूम हो गया कि मजदूरो की विपदा का हवाला वह सिर्फ उदाहरण के लिए, उपमा और रूपक अलकारो का विधान रचाने के लिए, दे रहा है। उसकी असली चिता, जो बहुत बाद मे खुली, अमीनाबाद के घने बाजार मे पटरी दुकानदारो द्वारा सडक पर दुकाने चलवाने और सडक पर चलनेवाली सवारियो और पॉव-पियादो को हवा मे उडा देने की है।

"साला दुकानदारो से हफ्ता वसूलता है। गुप्ता जी का आदमी है।" कहकर प्रेमबल्लभ ने रही-सही रम गटक ली और आखिरी फैसला दिया, "असली हरामी है।"

भाषण, जैसा कि ज्यादातर हमारे नेताओ का होता है, वाहियात था। पढने-लिखने और इम्तहानो मे अच्छे नबर लाने मे मैं भले ही कमजोर रहा होऊँ पर मैं खालिस गॉव की उपज था और इन तरकीबो और पैंतरो को बखूबी समझने लगा था। गरीबी क्यो है और कैसे है और बेरोजगारी क्यो पनप रही है और उसे कैसे हटाया जा सकता है, ये बाते मैं उस यूनिवर्सिटी मे बचपन से सीखता आ रहा था जिसका नाम गर्दिश और बेहाली है। उधर ये भाषण देनेवाले यह समझकर चल रहे थे कि जो बात तर्क और ठडे दिमाग से सोचने की है वह मुँह से फेचकुर बहाकर की जा सकती है। और जो काम लगन, हिम्मत और सरफरोशी का है वह सिर झटककर और हाथ हिलाकर जोशीले भाषणो-भर से हो सकता है। उनके ऐसा सोचने की वजह भी है। सदियो से शोषण और जुल्म की मार झेलते-झेलते मामूली आदमी की बुद्धि बुझ चुकी है, उसकी चेतना बेहोश हो गई है। तभी, जो बिना शोर मचाए उसी के भले के लिए चुपचाप जूझने को

तैयार है, उसे वह शक की निगाह से देखता है। उसे उकसाने के लिए नेता जानते हैं, ठंडे तर्क की जरूरत नही है। भावुकता और जोश और शव्दो के उलजलूल सैलाव मे उसे वहाकर ही उभारा जा सकता है। उसे तर्क न चाहिए, गुत्थी को सुलझानेवाली विचार-श्रृंखला नही चाहिए, सिर्फ आवाज का थिएटरी उतार-चढाव चाहिए, तभी तालियाँ वजेगी। मामूली आदमी की जेव काटकर उसी के रुपए से उसे छोटी-सी वख्शीश दे दो और गला फाडकर उसका ऐलान कर दो तो वह तुम्हारी जय-जयकार वोलने लगेगा।

"चलो भाई प्रेमवल्लभ, तुम तो सिर्फ टॉग से लॅगडे हो, इस नेता का भाषण अगर मुझे दस मिनट झेलना पडा तो मैं अक्ल से लॅगडा हो जाऊँगा।" कहकर मैं उसे पार्क के वाहर खीच लाया। वहाँ सड़क के किनारे जो गाडियाँ खडी थी, उनमे वह ट्रेकर भी था।

इस शहर मे रहजनी मोटरसाइकिलो पर चलती है। यह तरीका अव तक परपरा वन गया है। पर मैटाडोर वान पर डकैती और हत्या अभी नई-नई निकली है। उसने भी सवारी वदलकर अव ट्रेकर को अपना लिया है। नेता पर हमला करनेवालो और मैटाडोर का आपसी रिश्ता प्रेमवल्लभ को पहले से मालूम था पर मैटाडोर और ट्रेकर का रिश्ता उसे मैंने अव वताया। मेरे सीने मे मेरा दिल झीगुर की तरह उछल रहा था और मैं जो कहना चाहता था उसका हर शव्द 'क्यू' तोडकर ओठो पर सवसे पहले आने की कोशिश मे था। पर मैंने इन हरकतो को कडाई से रोका, अपने लहजे को जितना ठडा और कारोबारी वना सकता था वनाया, और हरे ट्रेकर के वारे मे पप्पी ने मुझे जो वताया था, वह सव धीरे-धीरे प्रेमवल्लभ को समझा दिया। उसे वताते हुए मैं यह भी सोचता रहा कि उसे जवाव मे क्या कहना चाहिए, यानी उसकी जगह मैं होता तो क्या कहता, और मैंने यह भी सोच लिया कि क्या कहता। मैं कहता, 'अबे, शहर मे क्या यही एक हरा ट्रेकर है? तूने एक ऐसा ट्रेकर देख लिया तो क्या हुआ? मोटर की किसी भी दुकान पर ऐसे दो-चार ट्रेकर खडे मिल जाएँगे।'

वात पूरी करते-करते मेरा जोश ढीला पड गया था और जो अव खुद मेरी थी, उसी प्रतिक्रिया की उम्मीद मैं प्रेमवल्लभ से करने लगा था। पर मेरी वात खत्म होते-होते प्रेमवल्लभ एकदम से तन चुका था। वोला, "ऐसा है दोस्त, तो तुम यही रुको, मैं आधे घटे में दो-चार लोगो को विधायक-निवास से लेकर आता हूँ। देखता हूँ ये वचकर कैसे निकलते हैं।"

उसके जोश मे मुझे रम की लपट महसूस हुई और मैंने उसे ठडा करने की कोशिश की। मैं अपना ही हेमलेट वन गया और यह करूँ या वह करूँ या न करूँ के झमेले मे डूवने लगा। मैं अपनी ओर से ही कहने लगा कि यह ट्रेकर हरा तो है पर ये कैसे कहा जा सकता है कि उन्ही लोगो का है। शहर मे हरे ट्रेकर तो और भी होगे।

प्रेमवल्लभ ने एक नया काम किया, खामोश होकर मेरी हिचक के वारे मे सोचा।

यह तय हुआ कि प्रेमवल्लभ वहाँ रुकेगा और ट्रेकरवालो की प्रतीक्षा करेगा, उनसे कोई बहाना निकालकर बातचीत करेगा और उनका परिचय पाने की कोशिश करेगा। बाद मे उनकी जनम-कुडली पढी जाएगी। यानी हम पता लगाएँगे कि वे कौन हैं, क्या हैं, हम मालूम करेगे कि वे नेता के शोकांत से जुडते हैं या नही और अगर जुडते होगे तो एक बार हमारी सारी युवा-शक्ति, वह चाहे जितनी बोदी हो और चाहे जितनी बिखरी हो, उनका विध्वस किए बिना न रहेगी।

उधर मैं तेजी से जाकर सुरेस को अपने साथ ले आऊँगा। अगर ट्रेकरवाले तब तक जा न चुके होगे तो हम उनका इतजार करेगे। उनके नमूदार होने पर अगर सुरेस ने उन्हे पहचान लिया तो आगे के लिए हमारा लक्ष्य साफ हो जाएगा। अगर न पहचाना तो खोज जारी रहेगी।

सुरेस को साइकिल के कैरियर पर बैठाले हुए मैं जब पार्क के पास पहुँचा, प्रेमबल्लभ को ट्रेकर के नजदीक खडे तीन आदमियो से बातचीत करता पाया। सुरेस को मैं रास्ते मे ही समझा चुका था कि उसे क्या करना है। यह जानना कठिन था कि वह कितना समझा हैं। उसे इतना-भर पहचानना था कि जो आदमी उस ट्रेकर पर आया है वह नेता का अपहरण करनेवाले गिरोह मे था या नही। हमने यह भी सोच रखा था कि अगर यह उन्ही का ट्रेकर है तो इस वक्त भी शायद उस पर कोई अकेला आदमी न होगा, वहाँ दो-तीन लोग होने चाहिए। हमारा ख्याल सही निकला।

साइकिल से उतरते ही सुरेस ने उनकी ओर उँगली उठाकर 'गो-गो' करना शुरू कर दिया। वह उनकी ओर झपटा, फिर बीच से पलटकर मेरी ओर भागता हुआ आया। हाथ उठाकर उसने उस दिशा की ओर इशारा किया जहाँ के पार्क से नेता का अपहरण हुआ था। फिर वह भागकर सडक के दूसरी ओर गया, जहाँ कुछ मिट्टी जमा थी। उससे दो-तीन टुकडे उठाकर वह दौडता हुआ मेरे करीब आया और ट्रेकर के पास खडे हुए एक बहुत नाटे आदमी पर जो प्रेमबल्लभ से बात कर रहा था, ताककर फेका। इतना करके शायद वह अपने ही जोश से घबरा गया और दूसरी ओर से भागकर पार्क की भीड मे गुम हो गया।

पत्थर का टुकडा मोटे आदमी तक नही पहुँचा, उससे बहुत पहले ही वह एक लाई-चना के खोचे के पास आकर गिरा। खोचेवाले ने भागते हुए सुरेस को गाली दी। उसी समय मोटे आदमी ने अपना चेहरा उठाकर खोचेवाले की ओर ताका, फूला हुआ लाल-लाल चेहरा। उसकी झलक देकर वह तुरत ट्रेकर मे बैठ गया। उसके साथी भी उसी के साथ गाडी मे बैठ गए। ट्रेकर चलने के पहले उसके और प्रेमबल्लभ के बीच नमस्कारो का आदान-प्रदान हुआ।

"यही पार्टी थी न?" मेरे पास आते ही प्रेमबल्लभ ने पूछा।

मैंने सिर हिलाया, कहा, "सुरेस को तुमने देखा नही? वह बिलकुल पागल हो गया

था। उसने उस मुटल्ले पर एक पत्थर फेका था। अच्छा हुआ चूक गया, नही तो नया टटा शुरू हो जाता।"

"सुरेस का तमाशा मैं भी देख रहा था। सुनो सत्ते, शिनाख्त तो हो गई। अब क्या करोगे?"

मैं इस सवाल का अभी सीधा मुकाबला नही करना चाहता था। पूछा, "तुम इस मुटल्ले को जानते हो?"

"हॉ, पर ज्यादा नही। दफा 307 के एक मुकदमे मे यह पिछले साल मेरे सीनियर का मुवक्किल था।"

"करता क्या है?"

"उठाईगीरी। वाहियात आदमी है। ठेकेदारी करता है, शराब की दुकाने हैं, दो ट्रको का मालिक है।"

केद्र के एक मत्री इसी शहर के रहनेवाले हैं। अपनी नफासत और शराफत के लिए मशहूर हैं। कविता, सगीत और कलाओ के प्रेमी हैं। उनका नाम लेकर प्रेमबल्लभ ने कहा, "उनका खास आदमी है।"

"आदमी कैसा है?"

"ऊँचे दर्जे के गुंडो मे जो एक दिखावटी भलमनसाहत होती है उससे कोसो दूर। वेहूदा है और चाहता है कि लोग उसे बेहूदा समझे।"

"तुम्हे तो वडे कायदे से नमस्कार कर रहा था।"

"नही जी। वह तो मेरे नमस्कार का जवाब था।"

मैं खामोश हो गया। फिर पूछा, "अब क्या करोगे?" अभी यही सवाल प्रेमबल्लभ ने मुझसे किया था।

2

उत्तर प्रदेश दैनिक मजदूर सघ के दफ्तर का पहला दिन । समय दोपहर डेढ बजे । मिस्त्री लकडी की बेच पर वैठे हुए लाई-चने का नमक-मिर्च के साथ लच ले रहे थे । आज वे घर से रोटी बाँधकर नही चले थे, इसलिए भडभूजे के फास्ट फूड रेस्त्राँ का सहारा लिया था । मैं नई मेज के पीछे उतनी ही नई कुर्सी पर बैठा हूँ । सिर्फ तबीयत मे नयापन नही है ।

बेवकूफी की बात हो, वह भी उनके मुँह से समझदारी की जान पडती है । मिस्त्री ने कहा

''काम तुम अच्छा कर रहे हो मुसी, पर तुम्हारे उखाडने से कुछ उखडने का नही । पहले भी कई बार यूनियन-ऊनियन बनानेवाले आए थे, पर सरदारो और ठेकेदारो और भट्ठेवालो के मुकावले सभी कुछ दिन बाद झोला-झगड छोडकर भाग खडे हुए । मैंने भी दो-एक बार चदा दिया था । उसका पता नही चला । रसीदे अब भी कही पडी हैं । शहद भी नही है, जिसे लगाकर उन्हे चाटते । अब तुम कह रहे हो तो तुम्हे भी पाँच का नोट नजर कर दूँगा । पर कुछ होना-हवाना नही है इससे ।

''और सच पूछो तो यूनियन-शूनियन की कोई जरूरत नही है । तुम बिलासपुरी लेबर को अभी तुक से समझ नही पाए हो, बडी मस्त कौम है । दिन-भर जुटकर काम करेगे, वस विविध भारती पर वाजे की सुई टिकाकर छोड दो । वाजा बजता रहेगा और इनका हाथ चलता रहेगा । शाम को जमकर देह पर तेल मालिश करेगे । गाएँगे जरूर । और सबेरे उठकर बवे पर देह मलकर नहाएँगे—तुम्हे क्या वताना, तुम तो सब देख ही रहो हो—हम लोगो की जनाना भला इतनी सफाई रख सकती है ? मर्द जो हैं, यहाँ आकर गाँजे की लत पाल लेते हैं, जुआ खेलने को बैठ जाएँ तो लँगोटी तक दाँव पर लगा दे, यह अपना नेता था, देखने लायक था उसका खेल । हेह, इन्ही करमो से फटीचर बने घूम रहे हैं । जो समझदार हैं वे सीजन मे सैकडो-हजारो की गड्डी लेकर अपने देस लौटते हैं । और मुसी, ये सब बडी मौज मे हैं । यूनियन-फूनियन के पास न फटकेगे ये । पर तुम्हारी तबीयत मे है तो यह भी करके देख लो ।''

पहले यूनियन-ऊनियन फिर यूनियन-शूनियन और अब यूनियन-फूनियन ।

मिस्त्री अपना सदेश बहुत साफ भाषा मे मुझ तक पहुँचा रहे थे । भुने हुए लाई-चने के पीछे मुँह मे नमक-मिर्च झोककर वे मुँह के व्यास की वृहत्तम दूरियाँ दिखाते रहे, मसूढो और दाँतो की अधिकतम गलाज़त थी । मैंने पूछना चाहा, 'ये लोग, जो नोट की गड्डियाँ लेकर देस वापस जाते हैं, इतनी जल्दी लौट क्यो आते हैं ?' पर मिस्त्री ने इसका मौका नही दिया । पानी पीकर और इधर-उधर देखते हुए कि शत्रुपक्ष का कोई जासूस वहाँ मौजूद नहीं है, बडे गोपनीय अदाज मे बोले, "इनकी औरतो को भी सीधा न समझो ।" फिर फुसफुसाकर, "एक-से-एक क्रप्ट हैं ।"

"क्या हैं ?"

"क्रप्ट । और क्या ?" कहकर उन्होने फिर चारो ओर देखकर इत्मीनान किया कि यह बात मेरे, उनके और दीवारो के भीतर ही रहेगी । सहज ढग से कहना शुरू किया, "यही अपनी जसोदा को लो । नेता को मरे कितने दिन हुए ? पाँच महीने ही न ? अभी से कसमसा रही है । भली औरत है, मैं उसको कुछ नही कहता । पर देस-देस का चलन है । अभी से वह घर-बैठा करने की सोचने लगी है । वही क्यो, सभी उसे समझा रहे है । उसका एक कोई देवर है । इलाहाबाद जिले मे एक जगह है न शकरगढ, वहाँ पत्थर-वत्थर तोडता है । वही जाने की तैयारी कर रही है ।"

"तो वह इसी बात पर करप्ट हो गई ?"

"मुसी जी, तुम लाख पढ़े-लिखे होओ पर यह तुम्हारी समझ मे नही आएगा । बुरा न मानो, अभी तुम नए बछेडे हो ।" कहकर मिस्त्री स्वभाव के विपरीत ठठाकर हँसे । मैंने पूछा, "तो जसोदा शकरगढ जा रही है ?"

"ठीक ही कर रही है । देवर के साथ घर-बैठा कर ले तो उसका पाप कटे । यहाँ रहेगी तो निठल्ले उसे चैन से बैठने थोडे ही देगे । कातिक के कूकुरो की तरह उसे हर जगह पिछुआए रहते हैं ।"

जसोदा की दिक्कतो के इस पहलू का मुझे पता न था, मिस्त्री मुझे चतुराई से देख रहे थे । मैंने उन्हे कुछ ज्यादा चतुराई से देखा । वे मेरे बारे मे जसोदा को लेकर सिर्फ अटकल लगा रहे होगे, मैं उनके बारे मे जानता था, खुद जसोदा के मुँह से सुन चुका था । कातिक के कूकुरो मे किसी जमाने मे वे भी दुम हिलाते हुए घूम चुके हैं । मिस्त्री ने अँगडाई लेकर बदन तोडा, इस अभिनय के सहारे इस प्रसग पर खाक डाली, पाँव सिकोडे, करवट के बल, कुहनी के तकिए के सहारे बैंच पर लेट गए । बोले, "थोडी देर आँख मूँद लूँ ।"

मैं पुराने विषय से ही चिपका रहा, बोला "तो तुम्हारी राय मे वह हर हालत मे करप्ट है । शकरगढ जाकर देवर के घर रहे तब भी और यहाँ कातिक की कुतिया जैसी घूमे, तब भी ।"

मिस्त्री ने आँखे मूँद ली, विकारहीन चेहरे से बोले, "मुसी तुम तो बात पकडते हो । मैं जसोदा को थोडे ही कुछ कह रहा था । मैंने तो इन बिलासपुरियो की बात उठाई थी ।

इनका चाल-चलन, रहन-सहन सब अलग हैं। अब जैसे वकील साहब हैं, इंजिनियर साहब हैं, तुम हो। बडे खानदानवालो की बात ही और है।

" अब आप यूनियन चलाएँगे न। तो सुनो मुसी जी," कहकर उन्होने टप-से आँखे खोल दी, मेरे लिए कभी 'आप' कभी 'तुम' का साथ-साथ प्रयोग करके—जैसे भक्त लोग भक्ति के आवेश मे 'तुम' और 'तू' का परमात्मा के लिए साथ-साथ प्रयोग करते हैं—उन्होने घरेलू ढग से समझाया, "नौजवान आदमी हो, इन जनाना लोगो से बहुत बच के रहना। इनके बीच काम करते हुए इसान को हमेशा लॅगोट का पक्का होना चाहिए।"

"तुम्हारी तरह!" मेरी बात उनके कानो मे जरूर पडी होगी पर वे आँखे बद कर चुके थे और उनका चेहरा यह बता रहा था कि उनके कान पहले से ही बद हैं।

मेबरी के लिए पाँच रुपिया शुरुआती चदा देनेवालो मे मिस्त्री पहले न थे। उससे पहले कल पच्चीस मजदूर हमारे मेबर बन चुके थे। उनका चदा हमारे ठेकेदार साहब यानी डिप्टी यस पी साहब उर्फ डिप्टी साहब ने दिया था।

सुनने मे यह वैसा ही लगता है जैसे स्व पंडित जवाहरलाल नेहरू ने स्व डॉक्टर राममनोहर लोहिया-जैसे विरोधियो को अपने खिलाफ चुनाव अभियान के लिए कोई रकम भेजी हो। पर ऐसा नही था। ठेकेदार साहब आत्महता-योग के चक्कर मे नही थे। कुल इतनी-सी बात है, जिसे पहले भी साफ किया जा चुका है कि वे ठेकेदार नही थे, ठेकेदारी का मुखौटा भर थे। वे सही आदमी थे। दो-तीन दिन पहले एक ऐसी घटना हो गई थी जो रोजमर्रा की घटना होते हुए भी उन्हे तिलमिला देने के लिए और उनकी शराफत को मथकर मुलायम मक्खन सतह पर उभार देने के लिए काफी थी। उसी के असर मे डिप्टी साहब ने हमारी यूनियन को मदद करने का फैसला किया।

घटना मेरी देखरेखवाले मकानो की नही, पडोस के सैक्टर की थी। वही झाड-झखाड और वीराने मे चलनेवाले भट्ठे पर 'बिन नारि दुखारे' की चिरतन समस्या। भट्ठे की मिल्कियत मे एक हिस्सा उन जूनियर इंजिनियर का था जो उक्त सैक्टर मे डिप्टी यस पी साहब के नाम से ठेकेदारी करते थे और बतौर जूनियर इंजिनियर उसी काम के सरकारी निरीक्षक भी थे। मैं उन्हे जानता नही हूँ पर उद्यम, महत्वाकाक्षा, परिश्रम की क्षमता, अर्थार्जन, सफलता के प्रति एकनिष्ठता आदि ऊँचे इसानी आदर्शो के मामले मे वे यकीनन् हमारे इंजिनियर साहब के गुटका सस्करण होगे, और इन आदर्शों को व्यावहारिक, मूर्त रूप देने की पद्धति उन्होने साथ-साथ एक ही प्रशिक्षण केद्र मे सीखी होगी। बहरहाल, जूनियर इंजिनियर साहब को भट्ठे पर किसी पेड की छाँह मे कविता की पुस्तक, मक्खनदार रोटी और मदिरा की सुराही के होने पर भी जब तस्वीर मुकम्मल करने के लिए किसी कामिनी की कमी खटकने लगी तो उनकी निगाह अपने सैक्टर मे काम करनेवाली एक मजदूर युवती पर पडी और पडते

ही गडी-की-गडी रह गई। पर ज्यादा देर नही, क्योकि उपलब्ध सूचनाओ के अनुसार वे किंतु-परतु वाली शैली मे विश्वास नही करते और दिल्ली-स्थित आज की नई राजनीतिक पीढी की तरह तेज रफ्तार से साहसपूर्ण और निर्भीक फैसले करने के कायल हैं। तभी उन्होने मजदूरो के एक छोटे से गुट को जिसमे लगभग सभी आयु, वर्ग और लिंग के व्यक्ति थे, यह सैक्टर छोडकर भट्ठे पर जाने का हुक्म दिया और यह पक्के तौर से देख लिया कि इस गुट मे वह युवती गिन ली गई है। यह भी देख लिया कि उसके शौहर को नही गिना गया है।

मजदूरो ने भट्ठे पर जाने से इनकार कर दिया। सरदार को उनका हृदय-परिवर्तन करने के लिए बुलाया गया, सरदार यानी वह नर-व्यापारी जो मजदूरो को उनके गाँव से कुछ पेशगी कर्ज देकर और हमेशा के लिए उनकी चुटिया अपने अँगूठे से बाँधकर यहाँ ले आया है। पर कुछ देर की बहस के बाद उसका खुद हृदय-परिवर्तन हो गया और वह जूनियर इंजिनियर से यह कहकर चलता बना कि ये सब जाहिल गंवार भुच्च हैं और इन्हे यही घिसटने दीजिए। तब जूनियर इजिनियर के स्थानीय गिरोहबदो ने उन्हे समझाना शुरू किया।

'सालो को रोटी लग गई है,' 'दिमाग खराब हो गया है' आदि मुहावरो के बीच एक स्थानीय बोली की कहावत भी सुनी गई 'गगरी दाना, सूद उताना।' यानी देखो, परचून की दुकान पीछे छोडते हुए खुद ससद-सदस्य होकर, दूधमुँही बहू को अपने प्रदेश की उपमत्री बनवाकर, एक लडकी को आई ए यस और एक लडके को आई एफ यस मे घुसेडकर राजधानी के वसत विहार मे कोठियाँ खडी करके, हरियाणा मे यूकेलिप्टस के जगल उगा करके और स्विट्जरलैंड के बैंको मे अकलक्षित मोटे खाते खोल करके भी जहाँ चच्चू जी के चेहरे पर आज भी इतनी सौम्यता और बीते गाँधी युग की विनम्रता है वही इन शूद्रो के घडे मे अनाज के चद दाने आते ही उनकी हेकडी अग-प्रत्यग से फूटने लगी है। फिर दूसरी कहावत 'लात के देवता बात से नही मानते।'

इस मामले मे जूनियर इंजिनियर साहब का फैसला साहसपूर्ण और निर्भीक तो रहा पर उतनी तेज रफ्तारवाला नही, उन्होने भट्ठे पर मजदूरो के तबादले की बात छोड दी, मामले को ढील दे दी। चार दिन बाद उस मनोवाछित युवती के शौहर और उसके दो साथियो को सरकारी सीमेट की चोरी करते हुए पकड लिया गया। तब इन लात के देवताओ का थप्पडो और हाकी की स्टिको से सत्कार किया गया जिसमे शौहर की सिर्फ कलाई टूटी, हफ्तो के लिए उसे काम से सपरिश्रम विश्राम दे दिया गया। यही क्या कम है कि मामला पुलिस को नही दिया गया। जो भी हो बात उन्होने फिर भी नही मानी। टूटी हुई कलाई और रुआँसी बीवी को लिए हुए उसने डिप्टी यस पी साहब के पास आकर फरियाद की। उसके बाद उनके साथ दस-पद्रह मजदूर उस सैक्टर से हटकर हमारे मकानो पर काम करने के लिए आ गए। यह तीन दिन पहले की घटना है और

सच पूछिए तो इसमे घटना भी क्या है, यह सिर्फ एक परिदृश्य है।

मिस्त्री आजकल गायत्री टावर पर काम कर रहे थे। गायत्री टावर का व्याकरण भी यही खोल दिया जाए। शिलान्यास के समय इस इमारत का नाम सावित्री टावर था। परमात्मा जी-सावित्री-इजिनियर साहब का सुनहरा त्रिकोण जब कुछ मलीन पड गया और परमात्मा जी कुछ कानूनी और उससे ज्यादा जज्वाती वजहो से इस नामकरण का विरोध करने लगे तो टावर की सावित्री तुरत गायत्री बन गई। हो सकता है कि दोनो शब्दो मे 'त्री' की मौजूदगी इंजिनियर साहब को बराबर 'स्त्री' जैसे शब्द की ध्वनि से जोडे रखती हो, पर नाम बदलना ही हो तो गायत्री को बजाहिर इसलिए तरजीह दी गई कि साँची, भरहुत, सारनाथ आदि के स्तूपो के बराबर रुपया जोड चुकने के बाद, सुना गया, इजिनियर साहब मे खुद इधर एक बदलाव आया था। इतनी हैसियत बनाकर हर भले आदमी का रुझान धर्म और सस्कृति के प्रति होना चाहिए और उनके साथ यही हो रहा था। गायत्री एक मत्र था और है, वह एक धुरी थी और है जिस पर विश्व हिंदू परिषद्-जैसे पवित्र सगठन दिन को और रात को, शाम को और प्रभात को बराबर चकरघिन्नी खा रहे हैं। सुनते हैं कि इजिनियर साहब का धर्म और सस्कृति की धमक से धौंसाया मन इन दिनो इसी परिषद् की ओर भाग रहा था और 'आखिर इसान को अपने राष्ट्र के लिए भी कुछ करना चाहिए,' का समाधान कुछ भगवा वस्त्रधारी चितको के आशीर्वादो और उनकी मार्फत परिषद् को पहुँचाए जानेवाले चदे मे खोज रहा था। हम सब जानते थे कि इंजिनियर साहब के सारे पितु-मातु-सहायक-स्वामि-सखा—जैसा कि वाजिब है—सत्तारूढ इका दल मे मौजूद हैं। पर इन दो नावो की सवारी मे इंजिनियर साहब का कोई पैर कही डगमगाया हो इसका कही से भी आभास नही मिलता था। लगता था तेज धारा मे बहनेवाली ये दो नावे नही हैं, चिकनी सडक पर चलती हुई इजिनियर साहब की मोटर साइकिल के ये दो पहिए हैं। तभी, सावित्री नही तो न सही, उसकी जगह गायत्री। शहर की जिस नई बस्ती मे मैं भटक रहा हूँ उसके एक छोर पर परमात्मा जी का सावित्री-सदन, दूसरे छोर पर इंजिनियर साहब का—क्षमा कीजिएगा, उनके ससुर पन्नालाल का गायत्री टावर। नाम जो भी हो, दोनो को भावात्मक स्तर पर पहले जोडने और फिर तोडनेवाली सावित्री। दोनो से जुडे हुए और दोनो मे ईट-पर-ईट जोडनेवाले दो खानदानी रईसो के एकमात्र भक्त मिस्त्री।

तो, मेबरी का पाँच रुपिया शुरुआती चदा देनेवाले मिस्त्री हमारे सघ के छब्बीसवे मेबर थे। कुछ देर समझाने-बुझाने के बाद वे सिर्फ मुझ पर एहसान करने के लिए तैयार हो गए थे कि बीस-पच्चीस मजदूरो को वे गायत्री टावर से भी मेबर बनवा देगे। समझाने-बुझाने के लिए उन्हे मार्क्स-इजील-लेनिन के सिद्धात या विश्वश्रम सगठन का साहित्य पढाने की जरूरत नही थी। उनके मन मे आपस के आदमी के लिए यानी खुद मेरे लिए, कितनी वफादारी है और उसके लिए वे किस तरह आग मे छलाँग लगा सकते हैं, उनके मन मे बस इसी की चेतना जगानी थी।

मिस्त्री ने मदद करने का वायदा किया। उनकी सिर्फ़ दो शर्ते थी। एक तो यह कि इंजिनियर साहव को पता न चले कि मेवरी की भर्ती मे उनका हाथ है, और दूसरी यह कि जहाँ तक हो सके इंजिनियर साहब को यूनियन का पता न चलने पाए।

"इंजिनियर साहव खानदानी आदमी हैं। (इस वार उन्होने 'शराफत का पुतला' नही जोडा।) उन्हे किसी झमेले मे नही डालना है। पर तुम्हारी वात भी कैसे टाली जाए मुसी ? काम भी तुमने ऊँचे दर्जे का किया है। भला वताओ, ये डॉगर-गोरू जैसे मजूर, इनके लिए तुमने डॉक्टर तक को यहाँ लाकर बैठा दिया! कोई वात नही, अगर वात खुली भी तो मैं यही कहूँगा कि हमने मजूरो से अस्पताल मे दवा-दारू के लिए चंदा दिलाया था। उसके आगे मैं कुछ नही जानता।"

सरकारी अस्पताल के हमारे डॉक्टर साहब हर बुधवार और इतवार को दो घटे के लिए यहाँ गरीवो की मुफ्त चिकित्सा के लिए बैठने को राजी हो गए थे। मिस्त्री इसी का इशारा कर रहे थे। उन्हे ज्यादा गभीर देखकर मैंने कहा, "चदा सिर्फ दवा के लिए है, दारू के लिए नही।"

वे हँसे नही, सिर्फ धीरे से सिर हिलाया मानो आगाह कर रहे हो कि यह कहने की वात नही है, खुद मेरे समझने की वात है।

दारोगा जी हम दोनो से वडी सभ्यता और सस्कृति के साथ मिले। परमात्मा जी ने उन्हे फोन कर दिया था। बता दिया था कि युवा अधिवक्ता सघ के एक महत्वपूर्ण सदस्य श्री प्रेमवल्लभ ऐडवोकेट और मजदूर नेता श्री सतोषकुमार एक भयकर अपराध के मामले मे आपसे मिलना चाहते हैं। रात के नौ बजनेवाले थे। दारोगा जी ने उसी वक्त आने के लिए कहा। परमात्मा जी ने कहा कि रात हो गई है। आपको इस समय तकलीफ होगी। ये लोग कल सुबह आपसे मिल लेगे। उन्होने जवाब दिया कि पुलिसवालो के लिए क्या दिन और क्या रात! खुद उन्हे तकलीफ न हो तो इसी वक्त आ जाएँ। आप फिक्र न करे मैं सब देख लूँगा।

थाने के सिपाही ने कहा कि दारोगा जी क्वार्टर मे हैं। वही आपका इतजार कर रहे हैं।

वे प्रेम से मिले। ड्राइगरूम मे बैठाया। साधुओ का-सा कमरा। एक लकडी का तख्त। उस पर कुछ भी विछा न था। पर सतह के चिकनेपन से सिद्ध था कि इस पर जमकर बैठा जाता है। दीवार से सटी हुई एक लकडी की वैंच।

वीच मे एक विना मेजपोश की मेज। उसके आसपास तीन-चार दफ्तरी कुर्सियाँ, उन्होने हमसे कुर्सी पर बैठने का आग्रह किया। क्या लेगे ? चाय या कॉफी ?

हम लोगो ने सधन्यवाद इनकार किया, प्रेमवल्लभ ने कुछ ज्यादा ही जोर से। उन्होने कहा, "तो रम पीजिए। अभी बाजार से मँगाए देता हूँ।"

सरे-शाम पी गई रम की भभक अभी तक प्रेमबल्लभ के मुँह मे वसी थी। उन्हे रम

का प्रेमी समझने के लिए दारोगा जी को शर्लाक होम्स बनने की जरूरत न थी, मैंने मेज के नीचे प्रेमबल्लभ के टखने मे ठोकर दी । यकीन तो नही था कि वह इतना आत्मसंयमी निकलेगा, पर हुआ ऐसा ही । उसने कहा, ''थैंक्यू, मैं शराब नही पीता ।''

नेता की गुमशुदगी से लेकर लाशघर मे पाए जाने तक की कथा मैंने उन्हे विस्तार से बताई । बीच मे दो-एक छोटे-छोटे सवालो को छोडकर वे बडी खामोशी से पूरी बात सुनते रहे । पुलिस के पचनामे के बारे मे उन्होने कुछ ज्यादा सवाल पूछे, बातचीत के दौरान चाय आ गई थी, पर वे मेरी बात इतने ध्यान से सुन रहे थे कि ट्रे वैसे ही धरी रह गई । मैं अपनी बात लगभग खत्म कर रहा था कि अचानक बिजली गायब हो गई । उनके पुकारने के साथ ही एक सिपाही जलती हुई मोमबत्ती लेकर कमरे मे आया । उसे चाय की ट्रे ले जाने और दूसरी गर्म चाय लाने की हिदायत देकर दारोगा जी बोले, ''यह वाकया मेरे यहाँ आने के पहले का है । मैंने इसके बारे मे पहले भी सुना था ।''

मोमबत्ती की रोशनी मे उनकी परछाई दीवार पर बडी गभीरता से कुछ लम्हो तक नीचे-ऊपर हिलती रही । दारोगा जी बोले, ''सूरत यह है कि जो सच्चाई जानता है और उसे खोल सकता है, वह गूँगा है ।''

पहले लगा कि वे आज के भारत की सच्चाई बयान कर रहे हैं । पर बाद मे समझा उनका इशारा सुरेस की तरफ है ।

चाय आ गई थी । एक प्याले मे सलीके से डालकर उसे प्रेमबल्लभ की ओर बढाते हुए उन्होने उसी से कहा, ''आप तो कानून के माहिर हैं । आप किस आधार पर कह सकते हैं कि यह हत्या का मामला है । बहस के लिए मान लीजिए कि मैं कहूँ यह दुर्घटना थी, कोई हत्या-वत्या नही हुई, तो मुझे गलत साबित करने के लिए आप क्या कहेगे ।''

''कि पुलिस निकम्मी है ।''

दारोगा जी इस वक्तव्य पर भी थोडी देर खामोशी मे गौर करते रहे, दीवार की परछाई उसी तरह ऊपर-नीचे हिलती रही । बोले, ''आपकी बात सही है, पर यह मेरी बात का काट नही है ।'' उन्होने चाय की प्याली मेरी ओर बढाई । बाहर बरामदे मे घुप अँधेरा था । मैं उधर ही देख रहा था, बढी हुई प्याली को नही देख पाया । वे सौम्यता से बोले, ''चाय लीजिए ।'' चीखने और मेज उलट देने की बेतुकी इच्छा पर किसी तरह काबू पाकर मैंने चुपचाप प्याली पकड ली ।

प्रेमबल्लभ ने कहा, ''देखिए साहब, मैं भी समझता हूँ कि हमारे पास कोई तगडा सुबूत नही है । पर मैं पता लगा चुका हूँ । इन लोगो का गिरोह इमारती सामान की बराबर चोरी करता है । नेता को इस गिरोह का पता था, पार्क मे जब वे लोहे की रेलिग उखाड रहे थे तब नेता उनसे टकराया । सुरेस ने अपनी आँख से देखा है । पार्क के पासवाले दुकानदार ने भी देखा है । भले ही वह भी गूँगा बन जाए, पर जोर देने पर वह बहुत कुछ बता सकता है । वे नेता का अपहरण करके उसे बेहोश हालत मे अपनी मैटाडोर वान पर ले जाते हैं । एक वीरान जगह पर अधबनी इमारत मे उसे घायल

हालत मे फेक आते हैं। उसके बाद जो हुआ उसके लिए जितना चाहिए उतना सुबूत मौजूद है। इस गिरोह का पूरा पता मैं आपको दे चुका हूँ। अब ये आपका काम है कि इन बदमाशो को कर्रा करके ।"

तभी बिजली आ गई, न जाने क्यो उसी के साथ प्रेमवल्लभ की आवाज की तल्खी एक झटके से कम हो गई। उसने कहा, "उन्हे दबाकर आप उन्ही से सारी सच्चाई मालूम कर सकते हैं।"

दारोगा जी खडे हो गए। चलने का इशारा करते हुए बोले, "आइए थाने पर चलते है। वहाँ से अभी आपके सामने ही फोन करता हूँ।"

क्वार्टर थाने के पिछवाडे था। रास्ते मे चलते हुए दारोगा जी कहने लगे, "देखिए वकील साहब, मेरे पिता जी जिला जज रहे हैं। बडे भाई आई. ए एस मे हैं। पुलिस सर्विस मे मैं अपने शौक से आया हूँ। बात सुनने मे आपको भले ही अजीब लगे, पर मैं वाकई लोगो की सर्विस करना चाहता हूँ। किसी भी इसान पर अपने इलाक़े मे जुल्म होना बरदाश्त नही कर सकता। पर अफसोस है कि मेरे खानदान की एक अपनी कल्चर है।

"जज का लडका होने के नाते मेरे दिमाग मे भी कुछ मुंसिफमिजाजी घुस गई है। जब तक मुझे इत्मीनान न हो जाए कि किसी ने कानून तोडा है, मैं अपना हाथ नही उठाता। पर जब मेरा हाथ उठता है तो बदमाश आदमी उसकी गिरफ्त से छूट नही सकता। किसी से भी पूछ लीजिए, सब ,गह मेरी यही नेकनामी या बदनामी है।"

प्रेमवल्लभ ने कहा, "तब आप हमारा काम कैसे कर पाएँगे हुजूर ? इस मामले मे अगर आप उस मुटल्ले पर पहले हाथ उठा दे तो उसके जुर्म के बारे मे आपको इत्मीनान होते देर न लगेगी।"

"ये ट्रक कौन पकड लाया है ?" दारोगा जी ने थाने पर पहरे के सिपाही से पूछा।

दो लदे-फँदे ट्रक थाने के फाटक पर खडे थे। दोनो मे शीशम के मोटे-मोटे कु 'गॅजे हुए थे। जवाब दिया एक ड्राइवर ने, जिसने सामने आकर पहले दारोगा जी को सलाम किया। कहा, "सलीमपुर से आए हैं सरकार।"

"तो यहाँ आने को किसने कहा था ?" उन्होने पहरे के सिपाही की ओर घूमकर कहा, "आप पहरे मे हेड साहब से कहकर किसी दूसरे को खडा करा दीजिए। खुद इन ट्रको के साथ मकान पर चले जाइए।" फिर ड्राइवर से 'जाने से पहले मुझसे मिलते जाइएगा।' कहकर दोनो ट्रको पर एक पैनी नजर डालते हुए वे थाने के अदर अपने दफ्तर मे आकर बैठ गए। एक सिपाही से बोले, "विकास प्राधिकरण के एक्जीक्यूटिव इंजिनियर खन्ना साहब से फोन मिलाइए।"

खानदान की कल्चर निश्चय ही उम्दा थी। पुलिस इम्पेक्टर के मुँह मे सिपाही के लिए भी 'आप' और 'जाइए', 'मिलाइए' की जबान पहली बार सुनी थी।

प्रेमबल्लभ की निगाह मे और चेहरे पर हरामीपन उतर आया था। मैंने देखा, और

शायद दारोगा जी ने भी। वे मुस्कराए, कहने लगे, "हमारे ममेरे भाई हैं। कुँवर कृष्णनदनसिह। बहुत बडे जमीदार रहे हैं। मैंने उन्हे एक सुझाव देकर अपने लिए मुसीबत पाल ली। गाँव मे उनकी बहुत बडी कोठी है। मैंने समझाया कि आगे चलकर आप लोगो को शहर ही मे रहना पडेगा। अभी मौका है, एक बॅगला यहाँ बनवा लीजिए। उन्होने दूसरे ही दिन जमीन खरीद ली। यहाँ बँगला बन रहा है। देहात मे उनके शीशाम के सैकडो बीघे जगल हैं। यहाँ अपने बँगले के लिए लकडी भेजी है। मेरी मुसीबत यह है कि काम की देखरेख मेरे ऊपर छोड दी है। डबुल ड्यूटी पड रही है।" मुँह बिचकाकर उन्होने आत्मदया दिखाई।

"तो यह कहिए कि बॅगला बन रहा है।" प्रेमबल्लभ के इस मानहानि-पूर्ण वाक्य का उन्हे जवाब नही देना पडा, सिपाही ने कहा, "हुजूर फोन।"

फोन मे दारोगा जी बोले, 'नमस्कार जी।' फिर पुराने परिचय के कुछ घरेलू लटके। फिर, "कष्ट इसलिए दिया जी कि एक मामले की जॉच कर रहा हूँ। उसमे यह बात उभरकर आ रही है कि आपके वर्कसाइटो से इमारती माल की काफी चोरी हो रही है। यह बात भी कही गई है कि पार्कों मे लगी लोहे की रेलिंग तक चोर उखाड ले गए हैं। कई पार्कों मे ऐसा हुआ है। मगर मैं देख रहा हूँ कि हमारे यहाँ इस सिलसिले मे आपके मोहकमे की ओर से एक भी रिपोर्ट दर्ज नही कराई गई।"

वे उधर का जवाब सुनते रहे और प्रेमबल्लभ की ओर देखते रहे। एक बार इशारे से 'अजब बात है।' की मुद्रा भी बनाई। फिर वे फोन मे हँसे, "कोई बात नही जी, कोई बात नही।" अत मे 'नमस्कार जी' कहकर फोन उन्होने सिपाही को दे दिया, कुर्सी पर सीधे बैठकर गभीर हो गए।

बोले, "यह तो फर्माते हैं कि इनके यहाँ इमारती माल की इधर साल भर से कोई चोरी नही हुई, किसी पार्क को रेलिग भी गायब नही हुई, कहते हैं कि लोहे की रेलिग लगाने का चलन ही खत्म कर दिया गया है।"

प्रेमबल्लभ ने कह तो दिया कि वह साला खुद चोर है, पर कहकर सकुचा गया। बोला, "आई ऐम सॉरी।" दारोगा जी बोले, "सॉरी कहने की क्या बात है? ठीक तो कह रहे हैं।" दारोगा जी ने मेरी ओर एक सतुष्ट नजर फेकी, प्रेमबल्लभ से कहना शुरू किया, "जो भी हो सूरत यह है कि विकास प्राधिकरण के अनुसार उनके इमारती माल और पार्क की रेलिंग्स की कोई चोरी नही हुई। उन्होने हमारे यहाँ लगभग साल भर से सामान गायब होने की कोई रिपोर्ट नही लिखाई है। जिनका माल है वे खुद उसकी चोरी से इनकार करते हैं।"

प्रेमबल्लभ के जहन मे इसके धँसने का उन्होने एक क्षण इतजार किया। कहने लगे, "हत्या के लिए उसका उद्देश्य, उसका मोटिव साबित करना पडता है। आपको क्या बताना, बहैसियत ऐडवोकेट आप मुझसे ज्यादा जानते हैं। यहाँ चोरी ही नही हुई। तब यह कैसे कहा जाए कि आपका वह मजदूर चोरी का भडाफोड करने के चक्कर मे मारा गया।"

हाथ के इशारे से प्रेमबल्लभ को धैर्य की नसीहत देते हुए वे कहते रहे, ''अब हत्या की बात ले। कोई चश्मदीद गवाह नही, कोई कमजोर किस्म का भी परिस्थितिगत सुबूत नही। ज्यादा से ज्यादा यह है कि वह चौकीदार इन लोगो की शिनाख्त करके कह सकता है कि वही लोग हैं जो उस दिन मकानो के नए सैक्टर मे मैटाडोर पर पहुँचे थे। अगर अकेले गवाह की यह बात मान भी ली जाए तो उससे क्या हुआ ? एक अधबनी इमारत मे उस घायल मजदूर की मौजदूगी के साथ आप इन लोगो को कैसे जोड देगे ?

''मैंने इस मामले के कागजात अभी देखे नही हैं। डॉक्टर की लिखी हुई इंजरी रिपोर्ट नही पढी है। आप चाहते हैं तो कल मैं इस सबका अध्ययन कर लूँगा। पर एक बात उन्हे पढे बिना भी कह सकता हूँ। मजदूर को जो चोटे लगी थी उनमे कोई भी ऐसी न होगी जो दुर्घटना की थ्योरी के खिलाफ पडती हो। अगर एक भी चोट ऐसी होती जो मारपीट से ही आ सकती है तो पचनामा लिखाकर मामला खत्म नही किया जा सकता था। क्यो साहब, आप बताइए।'' उन्होने मुझसे पूछा।

साहब क्या बताते ?

''चोरी नही हुई और यकीन मानिए हत्या भी नही हुई। सिर्फ एक गरीब की दर्दनाक मौत हुई है।''

''शुक्रिया दारोगा जी, यही क्या कम है कि आप कम-से-कम मौत को फर्जी नही मान रहे हैं।'' प्रेमबल्लभ ने खडे होते हुए कहा और मुझे चलने का इशारा किया।

दारोगा जी बोले, ''बैठ जाइए वकील साहब, नाराज़ होकर मत जाइए। आप सिर्फ उखडकर बात कर रहे हैं। मैंने शुरू मे ही आपसे निवेदन किया था कि हत्या के जो भी प्रमाण आपकी निगाह मे हो आप उन्हे बता दे। आपने कुछ नही बताया।

''मैंने जब हत्या की थोडी असंगतियाँ बताईं तो आपका सिर्फ यह जवाब था कि पुलिस निकम्मी है। आप अब भी मुझे कुछ नही बता रहे हैं, सिर्फ़ नाराजगी दिखा रहे हैं। यह कौन-सा न्याय है ?'' न्यायाधीश की सतान ने मुलायमियत से अर्ज किया।

''मैंने पहले ही कहा था कि आप हमारी बात पर विश्वास करके इन गिरोहबदो को पकडकर जरा ऊँचा-नीचा दिखाइए। किसी-न-किसी के मुँह से सच्चाई खुल जाएगी।''

''थर्ड डिग्री ? अप पुलिस को थर्ड डिग्री इस्तेमाल करने की सलाह दे रहे हैं ?''

''कभी इस्तेमाल किया नही है आपने ?''

''किया क्यो नही है ? रोज ही करना होता है।''

उन्होने समझाना शुरू किया, ''पर थर्ड डिग्री का इस्तेमाल वहाँ करते हैं जहाँ कोई नतीजा निकल सकता हो। इस मामले मे ऐसा कुछ नही है।'' ओठ सिकोडकर उन्होने अफसोस जाहिर किया।

''देखिए, आप यह कई बार कह चुके हैं कि उन्हे शुबहे पर पकडकर ऊँचा-नीचा दिखाया जाए तो सच्चाई खुल जाएगी। पर बताइए, उसी से क्या होगा ? मान लीजिए

कि उन्होने हमारे हाथ मे पडते ही स्वीकार कर लिया कि उन्होने उस मजदूर को अधमरा करके एक इमारत मे फेक दिया था। उसी से हमे कौन-सा सुबूत मिल जाएगा ? हम इस इकब्गलिया बयान का कोई फायदा नही उठा सकते। एविडेस ऐक्ट की दफा 24 आपने पढी ही है। पुलिस के सामने दिए हुए इकबालिया बयान को कैसे माना जाएगा ?''

''इन्हे पकडकर अगर घटो पूछताछ की भी जाए तो आप उनसे कौन-सा सुबूत पाने की उम्मीद करते हैं ? कुछ सोचा तो होगा ही आपने ?''

''हमारी उम्मीद है कि सचमुच पुलिसवाले स्टाइल मे आप उनमे सच उगलवा ले तो आप उनसे मजिस्ट्रेट के सामने अपराध के स्वीकार का बयान भी लिखवा लेगे।''

दारोगा जी के चेहरे पर हैरत की अलामत इतनी असली थी कि मेरी निगाह अपने आप प्रेमबल्लभ की ओर मुड गई। दारोगा जी ने कहा, ''मेरे पास एक शरीफ शिक्षित नागरिक आता है। कहता है कि कुछ महीने पहले एक हत्या हुई है। हत्या होने का कोई सुबूत नही है। पर वह कहता है कि इस हत्या के अपराधियो मे फलॉं लोग हैं। वह चाहता है कि मैं उन लोगो को गिरफ्तार कर लूँ, उनसे हत्या का जुर्म कुबूल करा लूँ और इस हद तक थर्ड डिग्री इस्तेमाल करूँ कि वे लोग मजिस्ट्रेट के सामने भी अपना इकबालिया बयान लिखा आएँ ? आप सचमुच मुझसे ऐसा कराना चाहते हैं ?

''गलत न समझिएगा वकील साहब, तब तो मैं आपसे भी कोई जुर्म कुबूल करा सकता हूँ और इन साहब से भी'' मेरी ओर देखते हुए उन्होने हल्के-फुल्के ढग से कहा, ''आप अनुमति दे तो जिसे आप हत्या कहते हैं, वह अपराध भी मैं आपसे कुबूल करवा लूँ।

''सॉरी, मुझे ऐसा मजाक न करना चाहिए। पर इससे आप यह जरूर सोच सकते हैं कि आपका सुझाव कितना अनुचित है।''

प्रेमबल्लभ उठ खडा हुआ। बोला, ''आपका कहना सही हो सकता है, फिर भी मैं एक काम करूँगा। नेता की हत्या के बारे मे मैं कल आपके थाने पर लिखित रिपोर्ट भेजूँगा और इन लोगो के नाम बतौर मुल्जिम दर्ज कराऊँगा।''

दारोगा जी ने खडे होकर हाथ बढाते हुए कहा, ''आप परमात्मा जी के आदमी हैं। मेरा ख्याल है कि उनसे सलाह लिए बिना ऐसा न कीजिएगा। रिपोर्ट गलत निकली तो वे आप पर दफा 182 का मुकदमा भी चला सकते हैं। अगर वे सचमुच खतरनाक हैं तो इतना तो वे करेगे ही।''

मेरे मन मे कितनी बहुखडी इमारते ध्वस्त हो रही हैं, इससे बिलकुल अनजान बने हुए दारोगा जी ने तपाक से एक-एक करके हम दोनो से हाथ मिलाया, कहा, ''मुझे सचमुच बडा बुरा लग रहा है। इस मामले मे मैं आप लोगो की कोई सेवा नही कर पाया। पर जब भी आप समझे कि मामले मे कोई दमदार बात निकल रही है, मुझे तुरत फोन कर दे।''

वाहर निकलते ही मैंने दारोगा को गालियाँ देना शुरू किया। प्रेमवल्लभ ने कहा, "क्यो बकवास करते हो ? उसने जो कुछ कहा है उसमे गलत क्या है।"

मैंने उसे एक घूँसा मारा, मुँह से निकला 'वेहूदे।' उसने सिर्फ मेरा हाथ मजबूती से पकड लिया, जवावी घूँसा नही मारा।

3

शराबखाने का फर्श इतना मैला था कि उसका चीकट जूते का तल्ला तोडकर तलुओ तक को छूता जान पडता था। मैल की अनगिनत पर्तो पर सिगरेट की राख और छितरे पडे टुकडो ने बेलबूटे बना दिए थे। उन्हे लाँघते और जहाँ लाँघना मुमकिन न था, वहाँ उन्हे रौंदते हुए हम लोग दीवार के पास एक कोने की मेज पर जाकर बैठ गए। हालाँकि सर्दी थी, शराबखाने के दोनो छोकरो ने—जिन्हे लोग वेटर के नाम से याद कर रहे थे—अभी गर्म वर्दी नही निकाली थी। वे अडरवियर और हाफ पैंट के बीच की किसी चीज से कमर और जाँघो के उत्तरी ध्रुव को ढँके हुए लाल रग की टी-शर्ट पहने फुर्ती-से इधर-उधर घूम रहे थे और जहाँ थे वही से गाहको का आर्डर ऊँची आवाज से काउटर की ओर पहुँचा रहे थे।

काउटर से एक सफेद कोढवाला मोटा आदमी पूरे शराबघर पर हुकूमत कर रहा था। प्रेमबल्लभ कुर्सी पर बाद मे बैठा, एक बडे रम का आर्डर हमारी ओर आते हुए छोकरे को पहले ही दे दिया। मुझसे बडे दोस्ताना अदाज मे कहा, "आज तुम भी ले लो।"

"आज कोई खास बात है क्या?"

"यूनियन के आज सौ मेबर पूरे हुए हैं।"

"उसका शराबखोरी से क्या रिश्ता?"

"तुमसे बात करना फजूल है। गधे हो और गधे रहोगे।"

"सुवर होने से तो अच्छा ही है जो अभी दो पेग के बाद तुम होनेवाले हो।"

उल्लसित होकर वह जोर से हँसा, जैसे यही सुनने के लिए उसने मुझे गधा कहा था। बोला, "अबे दो दिन बाद हमारे बार-असोसिएशन के चुनाव हैं। मैं उसका ज्वाइट सिक्रेटरी बन रहा हूँ। उस खुशी मे भी नही पिएगा?"

"कैसे माना जाए कि तुम चुनाव जीत ही जाओगे?"

"कोई तुक का उम्मीदवार मेरे खिलाफ खडा नही हुआ। एक टिटिहरी जैसा, उधर चौक का रहनेवाला कोई अग्गरवाल है, वही खडा हुआ है। हर साल खडा होता है और दो-चार वोट काटकर चला जाता है। यही इस साल भी होनेवाला है।"

"तब तो इस खुशी मे मैं चाय पी लूँगा।"

छोकरा रम लेकर आ गया था। बोला, "यहाँ चाय नही मिलती साहब।"

"तब नीबू पानी ले आओ।"

उसने नासमझ की तरह मुझे देखा। "एक ग्लास पानी, उसमे एक बडे नीबू का रस डालो, ऊपर से नमक।" मैंने समझाया।

इस आर्डर को चीखकर उसने काउटर की ओर नही उछाला। कुछ सोचता हुआ चला गया।

"उस मुर्गे को पहचानते हो ?"

कमरे के दूसरे कोने मे उम्दा सूट पहने हुए, रोबीले चेहरेवाला एक अफसरनुमा आदमी बैठा था। उसके सामने जो शख्स कुर्सी की धार पर बैठा हुआ, पर अपना सारा बोझ मेज पर हाथ की कुहनियो पर डाल रहा था, उसका व्यक्तित्व सपूर्ण रूप से मरियल और 'इलाज के पहले' वाली तस्वीर जैसा था। पर अफसरनुमा आदमी के रोबीले चेहरे के बावजूद लगता था कि वह अपने साथी के सम्मान मे गला जा रहा है। हम लोग उन्हे असभ्यता के साथ खुली निगाह से घूरने लगे। वह कभी चुटकी बजाकर वेटर को अपने पास बुलाता, कभी ताली बजाकर काउटर के पीछे खडे सफेद चमडेवाले आदमी के आगे इशारो से कोई ध्यानाकर्षण प्रस्ताव रखता। जाहिर था कि वह मरियल आदमी को आज ही इसी वक्त 'मिस्टर उत्तर प्रदेश' के हुलिया मे परिवर्तित करने पर आमादा है। लगभग सभी दूसरी मेजो पर शराब के साथ दी गई तली मूँगफली की प्लेट भर थी। पर इस मेज पर हमारे देखते-देखते पनीर के पकौडे आए, शामी कबाब आए और जब शायद इशारे से प्रस्तुत किए गए ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के फलस्वरूप वेटर दो ग्लासो मे व्हिस्की के छोटे पेग लाया तो अपने लिए एक ग्लास रखकर उसने दूसरा ग्लास वापस कर दिया। दुबारा जब वही वेटर एक ग्लास मे बडा पेग लाया तो रोबीले आदमी का चेहरा ताजी मुस्कान से चिटक गया और वेटर के हाथ से ग्लास लेकर उसने हेडवेटर के अदाज से मरियल आदमी के सामने उसे पेश किया।

"शाबाश।" प्रेमबल्लभ ने जोर से कहा और शाबाशी के उद्गम का किसी को पता न चले, इस ख्याल से गभीरतापूर्वक अपने ग्लास मे झाँकने लगा। धीरे से बोला, "यह शर्मा है। सेल्स टैक्स आफिसर। मुअत्तल हो गया है।"

"तुम कैसे जानते हो ?"

"कचहरी मे देखा था। हाई कोर्ट मे मुअत्तली रुकवाने के लिए पेटिशन दायर करना चाहता था। पर हमारे सीनियर ने राय नही दी।"

"उस चिडीमार को भी जानते हो ?"

"वह साला काग-भगोडा ? नही, उसे नही जानता। सेल्स टैक्स कमिश्नर के दफ्तर का कोई बाबू-शाबू होगा।"

"फाइल गायब कराने का चक्कर तो नही है ?"

प्रेमबल्लभ ने बडे गौर से इस सभावना पर विचार किया, बोला, "मेरी समझ मे

कोई छोटा मसला है। किसी गोपनीय नोट की जानकारी की कोशिश या शराव-कवाव मे चल जानेवाला कोई और अदना-सा काम। फाइल गायव करानी होती तो दो-चार हजार की सीधी घूस चलती, ऐसा काम दारू-वारू के बूते का नही।"

अचानक जैसे उसे बोध हुआ कि उसका ग्लास खाली है। वेटर का पदनाम छोडकर उसने जोर से पुकारा, "ए छोकरे!" जब वह रम का दूसरा या शायद तीसरा ग्लास उसके सामने रखने आया तो उसे सुनाते हुए प्रेमवल्लभ ने कहा, "छोकरा नमकीन है। पहाडी लगता है।"

छोकरे ने मुडकर प्रेमवल्लभ की ओर देखा, जैसे पूछ रहा हो, 'आपने मुझसे कुछ कहा?' प्रेमवल्लभ ने सिर हिलाकर इशारे से अपनी ओर बुलाया, पूछा, "यहाँ कितनी तनख्वाह पाते हो?"

उसने काउटर की ओर इशारा करके कहा, "उस गोरे साहब से पूछिए। वही हमारा मालिक है।"

"अबे हवा क्यो खिसकी जा रही है तेरी? बताता क्यो नही?"

लडके ने काउटर की तरफ देखते हुए स्वगत शैली मे बताया। उसे तीन रुपिया रोज मिलता है। खाना भी। ग्राहको के ग्लास मे बची शराब की काकटेल भी वह पी सकता है, पर पीता नही है।

"सत्ते," आवाज को दबाने की कोई कोशिश नही, "सत्ते! तुमने देखा यह एक्स्प्लवायटेशन! मैं इन लडको को अपनी यूनियन का मेबर बनाऊँगा क्या समझे? ये भी दैनिक मजदूर है। हमारी यूनियन इनके लिए आदोलन करेगी। इस साले कोढी की हवा ढीली कर दूँगा!"

छोकरा इस विस्फोट के पहले ही कमरे के दूसरे छोर पर मुअत्तल सेल्स टैक्स आफिसर की विना वजी चुटकी का जवाब देने चला गया था, मैंने कहा, "चुप वे!"

"मैं अब चुप नही रहूँगा।" ससार के सारे शोषितो को क्राति के लिए ललकारनेवाली आवाज मे वह बहकने लगा। मैंने उसकी बाँह मे पूरी ताकत से जब चुटकी काटी तब वह एक कराह के साथ थमा।

यूनियन का बार-बार जिक्र करते हुए वह नैतिक गुडागर्दी पर उतर आया था। मुझे डर लगा कि वह काउटर के पीछे खडे हुए गोरे साहव को ललकारने की तैयारी कर रहा है। मैंने अपना नीबू-पानी और तली मूँगफली का आहार वही छोड दिया। कहा, "तुम वकझक करो, मैं जा रहा हूँ।"

"बस! घबरा गए!" उसकी आवाज का तापमान अचानक सामान्य हो गया। "तुम साले समझते हो कि मैं इस लौंडे के चेहरे पर फिदा हो गया हूँ? बहक रहा हूँ? अरे यार, तुम मुझे इतना जलील समझते हो?"

कहकर उसने छोकरे को आवाज दी। इशारे से एक नए पेग का आर्डर दिया।

"जब यूनियन बनी है तो सबसे पहले हमे इन मासूम छोकरो को इस सफेद कोढी

जैसे दरिंदो के चगुल से छुडाना होगा। घबराओ नही, आज नही, मै कल यहाँ आकर इनके बारे मे इस गोरे साहब से बात करूँगा।''

''मैं नही आऊँगा।''

''यह और भी अच्छा होगा। मै अपने साथ निगोहावालो को लाऊँगा!'' यानी डेली पैसेजरो के वरिष्ठ वर्ग के गुडो का सबसे वरिष्ठ गुट! प्रेमवल्लभ के इस जोश से मुझे घबराहट होनी चाहिए थी—यूनियन के रास्ते मे अभी से नए किस्म के झाड-झखाड गाडने के लिए मैं तैयार न था पर आज का खतरा टल चुका था। मेरे मन मे यह आशा उभरी, और उसके लिए एक प्रार्थना भी कि नशा उतरने के बाद कल तक वह शायद यूनियनबाजी के इस आयाम को भूल जाएगा।

वह शात हो गया था और कभी मुँदी, कभी अधमुँदी आँखो की आत्मतुष्टि के साथ रम की चुस्की लेने लगा था। मैंने कहा, ''तुमसे, यार, सुरेस के बारे मे बात करनी है। उसका बाप इधर दो-तीन बार उसकी पूछताँछ करने आया था। शायद सुन लिया हो कि उसके पास सौ-पचास रुपिया जमा हो गया है। इसके बाद फिर से उसकी कुटम्मस शुरू होगी, फिर कभी उसे लत्ते जैसा सडक पर फेक दिया जाएगा। मैंने सोचा है कि क्यो न उसे मूक-बधिर स्कूल मे भर्ती करा दे। वहाँ खाने और रहने का भी इतजाम है। कुछ खर्चा यूनियन से दे देंगे। जरूरत हुई तो परमात्मा जी से कहूँगा। यूनियन के लेटरपैड पर मैं एक चिट्ठी सरक्षक जी से लिखा दूँगा। इधर मुझे फुरसत नही है। या तो तुम उसे साथ लेकर स्कूल मे भर्ती करा आओ, या किसी दूसरे साथी को लगा दो। साल-दो साल भी अगर वह पढ ले ।''

विदित हुआ कि मैं कुर्सी से बात कर रहा था। उसका ग्लास खाली था, मुँह खुला हुआ, ओठ के एक कोने पर लार का सूत रेगता हुआ नीचे ठुड्डी की पैमायश करने को उतर आया था। सिर कुर्सी पर टिका हुआ, पर छत का निरीक्षण करने मे असमर्थ क्योंकि आँखे मुँदी हुई थी। मैंने उसे जगाया। जागते ही, ''छोकरे, एक और बडा रम।''

सुरेस को स्कूल मे भर्ती कराने के लिए मुझे ही ठेकेदार साहब से छुट्टी लेकर जाना होगा। खीझकर मैंने कहा, ''मेरे पास सिर्फ पाँच रुपए का नोट है। जितनी पियक्कडी दिखानी हो अपने बूते पर दिखाना।''

उसने छोकरे को दुबारा आवाज लगाई और अपने पेट की जेब की ओर हाथ बढाया। दो-तीन कोशिशो के बाद हाथ ने सही जगह पा ली। कुर्सी पर कई बार कसमसाकर उसने जेब से दस और पाँच रुपए के कई नोट निकाले। वजनी पलके खोलते हुए उन्हे धीरे-धीरे गिना। पचपन रुपए थे। बोला, ''काफी है। अभी डेढ पेग तक चल जाएगा।''

इस बार उसने छोकरे को युद्धधर्मी ललकार के साथ पुकारा। पर मेरा दिल बैठ गया था। उन्ही नोटो मे यूनियन की सदस्यता की एक पतली-सी रसीद बुक भी थी।

सफेद दागोवाला मालिक, हाफ पैंट और टी-शर्टवाले छोकरे, मुअत्तल अफसर, मरियल बावू, छाती पर सडे कद्दू जैसा सिर लटकाए प्रेमबल्लभ सिगरेट का धुआँ और सस्ती शराब की हवा मे बसी गध—इन सबसे मेरा ध्यान खिचकर उस रसीद बुक पर टिक गया। उससे कितनी रसीदे आज कटी हैं, यह गिनने की मुझे जरूरत न थी। पचपन रुपए को पाँच से भाग देकर सामान्य गणित के सहारे यह जाना जा सकता था। मैंने रसीदबुक उठाकर अपनी जेब मे रख ली और शराबखाने से बाहर आकर खुली हवा मे एक पेड के तने के सहारे किसी पेड के तने जैसा ही बिना कोई हरकत किए खडा रहा।

बरामदे मे बालू का ढेर लगा है। एक चार महीने का बच्चा उससे सटा हुआ लेटा है। फटे-पुराने कपडो को जोड-गाँठकर एक बिस्तर बनाया गया है जिससे तेल और बच्चे के मूत की हल्की गध निकलकर हवा मे बसी हुई है। बच्चा अपनी नाप से काफी बडा एक हरा सुएटर पहने है जो बिस्तर के सामने उससे ज्यादा साफ और चमकदार दीखता है। बच्चे का चेहरा गोल-मटोल है और तेल और काजल से सना हुआ है। बाल भूरे हैं, रग गोरा है। बच्चा न मोटा है न पतला। इस वक्त वह अपने पैर बार-बार उठा रहा है, पटक रहा है। रो नही रहा है, बल्कि अपना प्यारा गाना गा रहा है। गाने के सुप्रसिद्ध बोल हैं 'गी-गी-गी-गी।'

अब उसकी आँखे चीजो पर टिकने, उन्हे परखने और उनसे फिसलकर दूसरी चीजो पर जाने लगी हैं। ओठ इस तरह सिकुडने और खिलने लगे हैं कि पोपले मुँह पर उसे मुस्कान समझकर आप ताली बजा सकते हैं। ताली बजाने के लिए एक दस साल की लडकी, इतनी कम उम्र मे भी लाल-मटमैली साडी पहने, उसका कछोटा बाँधे, उसके पास सिकुड़कर बैठी हुई है। बच्चा गाने और मुस्कुराने की कोशिशो को छोडकर कभी हवा मे अपने नन्हे पावो से एक काल्पनिक साइकिल चलाता है, कभी अपने हाथ ऊपर-नीचे, दाएँ-बाएँ झटकता है। दायाँ हाथ जब दाई ओर जाता है तो बालू के ढेर से टकराता है और जब बाएँ आता है तो बालू की एक झीनी फुहार उसके भूरे बालो पर बरसती है और तेल मे सोखते का काम करती है।

मैं बरामदे के दूसरे छोर पर एक कुर्सी डाले बैठा हूँ। मजदूरो ने दिन का काम खत्म कर दिया है और सामने सहन मे पाइप पर अपने हाथ-पाँव रगड-रगडकर धो रहे हैं। लाल साडीवाली लडकी उठकर उसी गुट मे शामिल हो जाती है। बच्चा गी-गी-गी का गाना नए जोश से गाने लगता है, फिर अचानक चीखकर रोने लगता है। उसकी चीख नीचे सहन मे ट्रॉजिस्टर पर बजते हुए लोकगीत को एकदम दबोच लेती है।

चीख मे एक अस्वाभाविकता है जो जसोदा को अधबने मकान के अदर से बाहर खीच लाती है। वह बच्चे को गोद मे उठा लेती है, कधे से लगाकर उसे जोर-जोर से थपथपाती है, उसके रोने मे उसी ऊँचाई पर अपना सुर मिलाकर उसे दुलराती है, चुप

कराना चाहती है। फिर उसकी दाई हथेली मे चुभी हुई एक वहुत पतली कील निकालकर जोर से कहती है, "यह कील है।"

उठकर मैं माँ-वेटे के पास आता हूँ। वच्चा रोता जा रहा है। हाथ झटक रहा है। मैं उसकी उँगलियाँ पकडकर अपनी हथेली मे उसकी अठन्नी-भर की हथेली रख लेता हूँ। खून की एक वहुत नन्ही वूँद उसकी हथेली पर छलछला उठी है। जसोदा जिस हाथ से वच्चे को गोद मे सँभाले है उसी की उँगलियो से उसे थपथपा रही है, दूसरे हाथ की उँगलियो से कील पकडकर उसे देखती जाती है। मैं कील खीचकर वरामदे के वाहर गीली जमीन मे गाड आता हूँ।

"लोहा अगर खाल फाड दे तो डॉक्टर कहते हैं टिटेनस की सुई लगवानी चाहिए।" मैंने कहा।

जसोदा दोनो हाथो से वच्चे को ऊपर उछालती है। उसका रोना कम हो गया है। दुलराती हुई कहती है, "हमारे वच्चे को सुई लगेगी, यहाँ कुच्ची की जाएगी।" वह उसके कूल्हे को सुहलाती है, जहाँ अस्पताल मे वच्चे को कोई टीका लगाया गया था।

वरामदे से उतरकर वह पाइप के पास गई, उसका हाथ धोया, साडी से उसे पोछा, फिर जहाँ कील चुभी थी वहाँ गीली मिट्टी लगा दी। वोली, "यह रही तुम्हारी सुई।" उसने वच्चे की वोली मे मुझे सुनाया, वच्चे की हथेली मेरी ओर घुमा दी।

"तुम शकरगढ कव जा रही हो?"

"न नई वताऊँगा," यह फिर वच्चे की वोली मे।

"वता दो राजा-वेटा, वता दो मुन्ना।"

"पलछो।"

जानकर खुशी हुई। जसोदा को भविष्य अव भी वहुत कुछ दे सकता है।

"ठीक है, कल तुम्हारा पूरा हिसाव कर दिया जाएगा।" कहकर मैं भी वहाँ से चल दिया। मजदूर पहले ही जा चुके थे।

धूल-भरी ऊवड-खावड सडक। सटर-पटर, सटर-पटर, सटर-पटर। मेरे आगे-पीछे मजदूरो के जत्थे चले जा रहे थे। लहराते वाल और नीली लुँगीवाले नौजवान। वहुतो के कधे से लटकता ट्राजिस्टर, जो अव खवरे सुना रहा था। सर्कसवालो की-सी खूवी से सिर पर पोटलियाँ साधे हुए औरतो का हुजूम। सवकी चाल मे तेजी थी, जो घर नही है, उसी घर पर लौटने की ललक थी।

शाम की घिरती धुँध मे एक साथ सभी ट्राजिस्टरो से खवरो की जगह कोई भजन आने लगा। सडक छोडकर एक पगडडी मे सात-आठ मजदूर, टेढी-मेढी कतार मे एक मैदान पार कर रहे थे। उसके दूसरे छोर पर उनका रैनवसेरा होगा। सभी चादरो से अपना वदन ढके थे, सभी खामोश थे, एक अजीव-सा विंव मेरे मन मे उभरा। यह संतो की जमात है जो हमारे अपराधो के प्रायश्चित के लिए उपवास और तपस्या मे अपने को गलाती हुई, किसी लवी तीर्थयात्रा पर जा रही है।

दोपहर की गाडी से जसोदा को शकरगढ जाने के लिए बिदा कर दिया । उसके साथ एक बूढा मजदूर, उसकी बीवी और लडकी भी गई । शाम होते-होते ठेकेदार साहब को जब चार मजदूरों की गैरहाजिरी का पता चला, वे मेरे ऊपर भुनभुनाए । पर कुल इतना ही मुझसे पूछ लिया होता । मैंने कहा, "आप हॉ कहते या ना कहते । हॉ कहते तो वही होता जो हुआ । ना कहते तब भी वही होता जो हुआ । तब आपसे कहकर किसी को क्या मिल जाता ?"

वे नर्मी से बोले, "मैं एक बार ना कह देता तो उनकी यहॉ से पैर निकालने की हिम्मत न होती ।"

यह कुछ-कुछ परमात्मा जी-छाप वक्तव्य था । साल-भर मैं ऐसे ही वक्तव्य का सामना करता रहा था । बोला, "आप इतने ऊँचे पुलिस अफसर रह चुके हैं । आपके बारे मे हमे कोई मुगालता नही है । पर आपका स्वभाव लोग जान चुके हैं । सभी जानते हैं कि आप किसी गरीब बेवा पर जोर-जब्र नही कर सकते । यह आपके स्वभाव मे नही है । वही बूढा मजदूर जहॉ एक बार हाथ जोडकर आपके पॉव पकडने दौडता आप उसे जाने से न रोक पाते । दो-चार ऑसू बहा देता तो अपनी जेब से उसका रेल-भाडा भी निकाल देते ।"

"तुम मुझे बेवकूफ समझते हो ?"

ये तो हूबहू परमात्मा जी हुए जा रहे हैं । मैंने कहा, "आप मेरे पिता-समान हैं । ऐसी बात मुँह से न निकालिए ।"

कहकर मैं अपने पिता से, जो पूरे गॉव की निगाह मे आजीवन-प्रमाण-प्राप्त बेवकूफ रहे हैं, मन-ही-मन उनकी तुलना करने लगा । सोचा, कितना अच्छा होता अगर यही मेरे पिता होते । ठेकेदार साहब ने कहा—"कल कुछ नए मजदूर लाने होगे ।"

जो नही किया था उसे किया हुआ मानकर पूरे आत्मविश्वास से मैंने कहा, "उसका इतजाम हो चुका है ।"

ठेकेदार साहब ने इस बार मुझे नीचे से ऊपर तक और ऊपर से नीचे तक देखा । यह निगाह नख-शिख अवलोकनवाली नही थी, यह एक भूतपूर्व पुलिस अफसर की निगाह थी जिसे सही यकीन था कि यह इतना सीधा नहीं है जितना उसे समझा जाता है । मेरा पूरा मुआयना करके वे चले गए ।

मैं झेपू नही हूँ, पर ऐसा मुआयना मुझमे हमेशा उलझन पैदा करता है । उनके जाने पर ऑख की पुतली को ऊपर नीचे किए बिना मैंने भी अपना मुआयना किया । मेरे पैरो मे चार साल पुराने, दस दिन पुरानी पालिशवाले कत्थई रग के बूट हैं । उसके ऊपर चोडी मोहरीवाली पतलून है जो दस साल पहले फैशन से उठ चुकी है । कमीज ठीक-ठाक है सिर्फ उसका बटन न 2 और न 3 टूटा हुआ है और चलन न होने के कारण ऊपर का बटन न 1 बद नही किया गया है । कमीज के ऊपर एक मटमैले नीले रग की

वह चीज है जिसे जर्किन कहा जा सकता है। यह उस कपडे की है जिसे पैराशूट का कपडा कहते हैं और वहाँ से चार रुपए मे खरीदी गई है, जिसे निक्सन मार्केट कहा जाता है। इस जर्किन मे सबसे घृणित तत्व छाती पर दाहिनी ओर छपा हुआ एक गोल पहिया है जिसमे अग्रेजी के तीन 'ए' मीनार जैसी बनाते हुए अंकित हैं। मुझे नही मालूम यह क्या है और क्यो है और चार रुपए की सस्ती कीमत सुनते ही जब मैंने जर्किन को एक सेकिंड मे खरीद लिया था तब देखा भी न था कि उस पर कोई ऐसा अलकरण भी है। बहरहाल, तब से अब तक यह मेरी छाती पर मूँग दल रहा है और जब तक चार रुपिया पूरा-पूरा वसूल न हो जाए यानी जब तक यह जर्किन फटकर घूरे पर न चली जाए, यह वैसे ही मेरी छाती पर मूँग दलता रहेगा।

ऐसा नही कि अच्छी पोशाक पहचानने की और मिल जाए तो उसे पहनने की मुझे तमीज नही। एक बार मैंने अच्छी पोशाक पहनी भी थी। आज से चार साल पहले की बात है। मुझे सहायक खाद्य निरीक्षक के पद के लिए इटरव्यू मे बुलाया गया था। उन्ही दिनो मेरे ही डील-डौल के एक डेली पैसेजर की शादी हुई थी और वह नगर महापालिका मे डिस्पैच क्लर्क की नौकरी पर, जो उसे वही के हेडक्लर्क से बहैसियत दामाद दहेज मे मिली थी, एक नया कीमती सूट पहनकर आने लगा था। बताने की जरूरत नही कि यह सूट भी उसे दहेज मे मिला था। इटरव्यू के लिए मैंने यह सूट अपने साथी से एक दिन के लिए उधार ले लिया और स्टेशन के फर्स्ट क्लास वेटिंग रूम मे हम दोनो ने अपनी पोशाको की अदला-बदली कर ली। वेटिग रूम के चौडे शीशे मे जब मैंने गले मे टाई लटकाकर सूट डाटा तो अपने लुभावने रूप पर खुद मेरा दिल हाय-हाय करने लगा। इसी जोश मे मैंने सूट के रग को देखते हुए उस दिन ये कत्थई रग के जूते भी खरीद डाले और नए जूतो की चर्र-मर्र के साथ गले मे टाई और कोट की बाई जेब मे चौखानेदार नफीस रूमाल डाले जब मैं दुकान के बाहर आया तो मेरे साथियो के दिल भी लगभग वैसे ही हाय-हाय करने लगे। 'जॅच रहे हो साले/बेटा/पट्ठे।' अपनी-अपनी रुचि के सबोधनो के साथ उन सबने मुझे इटरव्यू के लिए रवाना किया।

न घूस दी थी, न ऊँची सिफारिश थी--इसलिए इटरव्यू मे तो फेल होना ही था। पर धुप्पल के भरोसे चला गया था क्योंकि घूस, सिफारिश, गुटबदी, गुडागर्दी के तर्क जहाँ रोज चलते हैं वहाँ कभी-कभी बिना किसी तर्क के धुप्पल भी चल जाता है। कायदे आजम को पाकिस्तान कैसे मिला ? प्रबल प्रचड नेहरू-वश के होते हुए भी लालबहादुर शास्त्री भारत के प्रधानमत्री कैसे बने ? सुचेता कृपलानी उत्तर प्रदेश के लौह पुरुष चद्रभानु गुप्त को हराकर यहाँ की मुख्यमत्री कैसे बन गई ? पुवाल के तिनको से भरे बालोवाली हमारे गाँव की सावित्री नाम की लडकी किस तर्क से परमात्मा जी जैसे रईस की उत्तराधिकारिणी हो गई ? जानते हुए भी कि धुप्पल नही चलेगा, हमे कही गहरे से उसका सहारा भी था। पर धुप्पल नही चला। पूरी घटना एक उम्दा सूट के पहनने और उतारने और एक जोडी उम्दा बूट पर पैसा लगाने की यादगार बनकर रह गई।

बहुत दिन बाद परमात्मा जी की कोठी की ओर जा रहा हूँ। तन घटिया पोशाक से सजा है और मन उन्ही कपडो से जुडी गुत्थियो मे उलझा है जो ठेकेदार साहब की एक गाढी, गहरी और सर्वदर्शी निगाह ने पैदा कर दी हैं।

पहले भी कई बार अपने ऊलजलूल हुलिया को लेकर मन मे ऐसी गुत्थियाँ पैदा हुई हैं जिनको उन शुक्राणुओ ने जन्म दिया है जो जीवन की गुणवत्ता या 'क्वालिटी आफ लाइफ' नाम की समझ से जुडे हैं। क्वालिटी आफ लाइफ, यानी दूरदर्शन पर आनेवाले विज्ञापनो की जितनी खपत आपकी जिंदगी मे हो जाए उतनी ही जिंदगी की क्वालिटी उम्दा होती जाती है। इस हिसाब से, मैं जानता हूँ मेरी जिंदगी घटिया क्वालिटी की है। 'क्वालिटी आफ लाइफ' खुद एक मुहाविरा है और इसका दिलो-दिमाग, नैतिकता और आदर्श से कोई वास्ता नही, मैं यह भी जानता हूँ। इसी से यह भी जानता हूँ कि जसोदा और दिवगत नेता की क्वालिटी आफ लाइफ बिलकुल गलीज रही है और असली क्वालिटी अगर कही देखनी हो तो वह इजिनियर साहब के यहाँ और थोडी-बहुत परमात्मा जी के यहाँ देखी जा सकती है।

जो भी हो, जब भी मुझे क्वालिटी आफ लाइफ के चींटे भीतर-ही-भीतर काटना शुरू करते हैं तब मेरे दिमाग मे एक सपने की रील खुल जाती है। इसमे मैं अपने-आपको एक पुरानी पर धुली-पुँछी ऐबैसेडर गाडी मे बैठा हुआ पाता हूँ। मैं अगली सीट पर ड्राइवर के पास बैठा हूँ। पीछे की सीट पर परमात्मा जी, काली टोपी, काली शेरवानी और फलालैन के चूडीदार पायजामेवाली बीस साल पुरानी राष्ट्रीय पोशाक मे बैठे हैं। बगल मे सावित्री है जो सिल्क की हरी, बैंगनी साडी मे मलाई जैसा झकझक सफेद शाल डाले—यानी लापरवाही से डाले बैठी है। उसकी एक गोरी बाँह परमात्मा जी की काली शेरवानी से जुडकर गगा-जमुनी सगम बना रही है। हम लोग ऐसी सडक से निकल रहे हैं जिसके दोनो ओर मैदान और छोटी-छोटी झाडियोवाले जगल हैं। सावित्री मुझे सुनाकर मेरे बारे मे एक डाइलॉग बोल रही है जिसका अर्थ यह है कि सत्ते का दिमाग पढने-लिखने मे अच्छा था, अगर यह डेली पैसेंजरो की शोहदागीरी से अपने को दूर रखते तो थर्ड डिविजन मे एम ए न होते। इन्हे यकीनन् फर्स्ट डिविजन मिलती और आई ए यस मे तो खैर न आते क्योंकि वहाँ खानदान देखा जाता है पर पी सी एस मे जरूर आ जाते।

बहरहाल मैं खामोश रहता हूँ और तभी हमे पीछे से एक जोरदार हार्न सुनाई देता है। मैं चौंककर पीछे देखता हूँ और मुझे हमारी ओर तेजी से आती हुई एक चमकदार ऐल्युमूनियम के रगवाली इपाला आती हुई देख पडती है। इपाला इसलिए कि मुझे विदेशी मोटरो मे ब्यूक, मर्सिडीज, क्रिसलर, टायोटा, डाटसुन आदि के नाम तो जरूर याद हैं पर कई साल हुए नजदीक से देखी मैंने सिर्फ एक ही गाडी है जिसका कि नाम इपाला है।

तो मैं देखता हूँ कि यह इपाला तेजी से हमारी तरफ़ बढ़ती आ रही है। मैं देखता हूँ,

ड्राइवर उसका हार्न सुनता है, परमात्मा जी और सावित्री इससे वाखवर हैं । और हमारे देखते-देखते यह इपाला हवा के झोके की तरह हमारी कार के दाएँ से निकलकर आगे बढ जाती है । और उसमे मैं, सेकिंड के एक खड मे देखता हूँ एक गोरी विलायती लडकी को—जो उस कार को हॉक रही है । गाडी सर्र-फर्र-छर्र-पर्र-फर्र-भर्र वाली लय मे मुझसे सौ गज आगे निकल जाती है । अचानक लडकी फिर हार्न बजाती है, गाडी मे ब्रेक लगाती है, पीछे की ब्रेक लाइट्स दमकती हैं, और हिंदुस्तानी ड्राइवरों की सकेत-भाषा समझने की असमर्थता को समझते हुए वह अपना गोरा, सुडौल हाथ बाहर निकालकर हमारी गाडी को रोकने का इशारा करती है ।

हमारी गाडी रुकती है । रुकते ही वह दरवाजा खोलकर अपने नुकीली ऊँची ऐडियोवाले जूतो पर कडवड-कडवड करती हमारी ओर आती है । मेरी ओर का दरवाजा खोलकर वह मुझे बॉह पकडकर बाहर घसीट लेती है, मुझसे चिपटती है, मुझको चूमती है, नाराजगी, प्यार और थकान की आवाज मे मुझसे अग्रेजी मे कहती है, 'सत्ते तुम कितने बदमाश हो !' और मुझे खीचकर इपाला मे अगली सीट पर बैठा देती है ।

पर मैं बैठता नही हूँ । अग्रेजी फिल्मो मे हताश नायक जिस तरह प्रेमिका को पागलो की तरह चूमता हुआ लहराता और भुनभुनाता जाता है उसी तरह मैं भी वही सब करता हुआ बार-बार कहता रहता हूँ—'ऐग्नीस, मेरी प्यारी ऐग्नीस, तुम अब तक कहॉ थी ?'

परमात्मा जी, 'मैडम, मैडम' कह रहे हैं । सिर्फ एक भटकती नजर मे मैं देखता हूँ कि सावित्री ऑखे फाडकर, समझ के इलाके से कोसो दूर, यह सब देख रही है, मैं ऐग्नीस के गले मे अपने ओठ खोसकर, जो अब तक नीम की दातून छोडकर सभी टूथपेस्टो को 'तस्वीर की चीज भर मानते हैं, लहरा और भुनभुना रहा हूँ ।

तब ऐग्नीस उन्हे अग्रेजी मे बताती है कि सत्ते बडा शरारती है, कैंब्रिज मे हम साथ-साथ पढते थे, यह न जाने वहॉ से अचानक कैसे गायब हो गया । उसी के पीछे मैं इडिया मे साल-भर से घूम रही हूँ । आपको उलझन हुई, इसके लिए सॉरी, वेरी-वेरी सॉरी । यह मेरा, सिर्फ मेरा है । अब यह मेरे साथ जाएगा ।''

सपना यही खत्म । क्योंकि मेरे लटे-पटे पैंट उर्फ फ्लेयर, बिना बटन की कमीज, नीली जर्किन और बिना पालिश के जूतो का बदला सावित्री से इपालावाहिनी ऐग्नीस ने ले लिया है । अब सत्ते सावित्री पर सीधी निगाह डालता है, यह बताने के लिए कि लखनऊ जैसी निकृष्ट यूनिवर्सिटी का वह एक निकृष्ट एम ए नही है, वह कैंब्रिज मे पढ चुका है । डार्लिंग, तुम इतना भी नही जानती ! और वह ऐग्नीस का प्रेमी है । डार्लिंग, तुम यह भी नही समझ पाई ! रील यही टूटती है, क्योकि ऐग्नीस के साथ इपाला मे बैठकर जाने का कोई अर्थ नही, क्योकि वहॉ न परमात्मा जी होगे, न सावित्री होगी ।

बिजली बोर्ड के दफ्तर के आगे मैं बस स उतर पडा । दफ्तर की लॉन पर भीड लगी थी । रोजमर्रा का कारोबार । कुल दो मिनट मे पूरा मामला समझ मे आ गया । मंगरू, मटरू, कतवारू, पातीराम जैसे नाम का एक दैनिक मजदूर जिसका नाम ही उसे सजय, सदीप, राजीव, सजीव की जाति से जुदा करता है, ट्रासफार्मर के खभे पर चढ़ गया था और 'बिच्छू का मत्र न जाने और सॉप की बॉबी मे हाथ खोसे' की मूर्खता पर तीन विस्मयवाचक चिहून लगाता हुआ कैथे की तरह ऊपर से नीचे चू पडा था । अब उसकी लाश को लॉन मे सजाकर मज़दूर-यूनियनवाले उसके घरवालो को पचास हजार रुपए का मुआवजा दिलाने के लिए बोर्ड के सिक्रेटरी का घिराव किए हुए थे । जब तक मुआवजा नही मिलेगा, लाश यहाँ से नही उठेगी । बोर्ड के सिक्रेटरी का कहना था कि मजदूर बोर्ड का नही, ठेकेदार का है । बोर्ड से उसका कोई लेना-देना नही । ठेकेदार ने अबूझे-अजाने मजदूर को ट्रासफार्मर के खभे पर चढ़ा दिया तो ठेकेदार जाने । मज़दूर का लडका भी मजदूर था । वह अपना सिर पीटता जाता था और कहता जाता था कि मुझे कुछ नही, सिर्फ बापू की लाश चाहिए । जैसा कि पहले कहा है, यह रोजमर्रा का कारोबार था । मैं वहाँ सिर्फ दो-चार मिनट रुका ।

मजदूर यूनियन की हालत देखिए। उसके नेताओ ने मुआवजे के बारे मे कॉख-कॉखकर इतना सोचा और अपनी कल्पना की राइफल से जिसे बडी दूर का निशाना समझकर गोली चलाई, वह जगह सिर्फ पचास हजार मिलीमीटर दूर निकली । सुनने मे भले ही यह चद्रमा तक का फासला लगे, मामूली नाप के हिसाब से हुआ कुल पचास मीटर ! अपनी-अपनी समझ है । गरीबो की यूनियन गरीबो की अक्ल की ही नही, अक्ल की गरीबी की भी शिकार है । मेरे पास कुछ भी न हो, पर रुपए की हैसियत मुझे मालूम है । रोज ही अखबारो मे छपता है कि इन्होने इतने करोड रुपए जरा-सी तरकीब से कमा लिए, उन्होने इतने अरब रुपए से उस होटल की अतर्राष्ट्रीय श्रृखला हथिया ली, इतने खरब रुपयो से उस ऑयल कपनी के अधिकाश शेयरो को अपने ब्रीफकेस मे डाल लिया । चारों ओर, भले ही मेरी पहुँच के बाहर हो, रुपए की नदियाँ उफनाती हुई बह रही हैं । माना कि उनमे गगा से भी लाख गुना ज़्यादा प्रदूषण है पर उनका यह प्रदूषण ही हमारी सभ्यता का विभूषण है । कही दूर नही, यह सब सारे जहाँ से अच्छे अपने हिंदोस्तान मे हो रहा है । और यही एक फटीचर यूनियन है जो अपने साथी की मौत का मुआवजा मॉगने मे पचास हजार तक आते-आते घिघियाने लगती है । यह हुई अपनी मजदूर यूनियन की निगाह ! मेरी दादी की वह कहावत सच ही है । शहरी भाषा मे उसका अनुवाद होगा गिलहरी की खोपडी पर महुए का एक फल चू पडे तो उसके लिए वही गाज है ।

पर यूनियनवाले भी शायद कुछ सोच-समझकर ही अपने दिमाग का पेच इतने नीचे खाँचे मे कस रहे थे । एक जोशीले नेता से मिनट भर बात करते ही मुझे पता चल गया । वे जानते थे कि पूरे बिजली बोर्ड को डाइनामाइट से उडा देने पर भी वे बोर्ड के

हाकिमो पर मजदूर की मौत की जिम्मेदारी नही थोप पाएँगे। कानून का नुक्ता-नुक्ता उन्ही की तरफ है। इसलिए हाहाकार मचाकर वे ठेकेदार के भागते भूत से उसकी लँगोटी हथियाने की कोशिश मे थे। यानी जिसे मैंने शुरू मे आंदोलन समझा था, वह धमाचौकडी भर है। काफी दिलचस्प नाटक था, बशर्ते कि सहन मे रखी हुई वह चीज आदमी की लाश न होकर कपडे से ढकी एक आदमकद कठपुतली होती।

गिरी तबीयत से परमात्मा जी के बँगले पर पहुँचा।

ड्राइगरूम मे शांति थी और नहीं भी थी। थी इसलिए कि सिर्फ पति-पत्नी वहाँ खामोश बैठे थे, परमात्मा जी एक गद्देदार दीवान पर मोटे गावतकिए के सहारे न कुछ करते, न कुछ कहते हुए; सावित्री उनसे कुछ दूर एक सोफे पर खामोशी से सुएटर बुनती हुई। शाति नहीं थी इसलिए कि उनके सामने वी सी आर पर कोई फिल्म चल रही थी जिसमे तीन गुडे किसी रमेश नामक नौजवान को चीख-चीखकर धमका रहे थे और वह उन्हे समझा रहा था कि वह रमेश नही, महेश है। थोडी देर मे जाहिर हो गया कि एक सी शक्ल वाले दो जुडवा भाइयो का खेल है और हर भाई धोखे मे बार-बार गलत हाथो पिटता है या गलत होठो प्यार पाता है। जब लगभग सात-आठ मिनट तक मैं दर्शक मडली मे शांतियोग कर चुका तब परमात्मा जी ने कहा, "बकवास है। तुम देखो, मैं दफ्तर मे जाकर कुछ काम करूँगा।"

यह वक्तव्य सावित्री के लिए था। सुएटर पर ध्यान केंद्रित किए हुए पर जबान से गोली जैसी चलाते हुए उसने कहा, "मैं तो पहले ही कह चुकी, वाहियात पिक्चर है। मैं एक बार देख चुकी हूँ। 'आघात', 'दामुल', 'खँडहर' से भी गई गुजरी है।"

मैं इन तीन फिल्मो के बारे मे अखबारो की लबी-चौडी तारीफे पढ़ चुका था। इसलिए मन मे इस फिल्म के लिए उत्सुकता जागी। पर तब तक परमात्मा जी ने पिक्चर बद कर दी। नौकर ने कमरे मे दो-तीन रोशनियाँ जला दी। परमात्मा जी कुछ और आराम से तकिये पर लुढक गए। दफ्तर के कमरे की ओर जाने की उन्हे कोई जल्दी नही थी। मुझसे बोले, "कैसे आए?"

"ऐसे ही—बहुत दिन से दर्शन नही किया था।"

"कैसा चल रहा है?"

"बस चल रहा है।"

सावित्री के ओठ सिकुडे, नथुने चौडे हुए। हम दोनो ने इस मुद्रा पर गौर किया। परमात्मा जी बोले, "चलो दफ्तर ही मे चलते हैं।" सावित्री बिना कुछ कहे ड्राइगरूम से उठकर, उस आलमारी पर झटकेदार निगाह डालती हुई जिसमे कुछ दिन पहले मैंने जजो और साथी वकीलो के लिए सीलबंद शराब की बोतले गँजी हुई पाई थी, अदर के कमरे मे चली गई। परमात्मा जी एक जोरदार जम्हाई लेकर तकिये के सहारे कुछ और पसर गए। बोले, "बस चल रहा है का क्या मतलब?"

मैंने पिछले अक्तूबर की बेहूदा बारिश मे गिरी हुई मकान की दो कोठरियो, पिता

की बीमारी, उनकी छूटते ही गाली देने की आदत में इजाफा, चाचा के साथ चलते हुए जमीन के मुकदमे में चकबंदी अफसर द्वारा माँगी जानेवाली घूस, बहनोई और उसके हाकिम के बीच खिंचती हुई खिच-खिच आदि का जिक्र किया। वे मकदमे मे अटक गए।

''कितना माँग रहा है ?''

''पाँच हजार रुपए। उधर से इतना ही ले चुका है। कहता है कि इधर से इतना ही हो जाए तो उधर की रकम वापस कर देगा।''

''दो हजार तक दे दो।''

''दो मे नही मानेगा।''

''कोशिश करो। तुम्हारा वकील समझाएगा तो मान जाएगा।''

वे समझाने लगे, ''मुझे याद नही रह गया है। पर परसाल जब तुमने अपना केस बताया था तो मुझे लगा था कि तुम्हारा मामला मजबूत है। ईमानदारी से फैसला हो तो तुम जीते बैठे हो। वैसा फैसला लिखने मे उसे कोई मेहनत नही करनी पडेगी। दूसरी पार्टी के हक मे उल्टा सीधा फैसला लिखना बडी मशक्कत का काम होगा। अपील मे उस पर लताड भी पड सकती है। इसीलिए मेरा ख्याल है वह तुमसे कम पैसा लेने को राजी हो जाएगा।''

''पर हमारे लिए तो दो हजार भी बूते के बाहर हैं।''

''तो मुकदमा क्यो लड रहे हो ?''

वे न्याय-व्यवस्था की नस-नस पहचानते हैं। उनके इस तर्क का मेरे पास कोई जवाब न था। मैं खामोश रहा। वे बोले, ''चार-पाँच सौ की कमी पडे तो मुझसे ले लेना।''

''आपसे रुपिया नही माँगूँगा, जीजा जी। ऐसे ही आपने कौन कम एहसान किए हैं ? हजारो काम आपकी कृपा से पूरे होते रहे हैं। कल के दिन आप अगर न्यायमत्री बन गए तो अभियोजन अधिकारी बनने के लिए मुझे आप ही के पास दौडकर आना होगा।''

''मैं अब न्यायमंत्री तो क्या विधायक भी नही बनूँगा। मैं राजनीति छोड रहा हूँ।'' कहकर उन्होने तकिये के पास ही पडा हुआ घटी का बटन दबाया। नौकर के आने पर बोले, ''चाय लाओ।''

चाय आने तक वे समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था, सत्तारूढ पार्टी का चाल-चलन— ऐसे विषयो पर धीरे-धीरे बोलते रहे। मुख्य विषय था : हम पुराने जमीदार रहे हैं। सीधा काम करना जानते हैं। आज की राजनीति का छलछद हमारे बूते का नही।

उन्हे राजनीति मे घुसे हुए मुश्किल से पाँच साल हुए होगे। पर उन्हे अभी से पुरानी पीढ़ी मान लिया गया है। पिछली बार विधान-परिषद के नामाकन होने थे। उन्हे पार्टी का टिकट पाने के लिए खुद प्रदेश कमेटी के अध्यक्ष ने बुलाया था। बाद मे कह दिया कि

आप पार्टी की जिला-स्तरीय कानूनी इकाई के कन्वीनर बन जाएँ। टिकट एक ऐसी देवी जी को दे दिया गया जो दिल्ली की किसी पर्यटक एजेसी मे जन-सपर्क की मैनेजर थी। वे अब राज्यमत्री बनने जा रही हैं। ऐसा क्यो हुआ ? न पूछो। चारो ओर गदगी फैली है। उसे बखानते हुए अपनी ही जीभ गंदी होती है। अब इधर फैजाबाद मे ससद के उपचुनाव हो रहे हैं। उनसे पहले कहा गया कि आप ही इसके सर्वेसर्वा होगे। खजाची का सारा काम आप पर ।

उन्होने साफ-साफ नही कहा पर मैं समझ गया कि उसी के जोश में परमात्मा जी ने एक वजनी रकम चुनाव के फंड मे जमा की होगी। पर दिल्ली में पहले ही से मिनिस्टरी करता हुआ जो सितारा इस उपचुनाव मे उम्मीदवार बनाकर खडा किया गया है उसने बाद मे किसी दूसरे को ट्रेजरर बनाने का इशारा कर दिया और ट्रेजरर बनकर आज वहाँ के चुनाव क्षेत्र मे लाखो के वारे-न्यारे कर रहा है।

"कौन है यह इस सितारे का नायब सितारा ?"

"तुम सचमुच नही जानते ? अपने इंजिनियर साहब।"

मेरे मुँह के भीतर पडा हुआ पेडा, जो चाय और नमकीन के साथ आया था, अचानक कड़ुवा हो गया। मुँह चलना बद हो गया। अभी तक मैं परमात्मा जी का एकालाप चेहरे को बहुत गभीर बनाकर, पर मन-ही-मन बडे हल्केपन से सुन रहा था। अब मेरी तबीयत को एक अजीब ढग के बिला-मिलावट, खालिस गुस्से ने झकझोरना शुरू किया। बचपन से अब तक सीखी हुई अनगिनत गालियाँ अचानक मेरे गले से उभरकर कड़ुए पेडे, लार और चाय के घूँट को लाँघती-फलाँगती ओठो की ओर दौड चली। पर परमात्मा जी की शात मुद्रा ने मुझे अपने पर काबू पाने मे मदद की। चाय, पेडे और लार को गले के नीचे उतारकर मैंने सिर्फ इतना कहा : "ऐसा कैसे हो सकता है ? वे सरकारी नौकर हैं। वे चुनाव मे किसी उम्मीदवार की ओर से कैसे काम कर सकते हैं ?"

"तो तुम्हे अभी यह भी नही मालूम ? उन्होने इस्तीफा दे दिया है। अब वे स्वतत्र नागरिक हैं।"

इस बार परमात्मा जी हँसे, जैसे किसी सर्दी खाए कुत्ते ने छीका हो। बोले, "हो सकता है कुछ दिनो बाद वे मिनिस्टर भी हो जाएँ। नौकरी के लिए अब तुमको मेरे पास नही, उनके बँगले मे जाना होगा। क्या समझे ?"

कुछ देर मे पूरा नक्शा मेरी समझ मे आ गया। हाई कोर्ट के प्रतिकूल फैसले के बाद इजिनियर साहब के खिलाफ विभागीय जाँच तेजी से चल निकली थी। उन्ही दिनो भाग्य, भगवान या सयोग कहिए या लखनऊ से दिल्ली तक पाँच सौ किलोमीटर लबे राजनीतिक तिकडम का करिश्मा—प्रदेश के सार्वजनिक निर्माण मत्री का थैला बदल गया। उन्हे हरिजन कल्याण का थैला पकडाया गया जो थैलो मे सबसे हल्का थैला है, पर ऐसा कोई कहता नही क्योंकि वह समाज के सबसे ज्यादा शोषित और पीडित वर्ग

की सेवा का अवसर प्रदान करता है । इस थैलम्थैल बदलाव मे सार्वजनिक निर्माण का थैला जिसे थमाया गया, वह मत्री इंजिनियर साहब का आदमी निकला, या यूँ कहे कि इंजिनियर साहब उसके आदमी निकले । अत इस शर्त पर कि इजिनियर साहब सरकार पर कोई दावा नही करेगे और बदले मे सरकार उनके खिलाफ चलनेवाली कार्रवाई खत्म कर देगी, उन्हे नौकरी से इस्तीफा देने का मौका दिया गया । इसके लिए उन्हे पहले नौकरी मे बहाल किया गया । उसी दिन उनका इस्तीफा मजूर हुआ । दूसरे दिन उन्हे इस उपचुनाव के प्रबध के लिए भेज दिया गया ।

यह सब हो गया और सरकार मे किसी ने कोई ऐतराज नही किया ? नही क्योकि सरकार को कानूनी सलाह मिली थी कि इजिनियर साहब के खिलाफ होनेवाली कार्रवाई मे कई कमजोरियाँ हैं और उसमे उन्हे दंडित नही किया जा पाएगा ।

"चलिए जीजा जी, किसी तरह—इस्तीफा लेकर ही सही, सरकार को एक भ्रष्ट अधिकारी से छुट्टी मिली ।"

"तुम्हारा दिमाग तो सही है ? उन्हे भ्रष्ट अधिकारी कहने का किसी को क्या हक है ? कुछ साबित भी हुआ है ? सीधे-सीधे यूँ क्यो नही समझते कि एक काबिल आदमी ने सरकारी नौकरी छोडकर अब राजनीति मे प्रवेश किया है । पार्टी मे उनकी कितनी साख है, इसका सुबूत तो इस उपचुनाव मे मिल ही गया । सरकार मे उनकी कितनी साख है, यह भी कल साबित हो जाएगा । अखबार नही पढा क्या ?"

तकिये के पास कई मुडे हुए अखबार पडे थे । एक के तीसरे पन्ने पर चश्मे के अभाव मे आँखो को सिकोडते हुए उन्होने कुछ पढने की कोशिश की, फिर उसे मेरी ओर बढा दिया । वहाँ छपा था कि सरकार ने राज्य निर्माण निगम नामक सार्वजनिक उपक्रम मे निरतर घाटे की स्थिति से चिंतित होकर उसके प्रशासन को चुस्त-दुरुस्त बनाने का निर्णय लिया है । उसके प्रबध-निदेशक बदल दिए गए हैं । अखबारी भाषा मे एम डी को 'मार्चिंग आर्डर' दे दिए गए हैं । इसी सिलसिले मे इंजिनियर साहब को निगम का अवैतनिक परामर्शदाता बनाने का विचार किया जा रहा है ।

4

"तो क्या है साव, कि एक नौजवान खेतिहर अपना गाँव छोडकर अपनी हसीन बीवी के साथ शहर की ओर चल पडता है। गाँव में अकाल पडा है। ताल-पोखर, नदी-नाले—सब सूख गए हैं। जानवरो की ठठरियाँ छितरी पडी हैं, वगैरह-वगैरह आसमान मे गिद्ध मँडला रहे हैं ।"

सुनहरी कमानी के चश्मे के नीचे एक नुकीली नाक। उसके नीचे एक बहुत चौडी मुस्कान। प्रेमवल्लभ के सीनियर आनंद साहब ने कहा, "चलो, आगे चलो। गिद्ध आसमान मे चीलो की तरह नही मँडराते।"

"कोई बात नही। तो, अकाल पड़ा है। गाँव-के-गाँव उजड रहे हैं। लोग दाना-पानी की तलाश में दूसरे इलाको की ओर भाग रहे हैं। तभी यह सरदार गाँव मे आकर लोगो को शहर में मजदूरी करने की सलाह देता है। अच्छे दिनों मे भी वह मजदूर इकट्ठा करने के लिए गाँव आया करता था। गाँववाले उसे जानते हैं। शहर चलने के लिए वह बडा जत्था तैयार करता है। उन्हे पेशगी रुपए देता है। हमारा मजदूर भी अपनी बीवी को लेकर उसके साथ शहर के लिए चल देता है।"

प्रेमवल्लभ का यह नाटकीय भाषण मुझमे हैरत पैदा कर रहा है। बचपन में कोयला चुराकर मेरे साथ भागनेवाला लडका, लगडाकर चलनेवाला, जबानदराज, डेली पैसेंजरी की अकड-फूँ में लबी-चौडी बाते भले ही हाँक ले, रेलगाड़ी में बेसुरे ढंग से सिनेमा के गाने भी गा ले, पर इस चमाचम होटल के कमरे मे मेरी और आनद साहब की मौजूदगी मे वह सिनेमा का एक 'सब्जेक्ट' भी इस तरह पेश कर सकता है! अगर इसी वक्त कुर्सी से उठकर बिना लगडाए वह दोनों पैरो से डिस्को करने लगे तब भी मुझे इतना अचभा न होना चाहिए।

कुँअर साहब किसी पुराने तअल्लुकेदार के लडके हैं। जमीदारी टूटने पर बबई चले गए थे। इधर कुछ साल पहले उन्होने दो फिल्मे बनाई हैं। खुद ही पैसा लगाया है, खुद ही डाइरेक्टर हैं, उन्ही की कहानी, उन्ही के संवाद। उसी तरह यह तीसरी फिल्म बनने जा रहा है। इसमे यही की अवधी बोली का बोलबाला होगा। ज़्यादातर यही के ऐक्टर होगे, शूटिंग भी इसी इलाके में होगी। फिल्म यही की समस्याओं पर होगी। बाद मे

यहीं की सरकार से अनुदान झटकेगे, उसी से मनोरजन कर की छूट लेगे।

अब समस्याएँ देखिए ·

"हसीना पहली बार रेल पर बैठी है। उसके साथ कुछ छोटी-मोटी मजेदार घटनाएँ होती हैं। वे सिर्फ हसीना के भोलेपन और दिलकश अदाओ को उभारने के लिए हैं। इनका मेन सब्जेक्ट से कोई खास मतलब नही। ये घटनाएँ स्क्रीनप्ले में वक्त से डाल दी जाएँगी। यही मौका है जब गाँव के गीतो की धुन पर एक गाना भी डाला जा सकता है। गाना हसीना गाएगी।

"जिसका मेन सब्जेक्ट से सीधा तअल्लुक है, वह है छोटा विलेन। वह हसीना के ही गाँव का एक आवारा नौजवान है। वह हसीना के जोबन पर शुरू मे आँख लगाए था। उसे कई बार छेडा भी था। पर हसीना शहर की छुईमुई नही, असली गाँव की गोरी थी। अपने बचाव के लिए उसने इस नौजवान को एक बार तालाब के कीचड मे ढकेला था। एक बार पेड पर चढ़कर अपने को बचाने की कोशिश मे उसे लात मारकर नीचे गिराया था। यह सब फ्लैशबैक मे दिखाया जा सकता है। जो भी हो, इन्ही वजहो से यह नौजवान जिसका नाम आप रगीलाल रख सकते हैं—हसीना के खिलाफ अपने दिल मे ग्रुज रखने लगा था।"

आनद साहब ने कहा, "अब तक कही नौटकी का नाच भी डालना चाहिए। नौटकी की एक अलग से कल्चरल हैसियत है।" आनद साहब वकील तो हैं ही, नाच-गाने के यानी सास्कृतिक आयोजनो के भी शौकीन हैं। नाटक और सिनेमा मे भी दिलचस्पी है। कोई फिल्म यूनिट शूटिंग के लिए आए, तो सबसे पहले उनसे राय लेती है। प्रेमवल्लभ हर मामले मे उनका जूनियर है। वह अपनी कहानी रम पीते हुए सुना रहा है, कुँअर साहब बियर पी रहे हैं। आनद साहब कॉफ़ी। मैं अनन्नास का रस पी रहा हूँ। इसे मैंने पहली बार चखा है।

"बहरहाल," प्रेमवल्लभ ने अपना बयान जारी रखा।

"बहरहाल, यह रंगीलाल रेल मे हमारी हसीना के सामने आ जाता है। कल्लू उस वक़्त प्लेटफार्म पर उतरकर मूँगफली या चना या समोसे या लैया—रामदाना खरीदने गया है। गाँव के कुछ लोग वहाँ मौजूद तो हैं पर अपनी-अपनी धुन मे हैं। आप चाहे तो यहाँ एक सामूहिक ग्राम-गीत भी दे सकते हैं। ऐसे मे यह रगीलाल अपना मुँह हसीना के कान के पास ले जाकर क्या बोलता है ।"

कुँअर साहब ने जो बगुला-शैली मे ध्यानमग्न होकर पूरी कथा सुन और बियर सोख रहे थे, अचानक एक प्रश्न की मछली पर चोंच मारी, पूछा, "इस साली हसीना का कोई नाम भी है या नही ?"

"नाम तो हसीना ही हो सकता है पर गँवारो मे ऐसा नाम शायद चलेगा नही। उसे सीना भी कह सकते हैं पर सेसरवाले भडक जाएँगे। तब क्यो न उसे दीना कहे या उससे भी अच्छा बीना।"

''बीना चलेगा।'' आनंद साहब ने कहा।

''तो क्या है कि रगीलाल बीना के कान मे मुँह लगाकर डाइलॉग बोलता है कि जानेमन, गाँव मे तो बहुत छिपी रही, अब यहाँ शहर मे कभी-न-कभी रगीलाल तुम्हारे काम आएगा।'' बीना उसकी कलाई मरोड देती है। वह तिलमिलाता हुआ डिब्बे के दूसरी ओर चला जाता है।

''अब शहर मे आप इन मजदूरो की बेहाली पर आइए। कुछ आसपास देहात मे भट्ठो पर काम करते हैं, बाकी नई कालोनियों के मकानों पर। बीमारी, गरीबी और बदहाली का नक्शा दिखाइए। ठेकेदार उन्हे चूसते हैं, मालिक लडकियो की अस्मत से खेलते हैं। पुलिस उन्हे लूटने के लिए बार-बार जुए और कच्ची शराब के फ़र्ज़ी मुकदमो मे बद करती है और रिश्वत लेकर या लौंडियों की अस्मत लूटकर उन्हे छोड देती है। बुरी हालत है। उधर रगीलाल आकर बीना को बराबर तग करता रहता है। वह बहादुरी से अपनी अस्मत बचाती है और अपने भोले-भाले शौहर कल्लू से कभी इस मुसीबत का जिक्र नही करती। कल्लू को इधर टी बी हो जाती है। उधर हसीना यानी बीना के पेट मे पहला बच्चा आता है।

''जिस अधबनी कोठी पर हसीना यानी बीना और कल्लू काम कर रहे हैं, उसका मालिक देखने मे मरियल पर असलियत मे बडे ऊँचे किस्म का दादा है। वह जमीन और मकानो का कारोबार करता है, साथ ही अफीम का काला व्यापार भी करता है। ऊँचे दर्जे के गुडो का एक गिरोह उसके साथ है। वह एक पैर से लगडाकर चलता है, दुबला-पतला है, उसकी नाक एक तरफ मुडी है और वह हमेशा आँखो पर काला चश्मा लगाए हाथ मे सफेद दस्ताने और जिस्म पर फैशनेबुल सूट पहने बेत के सहारे तेजी से, मगर जैसा कि कहा, लगडाकर चलता है ।''

आनद साहब ठठाकर हँसे, हँसी और हिचकी के बीच बोले, ''शाबाश प्रेमवल्लभ! यानी तुमने इस फिल्म मे अपने लिए बॉस का रोल निकाल लिया।''

''बेजा किया?'' प्रेमवल्लभ ने ग्लास की पूरी रम एक घूँट में गटक ली, कहा, ''अगर कुँअर साहब यह रोल मुझे दे दे तो कोई ऐतराज नही, पर मैं तो सबजेक्ट की नेचर के हिसाब से चल रहा हूँ।

''तब क्या होता है कि रगीलाल बॉस का सामना बीना से करा देता है। वह उसे देखते ही एकदम चित हो जाता है। कहता है, यह माल हमारे बेडरूम मे आना चाहिए। तभी एक हादसा हो जाता है।

''यह जो कल्लू है न अहमक, टी बी. का मरीज! वह स्मगलरो के गैंग की एक मैटाडोर को कही खडा देखता है। वह बेवकूफी मे उसका मुआयना करने लगता है और क्या पाता है कि उसमे पालीथीन मे पैक किए हुए अफीम के सैकडो पैकेट रखे हुए हैं। है तो बेवकूफ, पर समझ जाता है कि यह अफीम है। वह चीखकर बोलता है यह इत्ती अफीम कहाँ से आई। मैटाडोर मे बॉस के गिरोहवाले जो लोग हैं न, वे उसका मुँह चाँप

देते हैं। मारपीट होने लगती है। थोडी-सी ढुशुम-ढुशुम। कल्लू वही ढेर हो जाता है।

"वे क्या करते हैं कि कल्लू को तेजी से उठाकर मैटाडोर में डाल लेते हैं। टेढी-मेढ़ी गलियो से निकलकर मैटाडोर गायब हो जाती है। अब कैमरा उसे पेड़ो के एक झुरमुट के पास रुकता पाता है। वहाँ सन्नाटा है। चारो ओर नए-नए सरकारी मकान अधूरे बने पडे हैं। शाम हो गई है। एक चौकीदार मैटाडोर के पास आता है। एक मोटा आदमी उससे उतरता है। चौकीदार उसे सलाम मारता है। मोटा आदमी अफसरी अदाज से उसे दो रुपए का नोट देता है और पान खरीदकर लाने को बोलता है। फिर जैसे ही चौकीदार पान लाने के लिए वहाँ से जाता है, गुंडे कल्लू को अधमरी हालत मे एक मकान मे फेक देते हैं। चौकीदार जब पान लेकर आता है तो मैटाडोर को मौके से नदारद पाता है।

"इधर बीना कल्लू के गायब होने से घबरा जाती है। उसके साथ के दो-चार मजदूर कल्लू की तलाश मे निकलते हैं। पर उसका सुराग नही मिलता। तीन दिन के बाद दो बड़ी घटनाएँ एक साथ होती हैं।

"कल्लू के साथवाले मजदूर उसे खोजते हुए सरकारी अस्पताल पहुँचते हैं। वे उसे अस्पताल मे पाते हैं। तब तक शाम हो चुकी होती है। अँधेरा आसमान से उतरकर बडी-बडी इमारतो और रईसो के बॅगलो को अपने मे समेटना चाहता है। यह अँधेरा क्या है? जी, इसी को इन्कलाब कहते हैं। पर पूँजीवादी समाज बडा चालाक है। वह अँधेरे की गिरफ्त से पहले ही दूर निकल गया है। आज दीवाली की रात है। रईसो के बॅगले रग-बिरगी रोशनी मे झलमला रहे हैं। अँधेरा उनका कुछ नही बिगाड सकता। और इधर यह गरीब मजदूर, बेचारा कल्लू अस्पताल मे पडा दम तोड रहा होता है। उसी रात वह दम तोड देता है।

"इधर यह हो रहा है, उधर रगीलाल बीना को बॉस के बॅगले पर पहुँचाने की कोशिश मे है। वह बीना की जान-पहचान के एक मजदूर को यह कहकर बीना के पास भेजता है कि कल्लू का पता चल गया है, बॉस उसका एक नर्सिंग होम मे इलाज करा रहा है और बीना को तुरंत कल्लू को देखने के लिए चला आना चाहिए। बॉस की एक मोटर भी वह इस मजदूर के साथ बीना के पास भेज देता है। घबराई हुई बीना ज्यादा पूछताछ किए बिना मोटर पर चढ जाती है और वह बॉस के चॅगुल मे फॅस जाती है। बॉस के बॅगले को नर्सिंग होम समझकर वह अदर दाखिल होती है। उसके साथी मजदूरो को यह कहकर बाहर रोक लिया जाता है कि डॉक्टर साहब ने अभी बीना को छोडकर किसी और को भीतर जाने से मना किया है।

"अदर बेडरूम मे पहले बॉस की शराबखोरी के सीन, बीना को फुसलाने के डाइलॉग, फिर बॉस उससे जब्र करने की कोशिश करता है। बॉहो की तोड-मरोड। बीना उसके हाथ मे दॉत से काटती है। बॉस की ओर से गाली-गलौज। वह उसकी साडी का ऑचल पकडकर खीचता है। बीना बिस्तर पर पेट के बल गिरती हुई। आधी

खुली हुई साडी। पीछे से फटता ब्लाउज। वीना का एक नगा कधा रोशनी में दमकता हुआ। वीना अपने को झटका देकर छुडाती है, झपटकर एक टेवुल लैंप उठाती है। वॉस—लँगडाता और हाँफता—पीछे से उसकी कमर जकड लेता है। वीना की ओर से दूसरा झटका। वीना अब कमरे के कोने मे। वीना टेवुल लेंप वॉस पर फेंकती है। वॉस का सिर घायल। मत्थे से बहता हुआ खून! वॉस घट्टी दबाता है। तीन गुडे तीन दरवाजो से अदर दाखिल होते हैं। 'पकड लो इस हरामजादी को,' वॉस चीखता है। पेटीकोट और फटे ब्लाउज मे हाँफती, चीखती-चिल्लाती वीना अब गुडो की जकड मे ।"

क्रिकेट का आँखो देखा हाल जैसा बयान करते-करते अब प्रेमवल्लभ ने मेरी ओर देखा, देखकर मुस्कुराया, मुस्कुराकर आँख मारी और क्रिकेट कमेंटरी—अब कुछ इत्मीनान के साथ, जैसे टेस्ट मैच मे किसी वल्लेबाज के छक्के के वाद अब फिर टिप्प-टिप्पवाला वदरग खेल शुरू हो गया हो—फिर से चालू।

"अब यह जो बीना है, उसकी माँ भी किसी जमाने मे इसी शहर मे मजदूरी करने आई थी। बीना के पैदा होने के पहले उसके एक वच्चा इसी शहर मे हुआ था। मज़दूरो की खस्ताहाल जिदगी मे उसने इस बच्चे को एक भट्ठे पर पेड के नीचे जनम दिया था। जनम की दूसरी रात जब सब मजदूर थककर सो रहे थे, एक लकडबग्घा इस बच्चे को उठा ले गया। रात के वक्त उस इलाके मे गश्त करते हुए पुलिस के दो सिपाहियो ने लकडबग्घे को ललकारा, उस पर पत्थर फेके और दहशत मे लकडबग्घा उस वच्चे को राह मे छोडकर भाग निकला। यह चौवीस साल पहले की वात है।

"इस जिले के पुलिस कप्तान के कोई बेटा न था। सिपाहियो को मालूम था कि हमारे वडे साहब किसी बच्चे को पालना चाहते हैं। वे उसे उठाकर कप्तान साहब के घर ले गए। उसे कप्तान साहब की बीवी ने वडे लाड से पाला-पोसा। यह लडका बीना का सगा भाई है। पर उसे यह मालूम नही है। उधर कप्तान साहब आई जी पुलिस होकर रिटायर हो चुके हैं। यह लडका—जिसका नाम अशोक है—अब खुद आई पी यस हो चुका है और इसी शहर मे असिस्टेट सुपरिटेडेट आफ पुलिस होकर तैनात है। वह बॉस की कारस्तानियो को शुबहे की निगाह से देखा करता है और दो-चार बार इन दोनो में कशमकश भी पैदा हो चुकी है।

"अब ड्रामा देखिए, एक ओर तो कल्लू है जो अस्पताल में दम तोड़ रहा है, दूसरी ओर उसका असली साला अशोक यानी मिस्टर अशोक, आई. पी. यस है जो अपनी जीप पर रात के वक्त गश्त पर निकला है, तीसरी ओर उसकी वहन बीना है जिस पर यह लँगडा बॉस जिना विल् जब्र, यानी रेप करने जा रहा है। वँगले के पिछवाडे की पतली सडक से अशोक की जीप निकल रही है। बीना की चीखे सुनकर वह जीप रोक देता है, सिपाहियो को मुस्तैद रहने की हिदायत देकर वह वँगले की चहारदीवारी मे अकेला कूद जाता है। "

फिल्म की कहानी के बहाने प्रेमबल्लभ की बदतमीजी मेरी बरदाश्त के बाहर पहुँच रही थी। मैं उठकर धीरे-से कमरे के बाहर निकल आया।

स्वत.चालित लिफ्ट मे अकेले डर लगता, इसलिए पाँचवी मंजिल से सीढियाँ उतरकर नीचे आया। होटल की लंबी-चौडी लॉबी मे सोफे पडे थे। उन पर भडकीली साडियो और नक्शेवाजीवाले सूट-बूट मे सजे लेडीज एड जेंटिलमैन अपने-अपने लिए बडी लियाकत से कोई भूमिका चुनकर उसे बडी क़ाबिलियत से निभाने मे लगे थे। कोई उद्योगपति बना था, कोई ऊँचा अफसर, कोई नेता, कोई अभिनेता। लेडीज के लिए सिर्फ एक भूमिका बची थी, हिंदुस्तानी या विलायती फिल्मोवाली किसी मनपसद अभिनेत्री की। सब अपने-आपसे बहुत खुश, अपने-आपको कोई वडी शै बनाकर उसे दिखाते हुए। हो या न हो, बहरहाल, मुझे वे सब ऐसे ही लगे।

मैं जो पिछले सालो अपनी महत्वाकाक्षा मे उत्तर प्रदेश को-ऑपरेटिव बैंक के क्लर्क की हैयिसत से—जिसे ज्यादा हैसियतमद बनाने के लिए 'असिस्टेट' कहा जाता है—ऊपर उठने की सोच भी नही पाया था, इस रईसाना हवा मे उड नही पाया; कुछ और दब गया, मन मे भारीपन महसूस करते हुए एक कोने मे सोफे पर जाकर बैठ गया। घर की चिंताएँ, दो-तीन महीने बाद होनेवाले कानून की परीक्षाएँ, लगभग खाली जेब, मजदूर यूनियन के झमेले, खासतौर से प्रेमबल्लभ की जजाल-भरी दोस्ती और सबसे पहले और सबसे बाद जसोदा कहाँ होगी और क्या कर रही होगी ? और उसी के साथ, रघुनाथ—हरी ट्रेकर का मुटल्ला मालिक—कहाँ होगा और क्या कर रहा होगा ? फिर भी, जो भी हो, ये सारे विचार बेचैनी की चींटियाँ बने हुए दिमाग के पिछवाडे रेगते रहे। दिमाग का सदर दरवाज़ा ऑखो के आगे फैली हुई जिंदगी के लिए खुला रहा—लॉबी की चकाचौंध, नफासत से उठते-बैठते रईसो की गुटरगूँ, आसमान से जमीन पर उतरकर आई हुई, गोया आसमानवालो के लिए आरक्षित अपनी लचकती काया को उनकी बॉहो मे सौंपने के लिए अकुलाती हुई हसीनाएँ, वगैरह वगैरह।

यह सब नकली है। ऐश और ऐयाशी का नाटक है। मुझे एक पल के लिए ऑखे मूँद लेनी चाहिए, जब उन्हे खोलूँगा तो यह सब कही नही होगा। एक छिछली नहर का किनारा होगा, ऊसर के हमले से जलती हुई धरती होगी, दो शताब्दी पुराना ठूँठो से भरा आम का बाग होगा। वही हमारी असलियत होगी।

सोफे पर फैलकर, थककर, मैंने ऑखे मूँद ली। कुछ ही पलो मे कधो पर किसी की उँगलियो का कसाव महसूस किया।

"अरे वाह, तुम यहाँ जमे हो! मैं तो समझा था कि खिसक लिए।" कहता हुआ प्रेमबल्लभ मेरे पास आकर बैठ गया।

"मैं तो तुम्हारे ही इतजार मे रुक गया था।"

"तो चलो," कहकर प्रेमबल्लभ उठ खडा हुआ। पर बाहर चलने के बजाय मेरी

बॉह पकडकर उधर चलने लगा, जिधर मधुशाला का साइनबोर्ड था। कुछ कहना-सुनना बेकार था। अगले ही मिनट मे हम दोनो बार के आगे मोढो पर बैठे थे, उसके सामने रम का एक ग्लास था जिसे बारमैन ने नाक सिकोडने से भी ज़्यादा बेहूदा हरकत से--यानी ऑख के कोनो को सिकोडकर—पेश किया था। मैं प्लेट मे रखी मूँगफली टूँगता रहा।

"कोयला चुराकर हाईस्कूल पास किया, बिना टिकट रेल पर चलकर वकालत पास कर ली, अब इस फिल्म के बहाने एक दुखी बेवा को जलील करके तुम साले क्या साबित करना चाहते हो ? वकालत तुम्हारे लिए काफी नही है ?"

मेरी इस तल्खी का उस पर कोई असर नही हुआ। जैसे कोई बडा नेता किसी नाराज पत्रकार का कोई तीखा सवाल चुपचाप सुन ले, उसने मेरी बात सुनी। फिर जैसे वह नेता सवाल का जवाब किसी पुरमजाक कहावत से दे, उसने जवाब दिया, "आगे-आगे देखिए होता है क्या।"

बडे अपनापे से समझाया, "देखो भाई, फिल्मो से मेरा कुछ लेना-देना नही, सिवाय इसके कि मैं यारो का यार हूँ। आनद साहब मेरे सीनियर हैं। उन्होने ही कुँअर साहब से मिलाया। कहा कि यहाँ की हालत पर वे एक फिल्म बनानेवाले हैं, कहानी की तलाश मे हैं। मैंने सोचा कि तब अपने गरीब मजदूर भाइयो की दर्द-भरी दास्तान पर ही कैमरा क्यो न तान दिया जाए। इसमे क्या खराबी है ? यह तो, समझ लो, समाज-सेवा हुई। कुँअर साहब कहानी के लिए पैसा देनेवाले तो हैं नही। कुछ खिला-पिला देगे, ज्यादा-से-ज्यादा हजार-दो हजार रुपए दे देगे। रुपिया मिला तो उसका पाँचवॉ हिस्सा मैं बाकायदा अपनी यूनियन को दान कर दूँगा। कोई ऐतराज है ?"

कोई ऐतराज सुनने के पहले ही उसने कहा, "अच्छा इसे छोडो। परमात्मा जी से कल क्या बात हुई ?"

बाते तो बहुत हुई थी पर राजनीति से उनके मोहभग और इंजिनियर साहब के कायाकल्प की बात बताने का कोई तुक न था। मैंने वही बताया जो वह जानना चाहता था। कहा, "सुरेस के मूक-बधिर स्कूल मे रहने के लिए वे तीस रुपिया महीना दे देगे। यही नही, शाम को दवाखाना चलाने के लिए उन्होने दो सौ रुपए की सहायता भी दी है। वह रुपिया मैं आज बैंक मे जमा कर आया हूँ।"

"यह हुई कोई बात!" कहकर उसने ग्लास खत्म किया और जेब से सौ रुपिए का नोट निकालकर बारमैन की ओर बढा दिया। जब वह फुटकर रुपए बिल के साथ तश्तरी मे सजा रहा था, प्रेमबल्लभ ने कहा, "कोई-कोई दिन बडा शुभ होता है। कल ही अध्यक्ष जी के घर जाकर दवाखाने के लिए मैं उनसे चार सौ रुपए ले आया हूँ। डॉक्टर साहब ने कहा था, वहाँ पर बच्चों का वज़न लेने के लिए एक मशीन चाहिए। अध्यक्ष जी उसका खर्च देने को राजी हो गए हैं। चार सौ रुपए उन्होने वही उसी वक्त नकद हाथ मे पकडा दिए।" और फिर वही चार शब्द, "यह हुई कोई बात!"

मेरा ध्यान तश्तरी मे पडे हुए बीस-दस-पाँच के नोटो पर था । कहा, "पर प्रेमवल्लभ, तुमने अभी वह रुपए बैंक मे जमा नही किए । है न ?"

"अपना बैंक तो यहाँ है ।" कहकर उसने पतलून की जेब थपथपायी और पाँच रुपए का एक नोट बैरे के लिए छोडते हुए बाकी रुपए तश्तरी से उठाकर उसी जेब मे ठूँस लिए ।

स्टूल से नीचे उतरते हुए मैंने कहा, "कल शाम तुम्हारे साथ दफ्तर मे बैठूँगा । तुम्हे एक-एक पैसे का हिसाब देना होगा ।"

"जरूर-जरूर, कल शाम जरूर बैठेगे ।" उसने ऐसे उत्साह से जवाब दिया जैसे वह किसी काकटेल पार्टी का न्यौता स्वीकार कर रहा हो ।

सत्तारूढ पार्टी का जो पहलवान फैजाबाद मे उपचुनाव लड रहा था, वह केद्र मे इस समय छोटा मत्री था । पहले वह राज्य सरकार मे मत्री रह चुका था । विधान सभा का चुनाव हार जाने से वह अचानक सडक पर आ गया । पर सिर्फ थोडे दिनो के लिए, क्योंकि तुरत ही वह केद्र मे राज्य मत्री बना लिया गया । वह इस वक्त नई दिल्ली के एक बँगले मे रह रहा था । पर सविधान की निगाह मे अभी सडक पर ही था । मत्री बनने से छह महीना के भीतर अगर वह सडक से ससद मे न पहुँचा तो उसे दुबारा ससद से सडक पर आना पडेगा । इसलिए जीतना उसके लिए नैतिक और राजनैतिक—लगभग आध्यात्मिक मजबूरी थी । चुनाव मे उसके विरोधी उम्मीदवार हारे या न हारे, उसे जीतना ही था ।

जीतने की पूरी-पूरी आशा थी । सभी साधन थे, बोलने का शऊर भी था । बल्कि वह कुछ ज्यादा ही था । हिंदी, उर्दू, अग्रेजी—तीनो मे वह बडी आसानी से मौलिक सूक्तियाँ निकाल सकता था जो अखबारो को बहुत भाती थी । इसके लिए मशहूर था । अखबारवालो को उससे और उसको अखबारवालो से बात करने मे बडा मजा आता था । जनता मे उसकी शक्ति का कोई आधार हो या न हो, अखबारो मे उसकी शक्ति का आधार यही था ।

विरोधियो ने उसकी और उसकी पार्टी की नालायकी के सुबूत मे आँकडे दिए थे, दिखाया था कि इस चुनाव क्षेत्र मे आज भी गरीबी की रेखा के नीचे रहनेवालो का प्रतिशत सबसे ऊँचा है । उसका जवाब साथियो, मैंने भूगोल मे विषवत् रेखा और कर्क रेखा के बारे मे पढा है । ये सब रेखाएँ फर्जी हैं, और गरीबी की रेखा भी फर्जी है । अगर हम मान ले कि गरीबी की कोई रेखा होती है तो यकीन मानिए उसके नीचे होने का यह मतलब नही कि आप छोटे हैं या कि आप बुद्धि की रेखा के भी नीचे हैं । सच तो यह है कि जो गरीबी की रेखा से जितना ही नीचे है, वह बुद्धि की रेखा से उतना ही ऊपर है । इसीलिए वोट के लिए मुझे आपसे ज्यादा नही कहना है । आपकी बुद्धिमत्ता पर मुझे उतना ही भरोसा है, जितना हमारे विरोधी दोस्तों को आपकी गरीबी पर है । पर मैं

सिर्फ एक वादा कर सकता हूँ । अगर आपने मुझे मौका दिया तो मैं गरीबी की रेखा ही को मिटा दूँगा । और तब न कोई गरीब रहेगा, न अमीर ।

मुदितमन पत्रकारो ने इस भाषण को कही बडी-बडी सुर्खियो मे, कही छोटे कालम के बीच मोटे हरूफ मे, कही मुख-पृष्ठ पर चोकोर घेरे मे, कही उसके चित्र के नीचे उद्धरण-चिह्नो मे छापा । यह नही छापा कि चुनाव-अभियान मे दूर-दूर के सैकडो गिरोहबद अपराधी, शातिर गुडे, शोहदे और लुच्चे भी उसकी मदद के लिए पहुँच रहे हैं ।

निर्माण-निगम के अवैतनिक अफसर होने के नाते सरकारी कर्मचारी-आचार-संहिता से बरी होने का फायदा उठाते और दूसरो को इसका फायदा देते हुए इंजिनियर साहब वहाँ पहले ही पहुँच गए थे । वे चुनाव-अभियान के वित्तीय प्रबधको मे थे । हमारी यूनियन के अध्यक्ष और राज्य के भूतपूर्व श्रममत्री लालबाबू और उनकी दिलकश बातूनी बीवी—ये भी दो दिन पहले उधर ही गए । वे तो अभियान मे आर्मी सप्लाई कोर के कर्नल भर होगे । उन्ही के पीछे-पीछे बदूक की नली से शक्ति निकालने की चलती-फिरती मिसाल, चिकने-चुपडे चेहरे, सिल्क के कुर्ते और कलकतिया धोती मे लेफ्टिनेट जनरल की-सी हैसियतवाले सजीवन भाई उर्फ श्री रामसजीवन विधायक भी अपनी शाकाहारी दिखनेवाली, पेट्रोल की जगह शायद गोमूत्र से चलनेवाली जीप पर गए । यह दूसरी बात है कि उनके आगे-पीछे क्रव्यादि वर्ग से भरा एक-एक ठेला था जिसकी हर सवारी के हाथ, कमर या कधे मे राइफल, तमचा या बंदूक थी । ये सजीवन भाई के अगरक्षक भर थे । सजीवन भाई का स्थानीय जन-सपर्क महाप्रबधक अस्थाना भी अपनी मोटर साइकिल साथ मे लादकर पीछेवाले ठेले से पहुँचा ।

उधर यह भी पता चला कि हरे ट्रेकरवाला रघुनाथ अपने फौज-फाटे के साथ दूसरे रास्ते से रणक्षेत्र के दूसरे छोर पर दूसरे उम्मीदवार को उम्मीद बँधाने के लिए पहुँच रहा है । शहर के सारे गिरोहबदो का नाम गिनने से क्या फायदा, चुनाव-अभियान चलते ही शहर के सभी अपराध रिपोर्टर कुछ दिनो के लिए बेरोजगार हो गए । कॉफी हाउस मे इस दूरवर्ती चुनाव की अपराध कथाएँ सुनने और कॉफी पीने के सिवाय उनके लिए कोई काम नही बचा ।

वैसे तो शाम को यूनियन दफ्तर मे प्रेमवल्लभ एक घटा बैठता था और लगभग साढे सात बजे विधायक-निवास पर वापस लौटता था, पर सप्ताह मे दो दिन जब हमारे डॉक्टर साहब मजदूर-परिवारो की मुफ्त चिकित्सा के लिए आते थे, वह विधायक निवास मे एक घटा देर करके आता था । पर आज यह मालूम हुआ कि डॉक्टर साहब भी चुनाव क्षेत्र मे चले गए हैं और दो-तीन महीने के लिए मजदूरो की दवा-दरमत का काम घपले मे पड गया है । चुनाव-अभियान मे वे गए नही, बल्कि भेजे गए थे और उन्हे बाकायदा सरकारी ठप्पे से भेजा गया था ।

हुआ यह कि चुनाव क्षेत्र मे जब प्रदेश के स्वास्थ्य मत्री प्रचार-भाषणो के लिए गए तो जनता ने उन्हे कई शिकायतो के साथ उन चिकित्सालयो, औषधालयो, प्राकृतिक स्वास्थ्य केद्रो आदि की सूची खेद, रोष और आक्रोश के साथ दी जहाँ डॉक्टर नही थे । इसमे वे ग्रामीण अस्पताल शामिल न थे जहाँ डॉक्टर तैनात होते हुए भी रहते न थे और ग्राम प्रधान और क्षेत्र प्रमुख के घर के आदमी बनकर उनकी सहमति और सहयोग से शहर मे अपना क्लिनिक चलाते हुए सिर्फ तनख्वाह लेने के लिए दो दिन प्रति मास की दर से गॉव मे आ जाया करते थे । जो भी हो, स्वास्थ्य मत्री को लगा कि चुनाव के दिनो मे क्षेत्र के ग्रामीण दवाखानो मे डॉक्टर का न होना उनके उम्मीदवार की राजनीतिक तदुरुस्ती पर बुरा असर डाल सकता है । इसलिए उन्होने शहर के अस्पतालो से कई डॉक्टरो को, जो जगह न होते हुए भी बडे आदमियो के दामाद, भाई या लडके होने के नाते झुड-के-झुड वहाँ भर लिए गए थे, तुरत उपर्युक्त ग्रामीण दवाखानो मे जाकर काम सँभालने का आदेश दिया । आदेश इतना 'आवश्यक एव त्वरित' था कि सब डॉक्टरो को उनके पिता, ससुर, भाई आदि के ओहदे या हैसियत का लिहाज किए बिना एकदम से कार्य मुक्त कर दिया गया और चौबीस घटे मे फैजाबाद पहुँचने को कहा गया । इतना जरूर देखा गया कि शहर मे टिके रहने के अपने सवैधानिक और मौलिक अधिकार की रक्षा के लिए कोई डॉक्टर हाई कोर्ट मे याचिका दायर करके स्थगन आदेश न ले ले । इस अप्रिय, पर लोकप्रिय घटना को बचाने के उद्देश्य से डॉक्टरो को इशारा कर दिया गया कि उन्हे शहर मे अपने मकान छोडने की जरूरत नही है । सभी जान गए कि यह चक्कर गिने-चुने दिनो का है । इसलिए दो-एक डॉक्टरो को छोडकर, जिन्हे अचानक अपने मे या अपने मॉ-बाप मे किसी साघातिक बीमारी के लक्षण मिले, सभी डॉक्टर फुर्ती से चुनाव क्षेत्र मे अपने-अपने पदो पर जाकर, वोटो की सबसे बडी दुश्मन नसबदी को छोडकर जनता मे सब प्रकार की चिकित्सा-सेवा करने लगे । उनमे हमारे डॉक्टर साहब भी थे ।

मैं विधायक-निवास के अपने कमरे मे आजकल प्राय सात बजे शाम तक लौट आता था । आज भी समय से लौटा । विधायक-निवास मे, जहाँ के बरामदो मे सामान्यत सब्जी मडी, मछली मार्केट और रेलवे प्लेटफार्म का-सा दृश्य रहता था, आजकल सन्नाटा छाया था । विधायक लोग अपने-अपने उम्मीदवारो की खैरख्वाही मे चुनाव क्षेत्र मे चले गए थे या कूटनीतिक अस्वस्थता से अस्पतालो मे भर्ती थे । उनके लग्गू-भग्गू भी इधर-उधर लगे या भगे हुए थे । सिर्फ हमारे-जैसे कुछ लोग विधायक-निवास मे रात को लेटने के लिए आते और दिन को प्राय अपने-अपने धधे से निकल जाते थे ।

प्रेमबल्लभ को साढे सात तक आ जाना था । उससे आज यूनियन के रुपयो का हिसाब लेना था । कल रात होटल मे कुँअर साहब के साथ हुए कथा-सत्र के बाद और नीचे मधुशाला मे उसके मधुपान के दौरान यही तय हुआ था । घटे-भर कमरे मे बैठे रहने के बाद भी जब वह नही आया तो मैंने बाहर बरामदे मे टहलना शुरू किया । वहाँ

एक मोटर मैकेनिक मिला जो नीचे किसी सरकारी गैरेज मे मोटर मरम्मत की अपनी वर्कशाप चलाता था और हमारे ही तल्ले पर एक विधायक के फ्लैट मे रह रहा था । उसने वताया कि शाम की गाडी से प्रेमवल्लभ भी फैजावाद के चुनाव मे काम करने के लिए गया है ।

"जल्दी मे था, इसलिए आपको कोई चिट्ठी नही लिखी । मुझसे खासतौर से कह गया है कि आपको वता दूं । उसका कल सवेरे तक वहाँ पहुँचना जरूरी है ।" यह तो हुआ संदेश और उसके बाद यह समीक्षा, "आजकल वहाँ चाँदी वरस रही है । आप भी एक चक्कर क्यो नही लगा आते ?"

सवेरे देर से नीद टूटी क्योंकि रात मे देर से आई थी ।

पहले भी कई वार देर से नीद आई थी पर अँधेरे मे आँखे मूँदकर लेटने पर ज़्यादातर उकताहट नही होती थी । जागने और सोने के वीच के सहन मे एक सिनेमाघर होता है, जिसमे मैं अपनी खोपडी से तरह-तरह की फिल्मे निकालकर चलाता रहा हूँ । हर फिल्म मे खुद ही पटकथा लिखता हूँ, खुद ही सवाद रचता हूँ, खुद ही उसका निर्देशन करता हूँ । हर फिल्म का खुद ही प्रमुख नायक रहता हूँ और उस सिनेमाघर में खुद ही फिल्म का अकेला दर्शक भी । इन फिल्मो मे मैं कभी अतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनारों में आधुनिक राजनीतिशास्त्र पर फ्रेंच मे भाषण देता हूँ, कभी पंडितों की सभा मे न्याय-दर्शन का विश्लेषण सस्कृत मे पेश करता हूँ, कभी ट्रेन डकैती में निरीह मुसाफिर का वाना छोड़कर अपने रिवलाल्वर के अचूक निशाने से एक की छाती पर गोली चलाता हूँ, दूसरे की कलाई घायल करके उसके हाथ के तमचे को नाकाम कर देता हूँ; तीसरे को जान बचाने के लिए चलती गाडी से नीचे कूदने पर मजवूर करता हूँ । कभी किसी वडे कारखाने का मालिक वना हुआ विलायती कार मे उतरकर सीधे अपने दफ्तर मे पहुँचता हूँ और उसके दरवाजे पर इंजिनियर साहव को अपना इतज़ार करते हुए पाता हूँ । जाहिर है कि उनको मेरे यहाँ नौकरी नही मिलती । कभी रास्ते मे एक विलायती लडकी द्वारा हाँकी जाती हुई वडी गाडी को रुकता हुआ पाता हूँ और देखता हूँ कि हवा मे उडते हुए वालो और फैली वाँहो से जो मुझे अपने गले लगाने के लिए वढी आ रही है वह मेरी कैंव्रिज की पुरानी दोस्त है । कभी मैं मिनिस्टर वनकर किसी भ्रष्टाचारी चीफ इंजिनियर को वरखास्त करता हूँ, कभी क्रांतिकारी नेता वनकर किसी निकम्मे पुलिस अफसर के विल्ले उतरवाता हूँ । इनमे कई फिल्मे ऐसी भी हैं जिन्हे आप 'ब्लू फिल्म' कह सकते हैं । इनमे मेरे प्रेमकाडो की धीमी रफ्तारवाली कथाएँ हैं जिन्हे मैं खुद एकाध रीलो के वाद हिचककर वंद कर देता हूँ ।

फिल्मे सैकडो हैं और अलग-अलग कथाओ की हैं पर प्रत्येक का मूल विषय घूम-फिरकर वस एक है और वह है मैं शक्तिमान् । इन फिल्मो मे अभी तक कोई ऐसी रील नही जुडी है जिसमे मैं दूर देश से आए विपन्न मजदूरो से मिलकर

सुपरवाइजर की हैसियत से उनके दुख-दर्द मे शरीक हाता, उनक लिए खटता, और अत मे उन्ही का होकर रह जाता ।

पिछली रात जब मैंने सिनेमाघर सजाकर प्रोजेक्ट पर अपनी फिल्म चढ़ाई तो सबकुछ धुँधला-धुँधला दिखाई पडा । आज मैं खासतौर से एकाध ब्लू फिल्मे लगाना चाहता था । जी नही, सावित्री या हँसी-खुशी के दिनोवाली मेमसाहब को लेकर नही, विधायक-निवास मे काम करनेवाली एक लडकी को लेकर जो रोज हमारे बरामदे से गुजरती थी और अकेलापन महसूस करनेवालो से बडी हमदर्दी के साथ पेश आती थी । पर बात बनी नही । दरअस्ल, कल रात मैं कोई सिनेमा नही देखा मका । सिर्फ उलझनो मे उलझा रहा ।

नेता के हत्यारे को सजा देने की उलझन । इंजिनियर साहब को नीचा दिखाने की उलझन । परमात्मा जी को खीचकर अपने मजदूर आदोलन मे लाने की उलझन । ठेकेदार साहब को फौजी रम की पाँच बोतले पहुँचाने की उलझन । फिर प्रेमबल्लभ का टेटुआ दबाकर उससे यूनियन का रुपिया वसूलने की, विधायक-निवास छोडकर अपने रहने की कोई जगह खोजने की उलझन । और पृष्ठभूमि मे गाँव-घर की सभी उलझने ।

सवेरे देर मे उठने पर जो उलझन खोपडी को मथती हुई मिली वह दवाखाने मे किसी डॉक्टर या कपाउडर को पहुँचाने की थी ।

लाल बाबू प्रतापगढ जा चुके थे । पर हमारी यूनियन के सरक्षक अत्यत बूढे भूतपूर्व गवर्नर पाल बाबू यही थे । कोठी पर पता चला, वे नाश्ता कर रहे हैं । मुझे अदर बुला लिया गया । नौकर ने मकान के पिछले हिस्से मे पहुँचा दिया । लॉन मे वे नाश्ता कर रहे थे ।

उनका नाश्ता देखिए एक तश्तरी मे अँखुआये हुए चने, एक मे फलो की सलाद, एक मे गरम टोस्ट । उसी के पास मक्खन, शहद, नमक आदि, एक बडे जग मे धुँआ उठाता दूध । मेरे लिए यह सब बेकार था । मैंने हर चीज के लिए 'नही' कहा तो एक साफ-सुथरी, नौजवान नौकरानी से उन्होने कहा, "इनके लिए रसगुल्ले, गजक और मठरी लाओ ।" फिर मुझसे "चाय तो पीएँगे न ?"

चाय पी । रसगुल्ले, मठरी और गजक खाया, एक संतरा भी । खाते-पीते यूनियन के दवाखाने की समस्या बयान की । दूध का ग्लास नीचे रखकर वे बोले, "ये दवाखाना कहाँ है ?"

यूनियन के दफ्तर का नक्शा समझाया, डॉक्टर साहब के तबादले की बात बताई, कहा कि कोई कपाउडर ही वहाँ पहुँच जाए तो मामूली बीमारियो की दवा देता रहेगा ।

"कपाउडर ? अब उसे कपाउडर नही कहा जाता । वह फार्मेसी ऐक्ट है न ! अब उसे फार्मेसिस्ट कहा जाता है ।"

तन पर महीन खादी का कुर्ता और सँकरी मोहरी का पायजामा, उस पर गाँधी आश्रम का ऊनी गाउन, सफेद बचे-खुचे बाल शायराना अदाज मे खोपडी और मत्थे पर छितरे हुए । कान मे सुनने की बटन, नकली दाँत, आँखो पर मोटे ग्लास का चश्मा । मौसम और उम्र के खिलाफ पूरी किलेबदी से लैस । उनका सशोधन सुनकर मैंने कहा, "तो दवाखाने के लिए एक फार्मेसिस्ट ही कही से भिजवा दे । उसे कुछ देने का भी इतजाम कर दिया जाएगा ।"

"किस दवाखाने मे ?"

सवाल काफी मानसिक विचार-विमर्श और सधान-अनुसधान के बाद किया गया था । मैंने कहा, "यूनियन के दवाखाने मे ।"

"किस यूनियन के दवाखाने मे ?"

मैंने उन्हे यूनियन के जन्म, उत्थान और अब होनेवाले पतन का पूरा ब्यौरा दिया । बोले, "पर मेरा इस यूनियन से क्या सरोकार है ?"

"आप इसके सरक्षक हैं, लाल बाबू इसके अध्यक्ष हैं । आपको याद होगा, उन्होने सरक्षक बनने के लिए फोन पर आपकी अनुमति ली थी । आजकल वे फैजाबाद के चुनाव मे गए हैं । नही तो आपको कष्ट न देता ।"

"ओह । लाल बाबू," अचानक जैसे उनकी याददाश्त का स्विच किसी ने दबा दिया हो । "उन्होने मुझको फोन किया था ? कब ?"

मैं, इसकी भी याद दिलाई । नकली बत्तीसी झलकाते हुए उन्होंने कहा, "आप कहते हैं तो ठीक ही होगा । बडी अच्छी बात है । आप-जैसे नौजवान इतना भारी काम हाथ मे लिए हैं, सुनकर अच्छा लगा । बहुत अच्छा लगा । यही तो प्रजातंत्र का कमाल है । सही नेतृत्व की इसमे कभी कमी नही रहती । जाइए, कोई अच्छा-सा क्वालीफाइड फार्मेसिस्ट खोज लीजिए । पर हर काम कायदे से होना चाहिए । बात-बात पर लोग रिट पेटिशन दायर कर देते हैं । अखबारो मे इस जगह का विज्ञापन जरूर दे दीजिएगा । फिर एक चयन समिति बनाइए । उसमे खुद तो रहिए ही, एक उम्दा-सा डॉक्टर भी बतौर एक्सपर्ट रखिए । मैं उसमे नही रहना चाहूँगा । पर मुझे उसमे रखना ही चाहते हो तो चुनाव किसी शाम को यही कराना होगा । मैं शाम पाँच से छह बजे तक ही खाली रहता हूँ ।"

"अच्छे क्वालीफाइड फार्मेसिस्ट आजकल आसानी से मिलते नही हैं । कोशिश कीजिए, शायद कोई मिल जाए ।"

"पर यूनियन के सरक्षक के नाते आपसे मैं तो यह कहने आया था कि "

"कौन-सी यूनियन ?" कहकर उन्होने दूध का ग्लास हाथ मे उठा लिया ।

काम पर जाने की देर हो रही थी, फिर भी सोचा फार्मेसिस्ट के लिए परमात्मा जी से भी बात कर ली जाए । वे कचहरी जा रहे थे, मोटर मे बैठ चुके थे । मुझे देखते ही बोले,

"शाम को आना । तभी बात होगी ।"

मैंने कहा, "दिन को सोच रखिएगा, हमारे डॉक्टर साहब का तबादला फैजाबाद के किसी प्राइमरी हेल्थ सैंटर मे हो गया है । शाम को कोई मरीज देखनेवाला नही है । हफ्ते मे दो दिन की बात है । किसी फार्मेसिस्ट का ही इतजाम हो जाए तो ।"

"फार्मेसिस्ट क्या होता है ?"

"कपाउडर ।"

"तो कपाउडर कहो न । अच्छा, सोचूँगा ।"

उनकी गाडी के चल देने पर पीछे जो गाडी खडी थी, वह भी स्टार्ट हुई । पर मुझे देखकर रुक गई । गाडी मे बैठे-ही-बैठे आनद जी ने कहा, "आप हैं ? आपको तो मालूम होगा—प्रेमबल्लभ कहाँ है ?"

"फैजाबाद के उप-चुनाव मे भाग गया है ।"

"भाग गया है ?"

मेरे दिमाग मे यूनियन के रुपए घूम रहे थे जिनका प्रेमबल्लभ के हाथो गबन हो चुका या हो रहा था । तभी भागने की बात अचानक मुँह से निकल पडी थी । पर उनसे यह सब कहना बेकार था । मैंने कहा, "आजकल सभी वही को भाग रहे हैं । प्रेमबल्लभ भी उन्ही मे है ।"

"कब तक लौटेगा ?"

"पता नही । पर आठ-दस दिन तो लग ही जाएँगे । चनाव के पहले तो लौटेगा नही ।"

"यह तो झझट हो गया । सबेरे विधायक-निवास पर आदमी भेजा था । प्रेमबल्लभ मिला नही । उधर कुँवर साहब कल बबई जा रहे हैं । वे आज ही उससे मिलना चाहते हैं ।"

"फिल्म की कहानी के बारे मे ? पर वह तो बकवास है ।"

"बकवास नही है भाई, बडी कडकदार चीज है । बस उसमे थोडा मिर्च-मसाला और डालना है । कुँवर साहब चाहते हैं कि कोई ऐसा किरदार और डाला जाए जिसे नचाया जा सके । कैबरे के एकाध सीन ।"

मैंने सोचने की, यानी यह दिखाने की कोशिश की कि बडी गहराई से सोच रहा हूँ कहा, "इसका एक्सपर्ट तो प्रेमबल्लभ ही है । पर आप चाहे तो खुद कुँअर साहब को एक सुझाव दे दे । वह जो हसीना है न, मजदूर की बीवी, जिसके साथ बलात्कार दिखाए बिना फिल्म जमती नही है, क्यो न उसी से कैबरे नचवा ले ? क्या ख्याल है ?"

आनद जी ने गाडी स्टार्ट कर दी, बोल, "तब तो कहानी सचमुच बकवास हो जाएगी ।"

उनके जाने पर मैंने देखा, सावित्री बरामदे मे खडी है । दूर से पहले से ज्यादा मोटी, पहले से ज्यादा खुश दिखी । नजदीक जाने पर मोटी नही, सिर्फ खुश दिखी, उतनी ही

खुश जितनी कि पिछली मुलाकात मे स्वेटर बुनते हुए गुमसुम दिखी थी।

"बैठोगे नही ?"

"क्या बैठूँ ? उस दिन तुम चुपचाप मुँह फुलाए स्वटर बुनती रही, मुझे घास नही डाली।"

"बैठ जाओ, अभी घास मँगाती हूँ। या भूसा लोगे ?" कहती हुई वह खुद एक आरामकुर्सी पर बैठ गई। मै खडा रहा, बोला, "मुझे काम पर जाना है।"

"उस दिन मैं वकील साहब से नाराज थी। इसीलिए किसी से नही बोल रही थी। अब सुलह हो गई है। यह गुलाब अच्छे लगे ?"

गुलदस्ते मे लगे गुलाबो पर मेरी निगाह नही पडी थी। दरअस्ल, इस कोठी पर जैसे कि बडे आदमियो की दूसरी जगहो पर, चीजो पर मेरी अलग-अलग निगाह नही पडती थी। खूबसूरत लॉन, खिले हुए रग-बिरगे फूलो की लहलहाती क्यारियाँ, लताएँ, पेड-पौधे, अदर की सजावटे—सबके बारे मे मुझे लगता था कि सपत्ति का फरिश्ता किसी जादू के जोर से इन जगहो को एक साथ अपनी मनपसद डिजाइन से सजा गया है। गाँव मे आम, नीम, पाकड या महुआ का पेड तो हम अपने हाथो उगाते हैं। इसलिए उनकी बढ़त देखने की जरूरत होती है। पर यहाँ सिर्फ जादू है। उसे एक ही नजर मे देखकर चकाचौंध हुआ जा सकता है, खुश होने का मन हो तो खुश भी। पर उन्हे अलग-अलग देखकर किसी की रुचि को या किसी की मेहनत को दाद देने की जरूरत है, ऐसा मैंने कभी सोचा न था। फिर बात जग और सुलह की हो रही थी।

"नाराज क्यो हो गई थी ?"

"ये गुलदस्ता मैंने अपने हाथ से सजाया है।"

"अच्छा है बहुत अच्छा है। पर सुलह किस तरह की हुई ?"

"ओह ! वह बात ! तुम बैठो, मैं अभी तुम्हे एक चीज दिखाऊँगी।"

उसके अदर जाने के बाद मैंने गुलदस्ते को गौर से देखा। जिस फूलदान मे गुलाब सजाए गए थे वह पीतल का भी हो सकता था, सोने का भी। मैंने इसमे अपना सर नही खपाया। गुलाब बडे-बडे थे, लाल, पीले, सफेद, एकाध काले रग के भी। पहली बार सूझा कि गुलाब लाल ही नही होते, कई रग के होते हैं। इन गुलाबो के अलग-अलग नाम होते हैं, यह तब भी नही सूझा। और जिस ढग से ये फूल फूलदान मे सजाए गए हैं, वह कोई ढग होता है और उसके अलावा कोई दूसरा भी ढग होता है, यह तो उस वक्त बिलकुल ही नही सूझा। यह सब सुझाने का काम कई दिन बाद सावित्री ही ने किया था, पर उससे मैं यही समझ पाया कि वैसे तो दुनिया की बात-बात मे पेच है पर जहाँ कोई पेच न होना चाहिए वहाँ भी लोगो ने नए-नए पेच पैदा कर रक्खे हैं।

बहरहाल गुलाबो और उनकी सजावट की पद्धति पर ज्यादा गौर करने लायक उस वक्त मेरी निगाह न थी और मैं ज्यादा गौर नही कर पाया। तभी सावित्री अदर से कई कागज लिए बाहर आई। बोली, "यह थी लडाई की जड।"

"ये जो तुम्हारे जीजा जी हैं न, वे इंजिनियर साहब से बहुत नाराज हैं । होना भी चाहिए ।"

"क्यो ?" अब सावित्री गॉव के लोकप्रिय और शहर के फूहड ढग से हँसी । मुझे घरेलूपन का एहसास हुआ, दोहराया, "क्यो ?"

"पूरी रामायण सुन ली और यह भी तुम्हे मालूम् नही कि सीता का ब्याह राम से हुआ था कि रावण से ?

"सुनो सत्ते, ये इंजिनियर बडा बेईमान है । पता नही तुम्हारे जीजा जी उसके चक्कर मे कैसे फॅस गए थे ।"

"और तुम ?"

"मेरा क्या ? तुम बिलकुल अधे हो क्या ? खोपडी मे दिमाग है कि कैथे का गूदा भरा है ? मैं कोई ऐसी-वैसी हूँ ?"

एक साथ इतने सवाल करके उसने मुझ पर ऑखे तरेरी, फिर मुस्कुराकर समझाने लगी, "वह आदमी ठीक नही है । मैं पहले ही जानती थी । पर वह अपने चक्कर मे था, मैं अपने चक्कर मे । उसके मन मे जो भी रहा हो, वह न तो पूरा हो मकता था न हुआ । पर मुझे जो करना था वह मैंने कर लिया ।"

वह कुछ ज्यादा ही सफाई दे रही थी, पर मैंने टोका नही ।

"यह सावित्री टावरवाली स्कीम जो उसने बनाई थी न, बुरी नही थी । जमीन मे हम लोगो का आधा-आधा हिस्सा होता । इमारत की सारी दुकानो के लिए यहाँ के व्यापारियो ने पहले ही रुपिया जमा कर दिया था । समझ लो, पूरा काम फोकट मे होना था । तभी तुम्हारे जीजा जी उससे उखड गए । इस लगूर के कुछ लच्छन मैं भी जान गई थी । इसलिए मैंने सोचा कि सावित्री टावर बने तो, पर इसके साथ साझेदारी मे नही । सत्ते, सावित्री टावर अब मैं बनवाऊँगी ।"

बात साफ होने के बजाय उलझती जा रही थी । तब भी मैंने उसे नही टोका ।

"यह जो सावित्री टावरवाली जमीन है न, यह उसने मेरे नाम से खरीदी थी । बेनामी । बेनामी समझते हो न ? इतजाम के लिए उसका मुख्तारनामा उसने अपने नाम करा लिया था । मुख्तारनामा जानते हो न ? जब तुम्हारे जीजा जी ने उसे सावित्री टावर बनाने से मना कर दिया तो उसने चाहा कि वह जमीन उसके किसी साले के नाम लिखा दी जाए । तुम्हारे जीजा जी पहले ही मुझ पर झल्लाए थे कि मैंने उसके लिए बेनामी कारोबार मे अपना नाम क्यो डालने दिया । यह सुनकर उन्होने चाहा कि वह जमीन चाहे जिसके नाम करा दे, मैं चुपचाप दस्तखत कर दूँ । पर सत्ते, मैं उसे इतने मजे से थोडे ही निकल जाने दूँगी । मैंने दस्तखत करने से इनकार कर दिया । दस्तखत तभी किया जब उसने मेरी शर्त मान ली । न मानता तो मेरा क्या जाता ? सावित्री टावरवाली जमीन तो मेरे नाम थी ही ।"

"कौन सी शर्त ?"

"सावित्री ने मेज से कागजात उठाकर उन्हे झडे की तरह हिलाया । बचपन मे

किसी पहेली का जवाब देने मे जब मैं चूक जाता था । तो जिस उल्लास मे मुझे बेवकूफ साबित करने के लिए वह जवाब बताती थी उसी की धुँधली नकल मुझे उसकी चहक मे दिखाई दी । बोली, "यह सावित्री टावरवाली जमीन छोडने के पहले मैंने राधानगर की एक चौथाई जमीन उससे अलग से लिखा ली ।"

राधानगर ! एक क्षण को इस अजनबी शहर के नाम ने मुझे भटकाया, फिर याद किया कि यह उसी गॉव का नाम है जहाँ एक बडा कारखाना खुलने जा रहा है, जहाँ कई बीघे एक आवास समिति के नाम से इंजिनियर साहब और परमात्मा जी खरीदने जा रहे थे, जहाँ आधा बीघा जमीन मेरे नाम से भी ली जा रही है । मगर बेनामी !

"घबराओ नही, तुम्हारा भी इतजाम हो गया है !" उसने कहा ।

"पर पूरी बात सुन लो ! राधानगर की जमीन मे आधा हिस्सा हमारा था, आधा उस लगूर का । मैंने कहा कि अब तीन चौथाई हमारा होगा, एक चौथाई उसका । बहुत कुसमसाया पर हारा बैठा था । बाद मे राजी हो गया ।

"तब तुम्हारे जीजा जी बमकने लगे । बोले, मैं वहाँ न एक इच खरीदूँगा न तुम्हे खरीदने दूँगा । मैं उसके कारोबार मे कोई मतलब नही रखना चाहता । इसी पर हमारी लडाई हो गई । सत्ते, मेरी जिद तुम जानते हो । मेरा कहा ब्रह्मा की लकीर है । कोई टाल नही सकता । मैंने कहा, अभी तो वह गॉव की जमीन है, सोसायटी बनेगी तो बाद मे । अभी किसी का कोई साझा नही है । जिस जमीन की बात हुई है, उसका तीन हिस्सा मैं अपने आदमियो के लिए खरीदूँगी । एक हिस्से को वह अपने लोगो के लिए ले ले । हमारा क्या नुकसान है ? हमारी जायदाद एक जगह रहेगी । उसके एक किनारे वह भी पडा रहे कोढी जैसा । तुम्हारे जीजा वकील हैं न, आखिर मे समझ गए ।

"कल ही हमने इस जमीन का बैनामा लिखा लिया है । आठ आदमियो के नाम । चार हजार देकर आधा बीघा तुम्हारे नाम भी लिखाया है । रजिस्ट्री का खर्चा भी कुछ हुआ है । सत्ते, मैं तुम्हे उसमे से सचमुच ही चौथाई बीघा दे दूँगी । पर उसके लिए तुम्हे छ महीने मे दो हजार रुपए देने होगे ।"

मैंने समझ जाने के प्रमाण मे सिर हिलाया । फिर भी नही टोका क्योंकि वह कुछ और कहना चाहती थी ।

"अब सुनो असली बात । यह एक चौथाइ जमीन जो अलग से ली है न, उसी मे सावित्री टावर बनेगा । पर अभी नही, वहाँ शहर बस जाने के बाद ।"

न जाने क्यो, बेवकूफी का एक बवडर उठा और उसने मुझे आसमान तक उडाया । वही से मैंने पुकार लगाई, "जिज्जी, पर मेरा चौथाई बीघे मे कैसे काम चलेगा ? मुझे मेरा पूरा-पूरा प्लाट दे दो । मैं महीने-भर मे ही तुम्हे चार हजार रुपए दे दूँगा ।"

"मुझे क्या, मैं पूरा प्लाट दे दूँगी । पर चार हजार रुपए कहाँ से लाओगे ?"

उसी तूफान ने अब मुझे कडी जमीन पर लाकर पटक दिया ।

उस दिन काम पर जाते हुए मुझे रईसी के सपने देखने चाहिए थे । पालिश उतरे फ्रेम वाली गर्द-भरी साइकिल की किर्र-किर्र सुनते हुए, मैले कालरवाली कमीज से ढके तन के भीतर मन से मुझे राधानगर का एक सपन्न भूस्वामी होने का एहसास होना चाहिए था । मुझे एक के बाद एक दर्जनो प्लाट खरीदने थे, शहर के उस नए मुहल्ले का सबसे भारी-भरकम नागरिक होना था । चार हजार की ऐसी पूँजी से, जिसे अभी मेरे हाथो ने छुआ नही, आँखो ने देखा नही, मुझे दो साल मे चालीस लाख की हैसियत बना लेनी थी, और यही से मेरे दिवास्वप्न की शुरुआत होनी चाहिए थी ।

पर न जाने क्यो, सपने का रुख दूसरी ओर हो गया । इसमे हमारे डिप्टी यस पी उर्फ ठेकेदार साहब मुझे चार हजार रुपए की रकम दे रहे थे । कह रहे थे, 'मुझे पूरा भरोसा है कि आप बहुत तरक्की करेगे । आप दूरदर्शी हैं, आपका इरादा बडा पक्का होता है ।'

पक्के इरादे की शक्ल म साइकिल के धूल-भरे पहिये से कुछ टकराते-टकराते बचा । एक मोटा सुवर सडक पार करते-करते मेरे पहिए से लगभग लडा, एक ट्रक के पहिए से लगभग कुचला गया और फिर लगभग जीवित अवस्था मे जीवन का चीत्कार निकालता हुआ दूसरी ओर निकल गया । तब मुझे एहसास हुआ कि ठेकेदार साहब के काल्पनिक व्याख्यान का एक मात्र श्रोता साइकिल का यह डगमगाता हैंडिल था, कि मैं इन नए स्वत वित्तपोषित मकानो की कतार के पास सडक की भयकर भीड मे जूझता हुआ सकुशल सानद पहुँच गया हूँ ।

ठेकेदार साहब गैरहाजिर । गैरहाजिरो मे ए ई साहब, जे ई साहब भी । मिस्त्रियो की मदद के लिए दिहाडी मजदूरो मे वे दो बूढे पति-पत्नी मौजूद, जो कुछ दिन पहले जसोदा के साथ शकरगढ गए थे । और जसोदा भी, जो सीमेट मिला मसाला फुर्ती के साथ छत पर पहुँचाने के लिए सडक की पटरी पर तसलो मे भर रही थी । और उसका बच्चा ? चार-पाँच महीने की वह चीज—पता नही किस दवा, किस टोटके या किस तर्क के सहारे तंदुरुस्त चेहरा, काजल से पुता, आसमान को देखता हुआ, दोनो पाँवो से पहले की तरह आसमानी साईकिल चलाता हुआ । पहलेवाला ही गाना गा रहा था गी, गी, गी, गी, गी, गी, गी, गी, गी ।

मिस्टर सत्ते, भूतपूर्व रईस, भूतपूर्व पर्वतारोही, गदी कमीज और उससे भी ज्यादा गदे पतलून मे—मगर ऊपर से वही ए और ए बटा ए वाली जर्किन डाटे हुए—साईकिल खडी करके सब समझ गए । जसोदा लौट आई है, उसके साथ जानेवाल मजदूर भी शकरगढ से लौट आए थे ।

"तुम कब आई ?" के जवाब मे जसोदा ने मेरी ओर मुँह नही किया । फावडा मेरी ही ओर चलता रहा ।

"तेरी आँखे हैं कि सीप के बटन ? देखती नही, मैं तेरे आगे खडा हूँ । तुझसे पूछ रहा हूँ, कब आई ? वहाँ से लौट क्यो आई ?"

"मुसी, काहे को परेसान करते हो ? क्यो न लौट आती ? वहाँ कौन है मेरा ?"

"धन्ना नही था ?"

"मर गया धन्ना ।"

नेता के छोटे भाई धन्ना के इस सुखात से इत्मीनान नही हुआ । फिर पूछा, "क्या हुआ धन्ना को ?"

"मर गया । मेरे लिए हमेशा को मर गया ।"

तब, जब मिस्त्री ने गाँजे की चिलम सुलगाई, कोई मजदूर उनके लिए पान लाने को भागा, उस बूढ़े मजदूर की बीवी ने रुक-रुककर एक वक्तव्य को सशोधित करते, दूसरे को निरस्त करते, सारी कथा सुनाई .

"अभागिन है ।

"हम लोग वहाँ से पाँव-पाँव स्टेशन गए । वहाँ से रात-भर गाडी पर चढे-चढ़े प्रयागराज गए । सगम नहाया । फिर गठरी-वठरी लादे बस तक गए । बडा खर्चा पडा । बस से शकरगढ़ । वहाँ से फिर पाँव-पाँव चले, पहाडी के पत्थर जहाँ तोडे जा रहे थे, वह कई कोस था । चलते-चलते-चलते-चलते, साँझ हो गई । तब वहाँ पहुँचे ।

"रहने का कोई ठौर-ठिकाना नहीं । हम लोग पद्रह जन थे । पेड के नीचे पडे रहे ।

"रात को धन्ना आया । नसे में धुत्त । ऐसा नालाय
क कही नही देखा । भाई के मरने का हाल वहाँ तक पहले पहुँच चुका था । पर आँख मे आँसू नहीं । खिलकर बोला, 'भला हुआ भौजाई जो तुम आ गईं । अब यहाँ से कही न जाना ।'

"अपनी मडैया मे जसोदा को ले गया । नालायक है । बडा ही कुचाली । हाल-चाल तो पूछे नही, इसकी बाँह पकडकर घसीटने लगा । मडैया में बडा रोर मचा । सब इकट्ठा हो गए । जसोदा वहाँ कैसे रहती । वह कुचाली 'भौजी-भौजी' करता रहा । जसोदा वहाँ से निकल आई । रात-भर पेड के नीचे हमारे साथ पडी रही । 'यह जो धन्ना है, उसमे नेतावाली बात नही । सुरू से ही ऐसा था । गँजेडी, नसेडी । नसे मे बहन-बिटिया का भी लिहाज नही । जसोदा रात-भर हमारे साथ पडी रही । रोती रही ।

"सबेरे दूसरी आफत । यहाँ से हमारे पीछे-पीछे उसी गाडी से दस-बारह मजूर भी शकरगढ़ चले आए थे । वे सब हमारे ही साथ पेड के नीचे रात-भर पडे रहे थे । हम जानते थे कि हमारा पीछा ऐसे ही नही छूटेगा, पर सोचते थे कि सरदारो मे समझौता हो जाए तो यहाँ से छुट्टी मिल जाएगी । पर ऐसा नही हुआ । यहाँ जो हमारा सरदार है, उसके दो आदमी वहाँ पहुँच गए । हमे काम से रोक दिया । कहा, पहले पेसगी का रुपिया वापस करो । जसोदा के आदमी को यहाँ आने के लिए उन्होने पाँच सौ रुपिया दिया था । कुछ दे भी चुका था । उस पर बारह सौ निकाले । हम बूढे-ठिहरे दो जने । हम पर पद्रह सौ निकाले । उधर के सरदार ने कुछ देना चाहा । पर ये राजी नही हुए । बडा झगडा मचा, बडा झगडा । इधर से अपने सरदार के आदमी, उधर का वह

सरदार। हम भी बहुत रोए-गाए। कुच्छ नही हुआ। फिर उधर का सरदार बोला, 'ऐसा ही है तो ले जाओ इन सबको। फिर कभी इधर आए तो टाँगे तोड दूँगा।' पर मुसी, कौन किसकी टाँगे तोडता है? सरदार-सरदार आपस मे मिले हुए हैं। जितना चाहे, हड्डियो को दले, पीसे। हम लोग दूसरे ही दिन वापस लौट आए।''

सबेरे जमीन के लिए चार हज़ार रुपए की खयाली रकम खीचकर और बाद मे जो डेढ़ लाख रुपए की बिकेगी, उस जमीन का इतजाम करके मैं रईस बन चुका था। आगे-पीछे-दाएँ बाएँ जो भी था वह सिर्फ कडकडाते नोटो का ढेर था। इस हवा मे रंतिदेव-हरिश्चद्र-कर्ण बनने मे मुझे देर नही लगी। मैंने कहा, ''अगर सिर्फ बारह सौ रुपयो की बात है तो उसका जुगाड मैं कर लूँगा। जसोदा धन्ना के साथ जाकर रहना चाहे तो चली जाएँ, सब ठीक कर दूँगा।''

बुढिया ने कहा, ''तो तुम्ही उससे पूछ लो मुसी।''

जसोदा सब सुन रही थी। मैंने कहा, ''तुम उसका मन ले लो। मैं क्या पूछूँ?''

जवाब जसोदा ने दिया। पर मुझे नही, बुढिया को, ''मुसी की बहन है न गाँव मे। उनसे कह दे कि वे उसी को धन्ना के पास भेज दे। मेरे लिए काहे को हलाकान हो रहे हैं?''

शाम को जब जाडे की असली हवा पच्छिम से आई, मैंने आँखे उठाकर आसमान की ओर निहारा। साफ-सुथरा, मँजा-पुँछा आसमान। झिलमिलाती हवा। गाँव की याद आई। ईंटो के एक चट्टे पर बैठ गया। मजदूर काम बद करके जा चुके थे। बबे पर कुछ हाथ-पाँव धो रहे थे। उनमे जसोदा भी थी। तब एक दुबला-पतला, काला-काला आदमी स्कूटर से हमारे पास आया, स्कूटर पर बैठे ही बैठे बोला, ''तुम्हारा ही नाम सतोषकुमार है?''

सभी सत्ते कहते हैं, इसलिए सतोषकुमार सुनकर बाइज्जत दीखने का मन हुआ, पर उसने 'आप' की जगह 'तुम' कहा था। डेली पैसेजरो के गोल मे जो कडक अपने आप गले मे उभर आती है, उसका सहारा लेकर बोला, ''मैं ही हूँ। तुम्हे किसने भेजा है?''

स्कूटर खडा करके वह मेरे पास आया, खडा रहा। मैं चट्टे पर बैठा रहा। वह बोला, ''गायत्री टावर मे यह क्या गोलमाल हो रहा है?''

मैंने भी सुना था। इंजिनियर साहब के एक आदमी ने किसी मजदूर पर हाथ उठा दिया था। उसका सबसे ज्यादा विरोध किया था—और किसी ने नही—एक जुम्ले मे सौ बार 'सरकार' कहनेवाले मिस्त्री ने। कुछ झमेला हुआ था जो अभी शायद सुलझा नही था। मुझे अभी तक वहाँ जाने की फुरसत नही मिली थी।

''क्या हो रहा है?'' मैंने हेकडी से पूछा और इस तरकीब से बताया कि वहाँ कुछ नही हो रहा है। फिर पूछा, ''तुम किसके आदमी हो?'' और इस तरकीब से बताया कि मैं तुम्हे आदमी नही ज्यादा से ज्यादा एक पोस्टकार्ड समझता हूँ। वह गौर मे मेरी ओर

दखता रहा, फिर मेरे ही पास चट्टे पर वैठ गया ।

"निर्माण-निगम के श्रीवास्तव साहव को जानते हो ?" उसने पूछा ।

"जानता हूँ । अभी हाल ही मे जाना है । वहाँ के कर्मचारियो की यूनियन के वे मत्री हैं ।"

"तो तुम श्रीवास्तव के आदमी हो ?" मैंने पूछा ।

उसने चिढ़कर जवाव दिया, "आदमी-आदमी क्या लगा रक्खा है ? मैं किसी का आदमी नही हूँ । हम सब मिलकर साथ काम करते हैं ।"

भौंहे चढ़ाकर, आँखे सिकोडकर—फिर उसी डेली पैसेंजरी वाली अदा मे मैंने पूछा, "कौन-सा काम ?" जैसे पूछ रहा होऊँ कि जेव काटते हो या सेंध मारते हो ।

जो कहा नही था, उसने शायद वही सुना । उठकर खडा हो गया । वोला, "तुम्हारा नाम मैंने सुन रक्खा है । ज्यादा कॉव-कॉव करोगे तो इसी चट्टे पर तुम्हे पटककर सारी अकड-फूँ निकाल दूँगा ।"

अव मैं भी खडा हो गया । अकेला था, थोडा हिचका और अपने मन को तौलने लगा कि युद्ध की घोषणा हो जाने के वाद मैं इसे पटक पाऊँगा या नही । चूँकि ध्यान अपने पक्ष की शक्ति-समीक्षा मे लगा था इसलिए मुँह से कुछ नही वोला ।

उसने कहा, "घटे भर से तुम्हे खोज रहा हूँ । श्रीवास्तव साहव ने कहा है कि ये तुम्हारी यूनियन-शूनियन यहाँ नही चलेगी । मजदूरों की सिर्फ एक यूनियन होनी चाहिए । इन इकन्नी-दुवन्नीवाली यूनियनो से सिर्फ तुम्हारे जैसे टुकाची नेताओं का भला चाहे हो जाए, मजदूरो का भला नही होना है । निर्माण-निगम की यूनियन मे ही तुम लोगो को मिल जाना चाहिए । सुन रहे हो कि नही ?"

मैं उतना सुन नही, जितना देख रहा था । हाथ-पैर धोकर मजदूर वहाँ से चले गए थे । मेरे पास एक अधवने वरामदे मे जसोदा का वेटा एक चीथडे पर पडा था और गी-गी-गी का गाना वद करके सो रहा था । जसोदा खभे मे टिकी हमारी वात सुन रही थी । वुढ़िया वच्चे के पास वैठी थी ।

मैंने कहा, "श्रीवास्तव से कह देना, मुझसे वात कर ले ।"

"उन्होने कहा है कि तुम कल तक उनसे वात कर लो । ग्यारह वजे निर्माण-निगम के दफ्तर मे आ जाना । और देखो, श्रीवास्तव साहव के सामने तमीज से वात करना ।"

अपने को कावू मे किया, कहा, "ठीक है, ठीक है । तुम अपनी चपरासगीरी कर चुके, अव चलते-फिरते नजर आओ ।"

इस वात ने उसे उखाड दिया । पैंतरा वदलकर वह मेरे सामने आ गया, वोला, "मैं तो जा रहा हूँ साले, पर समझ ले साले, अगर यह गायत्री टावरवाला गोलमाल कल तक खत्म नही हुआ तो, साले, तुझे हलाल कर दूँगा साले ! अपने को समझता क्या है साला ।"

कोई हल्का-फुल्का मौका होता तो साले के इस वेतहाशा प्रयोग पर कोई वाजिव जुम्ला रसीद करता, पर मामला सगीन वन चुका था । 'साले' 'साले' कहते हुए, उसने

अपनी नाभि के पास बुशशर्ट के अदर हाथ ले जाकर एक छुरा निकाल लिया था। फिल्मो मे जैसे बटन दवाते ही छुरे का ब्लेड उछलकर तन जाता है वैसा तो नही हुआ, पर जब मैंने उसके हाथ की ओर देखा तो वहाँ छुरा—अपनी पूरी लवाई-चौडाई के साथ शाम के धुँधलके मे भी चमक रहा था।

मैंने अपना दायाँ हाथ धीरे-से पीछे ले जाकर चट्टे के ऊपर की एक ईट टटोलने की कोशिश की।

"तिमाक ठीक रक्खो साले," कहकर उसने आँखे तरेरी, जोश मे निकला हुआ 'दिमाग' 'तिमाक' होकर रह गया। मैंने धीरे-से साँस छोडी, क्योंकि उसकी बकवास मे मुझे पता लग चुका था कि यह सिर्फ धमकाना चाहता है, गुडागर्दी के अखाडे का यह पहलवान नही है, सिर्फ लतमरुआ है।

पर जसोदा को गुडागर्दी के इन नफीस फको का पता नही था। उसने सचमुच ही समझा होगा कि यह गुडा मेरे ऊपर छुरे का वार करना चाहता था। इसीलिए जब वह 'तिमाक' ठीक रखने की हिदायत देने के बाद मुझे फिर से गायत्री टावर का गोलमाल खत्म कराने की सलाह देने लगा तो जसोदा ने तेदुए की सी तेजी से उस पर झपट्टा मारा। पता नही, उसकी जकड मे कैसा कसाव था, छुरा उसके हाथ से पके हुए जामुन जैसा चू पडा। जसोदा को झिझोडकर जब तक उसने अपने को छुडाया, तब तक छुरा मेरे हाथ मे आ चुका था और जसोदा उससे दूर हटकर बरामदे मे पहुँच चुकी थी। बुढिया चिल्लाने लगी थी।

जैसा कि होना चाहिए था, मैंने पूरी ताकत मे छुरे को सडक के दूसरी ओर फेक दिया। वह थोडी देर भौंचक खडा रहा, फिर स्कूटर की ओर बढते हुए बोला, "समझ लूँगा।"

'साले' कहने की अब मेरी बारी थी। कहा "समझ होगी तभी तो समझेगा साले।"

छुरा खोजने के लिए उसने कोई अभियान नही छेडा। यह तय है कि इसकी जड मे छुरे के बारे मे उसकी अनासक्ति नही थी, उन मजदूरो की आवाजे थी जो बुढिया की चिल्लपो सुनकर दौड पडे थे। देखते-देखते वह स्कूटर पर हचककर बैठ गया और गालियाँ देता हुआ तेजी से चला गया।

तीन-चार मजदूर इकट्ठे हो गए थे। मैं जसोदा का वह फौलादी हाथ पकड- कर, जिससे उसने उस आदमी के हाथ का छुरा गिराया था, धन्यवाद भी नही दे सकता था। धन्यवाद के रूप मे कुल इतना किया कि उसके पास थोडी देर खडा रहा और मज़दूरो की 'क्या है? क्या हुआ?' का जो जवाब जसोदा दे रही थी, उसे सुनता रहा। आखिर मे, "अँधेरा हो गया है मुसी, अकेले मत जाओ।"

तब मैंने दोनो हाथो से उसका दायाँ हाथ पकडकर ऊपर उठाया, उसकी कलाई दवाई, कहा, "झाँसी की रानी की कलाइयाँ ऐसी ही रही होगी।" मेरी बात उसने समझी हो या नही, पर यह एहसान जरूर किया कि अपना हाथ झटका देकर खीचा नही।

5

अखबारो मे पढा करते हैं कि उस आदिवासी स्त्री ने कुल्हाडी के वार से आदमखोर तेदुआ मार दिया और गॉव की इस छोकरी ने अपनी बहादुरी से डाकुओ के हमले को नाकाम कर दिया। झॉसी की रानी का इतिहास पढ़ा है, उपन्यास भी, और, भले ही अत्याक्षरी के लिए हो, 'खूब लडी मरदानी'-जैसी कविताएँ भी। जिस एक क्षण मे जसोदा ने उस गुडे पर झपट्टा मारा और उसके हाथ के छुरे को जमीन दिखाई, उसमे ये सारी खबरे, सारा इतिहास, सभी कथाएँ और कविताएँ एक साथ मेरे लिए शब्दो का जामा छोडकर जिदा खडी हो गई। यह तो नही कह सकता कि जसोदा ने मेरी जान बचाई थी क्योकि उस संक्षिप्त घटना मे मुझे किसी भी क्षण अपनी जान का असली खतरा नही जान पडा था, पर अपनी ओर से उसने जो किया था वह उसकी जान के जोखिम का काम था और यह जोखिम उसने मेरी जान बचाने के लिए उठाया था।

काम पर से विधायक-निवासवाले कमरे की ओर लौटते हुए मेरा ध्यान जसोदा पर था, पर थोडी ही देर मे वह घटना की दूसरी सुर्खियो पर ढल गया। एक तो यह कि वह छुरेबाज असली आदमी न था। उसने जो नौटकी दिखाई, उससे आतक तो पैदा हुआ था पर उसका छुरा देखकर मुझे जान का खतरा नही लगा था। शादी अभी नही हुई है पर बारातो मे जरूर गया हूँ। यानी खुद कभी छुरेबाजी नही की पर छुरेबाजी का तमाशा रेलगाडी मे, चौराहो पर, सिनेमाघरो के सामने देख चुका हूँ। छुरा भोकनेवाले उसे हवा मे लहराकर 'साले' 'साले' का डिस्को नही करते। यह पलक झपकते शुरू होने और खत्म होनेवाला खेल है। छुरा हाथ मे निकालकर भी उसने मुझे इतना मौका दे दिया था कि मैं चाहता तो गुम्मा फेककर उसकी खोपडी तोड देता। जसोदा का जीवट अपनी जगह है और वह झॉसी की रानी की कहानी को हम-जैसो के लिए सार्थक बनाने को काफी है, पर खुद गुडा न होते हुए भी मैं इतना समझ सकता हूँ कि गुडागर्दी के अखाडे मे उस आदमी को अभी मिट्टी गोडने का काम भी भरोसे से नही सौंपा जा सकता।

पूरी बात पर गौर करने से लगा कि मुझे डरकर रहने की जरूरत नही है, पर थोडा सतर्क होकर रह लिया जाए तो कोई नुकसान नही होगा। सतर्क होने का एक ढग यह होगा कि मैदान ही छोड दिया जाए, पर जिस मैदान मे मैं जानबूझकर आया नही, जो खुद सपने के अनहोने दृश्य की तरह अपने आप मेरे चारो ओर फैल गया है और जिसमे

मैं अपने-आपको भटकता हुआ पा रहा हूँ, उसके लिए एक अजीब-सा खिंचाव भी है और उसकी लबाई-चौडाई की, अनजानी जगहो मे छिपे हुए गड्ढो की गहराई की, पडताल किए बिना मैं शायद उसे नही छोड सकता । एक बात यह भी है कि मैदान मे आने के पहले मैं जहाँ था वह भी इसी मैदान का विस्तार-भर था, भले ही तब मैं इसे पहचान न पाया होऊँ क्योंकि वे किशोर उत्तेजना के दिन थे जो हमे बसती हवा और जेठ की लू मे फर्क करने से रोकते थे । मैदान तब भी यही था, सिर्फ इसका एहसास न था । अब, झटके से नीद टूट जाने के बाद नीद मे चलनेवाले किसी आदमी को अचानक अपने आसपास की वीरानगी पर भले ही हैरत हो रही हो पर उसे जानना चाहिए कि वहाँ शुरू से ही सबकुछ ऐसा ही था, कि वह खुद शुरू से यही पर था । न यहाँ वह कही से भागकर आया है, न यहाँ से कही भागकर जा पाएगा । वह चाहे या न चाहे, यही उसका चिरतन मैदान है ।

सोचा और बोर हो गया । यानी, इतनी देर तक मैदान मे आने, या न आने, या वहाँ पहले ही से मौजूद होने, उसे छोडकर भागने, या न भाग सकने और मैदान मे निरतर चलते रहने का जो घटाटोप मैं बना रहा था, वह सिर्फ सिनेमा के गानो और नेताओ के चौराहा-छाप भाषणो की अनुगूँज-भर थी । वही साला धर्मक्षेत्र, कर्मक्षेत्र, रगभूमि, कर्मभूमि का घिसा-घिसाया, पिटा-पिटाया रूपक । कुल मिलाकर, 'ऐकला चलो रे' और 'चल-चल रे नौजवान' का स्कूली कोरस । और किसके लिए ? सत्ते की और उसी के जैसे डेली पैसेजरो की सींकिया टाँगो के लिए जो घुटनो के बल घिसटना छोडते ही तेजी से दौडने लगी हैं, ऊटपटाँग राहो मे बराबर चलती रही हैं और जवानी की दहलीज तक आते-आते लडखडाने भी लगी हैं । क्या मजाक है कि 'चल-चल रे नौजवान' का उद्बोधन मेरे लिए । और उनके लिए ऐसा कोई उद्बोधन नही जो बोल फूटते ही चले नही, बल्कि उडने लगे थे, जिनके लिए उम्दा पब्लिक स्कूलो की डार्मिटरी, नेल्सन हाउस या टैगोर हाउस, अलामती कोट और टाई, नाज-अदाज-रफ्तार-गुफ्तार की चौबीसो घटे सीख, फिर कोई आई आई टी मे कोई यम आई टी मे, कोई बहुराष्ट्रीय कपनी मे । फिर छलाँग लगाकर पाई गई ससद-सदस्यता, अजब नही कि कोई मिनिस्टरी, फिर कुर्त्ते-पायजामे-सदरी या सफरी सूट या साफा-शेरवानी या किसी भी बहुरूपिया पोशाक मे मच पर खडे होकर जनता के लाभ के लिए देश की अखडता और एकता की टे-टे । और हम जैसे लडखडाती टाँगो और चुचके गालवाले बेरोजगारो के लिए गलियारे पाटकर कच्ची सडक बनाने के लिए ग्रामीण बेरोजगारी निवारण योजनाओ का उद्घाटन । ठीक है, चलो कुछ साल तक यही सही । चल-चल रे नौजवान ! काट इसी मैदान के चक्कर ! छोडना भी चाहेगा तो यह कैसे छूटेगा ।

दिमाग बहक रहा था । बैलगाडी गलियारा छोडकर गड्ढे मे जा रही थी, उसे रोका, लीक पर लाए । तय किया कि भला लगे या बुरा, मैदान मे ही रहना है । पर सँभलकर रहना है । उसका तरीका यह होना चाहिए कि सुरक्षा के लिए निजी सेना तैयार कर ली जाए, यानी झगडा-झझट झेलने के लिए यूनियन मे शुरू से ही जिन सूरमा डेली पैसेजरो

को रखा था, उनका आह्वान किया जाए। पर खोपडी के जिस खाने में यथार्थ का गूदा भरा हुआ है उस पर रेगते हुए किसी कीडे ने कहा कि अभी ऐसी चिल्ल-पो की दरकार नही है। बेमतलव की नौटकी करने से क्या लाभ, कुछ दिन हवा का रुख अभी और परखा जाए।

विधायक निवास मे रात बिताकर जब दूसरे दिन काम के लिए निकला तो मैं साईकिल पर था। साथ मे रिक्शे पर एक फोल्डिंग चारपाई, एक मोढ़ा, एक छोटा ट्रक और चल-चल रे नौजवान की जीवन यात्रा से जुडा हुआ कुछ और अगड-खगड था। सबकुछ कई महीनो के उपहार-उधार और उखाड-पछाड के सिद्धात से हासिल किया गया था। ठेकेदार साहब के मकानो मे दो-चार लगभग पूरे हो चुके थे। उन्ही मे से एक मे फिलहाल मुझे रहना था। मैं तय कर चुका था कि प्रेमवल्लभ से मुझे अगर यूनियन की धरोहर वसूलनी है तो उसके साथ अब मेरे प्रेमपूर्ण विलगाव का समय आ गया है।

पिताश्री खटिया पर लेटे हुए खाँस रहे थे। मुझे देखते ही गाली देकर बोले कि इतने दिन वहाँ शहर मे क्या उखाड रहे थे। यहाँ दुश्मनो ने पुवाल जैसा पीटकर रख दिया, तुम नालायक मुँह दिखाने तक नही आए। हमारे बाप मे कोई ऐसा सुलूक करता तो उसकी हड्डी-पसली का अब तक पता न चलता।

पिताश्री और चाहे जो कुछ करे, अपनी छवि के बारे मे आपको कभी निराश नही करेंगे। सभी तरह के रोगो से जकडे हुए, सारी दुनिया से सताए हुए, सारे कुटुब से ठुकराए हुए ओर इसके बावजूद अपनी चिरतन नाराजगी को बडे जतन से बचाए हुए एक असतुष्ट बूढे की छवि। उससे न मुझे उत्साहित होना था और न मैं हुआ। खटिया के पास जाकर उनके पॉव छुए, फिर सिरहाने आकर उनका मत्था छुआ। उधर उन्होने आशीर्वाद मे घुडकी और बामशक्कत खाँसी के मेलजोल मे एक 'खुँहुंक' निकाली। मैंने कहा, ''इस वक्त तो बुखार नही है।''

''रात-भर देह तवे जैसी तपती रही है। तुम्हारे लिए कुछ है ही नही।''

मै जानता था कि इसके बाद उनकी प्रिय शिकायत सुनने को मिलेगी 'मर जाऊँगा तभी समझोगे कि मुझे कुछ हुआ था। मेरे जीते-जी कभी मानोगे ही नही कि मुझे कुछ हो रहा है।' इसके पहले कि मुझे यह इस बार भी सुनने को मिले, मैंने पूछा, ''यह मारपीटवाला माजरा? क्या हुआ?''

तब तक मॉ मुझे खीचकर अदर ले गईं, बोली, ''मैं बताती हूँ।''

बहन ससुराल चली गई थी, घर मे माँ और बडे भैया का परिवार भर था। छप्पर के नीचे चबूतरे पर मैले गद्दे और चीकट रज़ाइयो के दो पलँग पडे थे। एक पर मैं बैठा, दूसरे पर बैठी हुई भाभी ने पूरी घटना बताई जिसमे सिद्ध हुआ कि यह वैसी कोई घटना नही, घटना की शुरुआत भर थी जो शुरू मे ही खत्म हो गई।

चाचा से चकबदीवाला जो मुकदमा चल रहा था, उसमे परमात्मा जी की सलाह के अनुसार, चकबदी अफसर को भैया ने घूस दे दी थी। उसे चाचा से और बडी घूस मिली

थी, पर, जैसा कि परमात्मा जी का तर्क था, हमारा मुकदमा मजबूत होने के कारण अफसर हमसे छोटी घूस लेने को राजी हो गया था। इस पर पता नही कि चाचा उससे अपना रुपिया वापस ले पाए या नही, उन्होने चकबदी अफ़सर की निष्पक्षता के ख़िलाफ ऊपर दरखास्त लगा दी और मुकदमा किसी दूसरे अफसर के यहाँ भेजे जाने की प्रार्थना की। यहाँ मुकदमे मे पूरी कार्रवाई खत्म हो चुकी थी, दोनो ओर से बहस सुनी जा चुकी थी, मुकदमा फैसले के लिए पक चुका था और शायद दो मे से किसी पक्ष से या दोनो पक्षो से कुछ और रकम ऐठने के इंतिजार मे—हाकिम फैसला सुनाने के लिए पेशी पर पेशी देता चला जा रहा था। चाचा पैसेवाले हैं। उनको अफसर से अपना रुपिया वापस मिला हो या नही, वे सिर्फ हमारे रुपए पर पानी फेरने के लिए अपने रुपए को पानी मे डुबोने को तैयार थे। इस हाकिम के इजलास से मुकदमा हटा सकने से उनका दोहरा फायदा होगा। शायद हम अपना रुपिया वापस न ले पाएँगे, यह चोट तो होगी ही, दूसरी चोट यह होगी कि दूसरे इजलास मे जाने पर मुकदमा फिर साल-छह महीने के लिए अटक जाएगा।

चाचा ने गलत नही किया था। मेरे पास उनके जैसा पैसा, और उसी अनुपात मे उनके जैसा मुकदमेबाजी का बूता होता, और मेरा मामला भी उनके जैसा मरियल होता तो मैं भी यही करता और रुपए के बल्ले से बार-बार चौके मारकर दूसरे पक्ष को मैदान के एक छोर से दूसरे छोर तक दौडाता रहता। पर मेरे बाप इस सहज रणनीति को समझने को तैयार न थे। वे हमारे चचेरे भाई के आगे चाचा को उसी भरोसे से गालियाँ सुनाने लगे जो वे हमारे बारे मे दिखाया करते थे। जवाब मे चचेरे भाई ने उनकी पीठ पर दो डडे मारे—ज्यादा जोर से नही, बस ऐसे कि बडी की गर्द झड गई। शाम को भैया मारपीट मे तेज न होते हुए भी जब रस्मी मारपीट के इरादे से उधर गए, तो चचेरे भाई की जगह खुद चाचा जी मिले। उन्होने अपने लडके को नालायक बताया, अपने चचेरे भाई, यानी हमारे बाप के लिए पुन एक आयुर्वेदिक तेल देने का प्रस्ताव किया जिसे चोट पर लगाकर सेक करने का प्राविधान था और इस बात को दोहराते हुए खेद प्रकट किया कि जमीन-जायदाद होती है तो मुकदमे भी होते हैं, पर उससे क्या खून का रिश्ता खत्म हो जाएगा ? इसके बाद भैया की निगाह मे बाप की इज्जत बहाल हो गई। पूरी बात सुनकर मुझे भी लगा कि पूरी घटना मे चाचा, चचेरे भाई, भैया सभी की भूमिका ठीक ही रही है। हमारे बाप ने भी कुछ अस्वाभाविक नही किया था। अगर उन्होने अपने चचेरे भाई के कुटिल, कपटी व्यवहार से दुखी होकर उसे गालियाँ दी थी तो गाँव की आचार-संहिता के हिसाब से वह भी ठीक था।

ठीक बस यह नही था कि मुकदमा झमेले मे पड गया। अब मुझे ही परमात्मा जी से राय लेकर अपने तहसीली हैसियतवाले वकील को समझाना पडेगा और पूरी कोशिश करके इस मुकदमे को इसी घूसखोर चकबदी अफसर के पास रुकवाना होगा।

अँधेरा हो जाने पर बडे भैया चकबदी दफ्तर से वापस आए। आते ही सीधे कोठरी

मे घुस गए—पीछे-पीछे भाभी। यह उनकी पुरानी आदत है। घर लौटते ही उनका पहला काम यह है कि जो दिन मे कमाया है उसे प्रिय पत्नी के हाथ मे सौंप दो। महीने-भर बाद जो तनख्वाह मिलती है उसका पचास फीसदी बाप के हाथ मे रखते हैं, पॉच फीसदी मॉ के हाथ मे। अच्छे कमाऊ पति और पूत की सभी अलामतो से लैस हैं।

जब कोठरी से बाहर निकले तब उन्होंने मुझे देखा। हालचाल पूछकर बोले, "कब तक हो ?"

कल सवेरे जाना चाहता था पर मुँह से निकला, "अभी रातवाली गाडी मे निकल जाऊँगा। तुम्ही से एक काम था, बाहर आओ तो बताऊँ।"

बाहर आकर उनके आगे चार हजार रुपयो की समस्या प्रस्तुत की। वे सोचते रहे। मैंने कहा, "ऐसा मौका फिर न मिलेगा। दो-चार साल मे वह जमीन डेढ लाख रुपए की बिकेगी।"

उनका सोचना कम नही पडा। बोले, "मेरे पास तो कानी कौडी भी नही है।" फिर नए सिरे से कुछ और सोचा। अत मे बोले, "तुम्हारी भौजाई के पास शायद पडा हो। ऐसा क्यो नही करते ? यह जमीन उन्ही के नाम से खरीद लो।"

"परमात्मा जी सिर्फ मुझी को जमीन देने पर राजी हुए हैं। भौजाई के लिए तैयार न होगे।"

"बडी मुश्किल है।" कहकर वे धीरे-से उठे। मुश्किल मैं समझता था। भौजाई के पास रुपिया पडे होने की सभावना बताकर उससे मुकरना मुश्किल था। वे अदर जाने लगे, बोले, "देखो, मान जाए तब है। उसी से मॉगता हूँ।"

मै बाहर अँधेरे मे बैठा हुआ पेड-पौधो की, निश्चल बँधे जानवरो की धुँधली आकृतियाँ देखता रहा, डकैतो के किसी गिरोह के हमले की आशका मे, यह जानते हुए भी कि आशका झूठी है, जवाबी हमले की खयाली तैयारियाँ करता रहा। थोडी देर बाद भैया लालटेन लिए हुए दरवाजे तक आए, पुकारकर मुझे अदर बुलाया।

वहाँ छप्पर के नीचे बैठकर उन्होने चार हजार रुपए के नोट गिने, उन्हे एक लिफाफे मे सहेजकर रखा और लिफाफा मेरे हाथ मे पकडा दिया। सबकुछ इतनी आसानी से हुआ कि मुझे लगा कोई सपना देख रहा हूँ। पर उसके बाद की कार्रवाई सपने का हिस्सा न थी। उन्होने सिरहाने रखा हुआ कागज उठाया और उसे मेरे आगे रख दिया, बोले, "इस पर दस्तखत भी कर दो।'

भाभी की ओर से लिखाया गया प्रोनोट था। मैं उसे देखता रह गया। भैया बोले, "ब्याज की दर जो चाहो सो लिख दो।"

उनकी आवाज मे बडा अपनापा था, झेप या शर्म जैसी चीज उससे उतनी ही दूर थी जितनी घृणा या नाराजगी। मैंने कहा, "तुम बडे घटिया आदमी हो भैया, अपने सगे भाई से प्रोनोट लिखा रहे हो।"

वे जरा भी उत्तेजित नही हुए। बोले, "अभी लडके हो, तुम्हारी समझ मे नही आएगा।"

मैंने दस्तखत कर दिए, कहा, "ब्याज की दर तुम खुद भर लेना।"

उन्होने गहरी साँस ली। समझाने लगे, "जमाना बडा खराब लगा है। कोई किसी को एक कौडी नही देता। तुमने एक बार कहा और तुम्हारी भौजाई ने जो कुछ पास मे था, निकालकर तुम्हारे आगे धर दिया। इसका एहसान तो मानते नही हो, ऊपर से मुझे घटिया आदमी कह रहे हो।"

भाभी रसोईघर मे थी, पुकारकर बोली, "खाना तैयार है।" फिर सबको सुनाते हुए स्वगत भाषण पूरा घर झाड-पोछकर अपनी कमाई दूसरो को लुटा रहे हैं। और जब अपने ऊपर पडेगी तो कोई पानी को भी नही पूछेगा।

भैया बोले, "चलो, रोटी खा लो। और, यह सब लेकर जाना है तो रात को मत जाओ। सवेरे निकल जाना।"

ठेकेदार साहब मे दो दिन की छुट्टी लेकर तहसील, चकबदी दफ्तर, सब-रजिस्ट्रार के दफ्तर और आयकर अधिकारी के चक्कर काटता रहा। जो जमीन बेच रही थी यानी सावित्री, उसको यह प्रमाण पत्र देना था कि वह इनकम टैक्स नहीं देती या देती है तो उसका कोई भुगतान बाकी नही है। किसी इस्पेक्टर को कुछ ले-देकर यह प्रमाणपत्र दिलवाया गया। चकबदी दफ्तर से प्रमाणपत्र लेना था कि जमीन चकबदी के बाहर है। वहाँ घूस नही देनी पडी, सिर्फ दस्तूरी दी गई और परमात्मा जी के एक जूनियर वकील की दौड-धूप से यह प्रमाणपत्र भी मिल गया। फिर तहसील से इस जमीन के बाजार-भाव का अनुमान पत्र लिया। उसमे भी परमात्मा जी का असर काम आया। अत मे सब-रजिस्ट्रार के यहाँ रजिस्ट्री हुई पर वहाँ से निकलते-निकलते जेब मे चार हजार रुपए के ऊपर जो भी था वह खुक्ख हो गया, चपरासियो और बाबुओ ने ऐसी खुली लूट मचाई कि देह पर जो पतलून-कमीज बची थी, उसके लिए उन्हे धन्यवाद देना आवश्यक हो गया। चार हजार रुपए सावित्री के हाथ मे पहुँचाकर जब परमात्मा जी के पास पहुँचा तो उन्होने बधाई दी, कहा, "खुशी की बात है कि तुम आज साहबे जायदाद बन गए।"

"इसी खुशी मे अब मुझे पचास रुपए उधार दे दीजिए।"

पचास रुपए के नोट जब मैं बटुए मे रख रहा था तभी उन्होने कहा, "रघुनाथ के बारे मे कुछ सुना ?"

पहले तो इस नाम के साथ किसी रूप की सगत ही नही बैठा पाया, फिर अचानक एक हरा ट्रेकर निगाह के आगे कौंध गया। परमात्मा जी ने बताया, "उसका ऐक्सिडेट हो गया है। सदर अस्पताल मे उसे ले आए है। बचना मुश्किल ही लगता है।

'पोयटिक जस्टिस' या दैवी दडविधान की कहानियाँ नाटको मे पढी थी। पर इस ठोस धरती पर सचमुच ही कुछ ऐसा हो सकता है या हुआ है, यह सोचना मुश्किल था। विश्वास नही हुआ कि नेता की मौत का जिसे हम जिम्मेदार मानते थे, उसका विनाश

हमारे चाहने भर से हो जाएगा। बडे-बडे इंजिनियरो, दर्जनो छोटे-मोटे ठेकेदारो और दूसरे गिरोहबदो का साथ, पुलिस की इनायत और जिसे सामान्य आदमी कहा जाता है, उसके दिल मे पनपता हुआ असामान्य आतक—ये सारे तत्व मिलकर जिसके लिए सुरक्षा-चक्र बनाए हुए थे, वह ऐसी आसानी से एक दुर्घटना मे उलट जाएगा, यह सोचते ही मुझे परमपिता परमात्मा की असीम अनुकपा याद आई। परमात्मा जी ने कहा भी, "तुम लोग तो भाई भगवान को मानते नही हो, पर हमारा तो यही विश्वास है कि उसके दरबार मे देर भले ही हो, अँधेर नही है।"

मेरी तबीयत उफान पर थी। परमात्मा जी से सहमत होने के लिए जरा भी नही सोचना पडा। बोला, "वाह, भगवान के क्या कहने हैं! इस मामले मे तो उन्होने देर भी नही की। यह तो हमारी अदालतो ही मे होता है। देर तो होती ही है, ज्यादातर अँधेर भी हो जाती है।"

परमात्मा जी की गरदन पैंतालीस अश के कोण पर घूम गई। आकाशी अदालत के मुकाबले पृथ्वीतल की अदालतो का हवाला उन्हे शायद अच्छा नही लगा। मैंने पूछा, "ऐक्सिडेंट हुआ कैसे?"

"यह सब मुझे नही मालूम," कहकर वे एक फाइल उलटने लगे। मैंने उनके रुख के बदलाव को ताडकर भी अनदेखा किया, पहलेवाली प्रसन्न मुद्रा को खीचते हुए उन्हे प्रणाम करके बाहर निकल आया।

सबकुछ कैसे हुआ, यह जानना मेरे लिए बहुत जरूरी था। एक प्रेमबल्लभ है जो खबरो और अफवाहो को सूँघकर पकडता है। वह होता तो पूरी बात बताता। पर वह अभी चुनाव-क्षेत्र से लौटा नही है। चुनाव आज हो रहा होगा। उससे कल या परसो ही मुलाकात हो पाएगी। तब मुझे ही खोजी पत्रकारिता के मैदान मे उतरना पडेगा। यह सोचकर अस्पताल की ओर चला।

साइकिल की चेन उतर-उतर जाती थी। फ्रीव्हील की गोलियाँ कट गई थी। उधर सडक पर भीड का यह हाल कि वह एक मील चौडी होती तब भी कोई फर्क न पडता। किसी मैनहोल के ढक्कन के नीचे चिपके हुए तिलचट्टो की तरह सडक पर पैदल, साइकिले, स्कूटर-कार, रिक्शे-इक्के, टेम्पो, बसे ट्रक—सब बेतरतीब सटे पडे थे और चलते हुए भी एक स्थिर दृश्य बनकर रह गए थे। हर सवारी अपनी-अपनी आवाज मे बोल रही थी और सब आवाजो को तोडकर कुछ जाबाज़ मोटर साइकिल-सवार न जाने किस तरकीब से अपने से आगे की सवारी को पछाडकर दायाँ-बायाँ देखे बिना निकले जा रहे थे। किसी तरह साईकिल घसीटकर फुटपाथ पर लाया जहाँ पर, जैसे सडक पर सवारियाँ, वैसे ही पटरी पर दुकानदार इस तरह कब्जा जमाए बैठे थे कि सुई की नोक भर खाली जमीन के लिए कदम-कदम पर महाभारत करना पडा। बहुत दूर जाकर एक मरम्मत की दुकान पर साईकिल छोडी और पैदल ही अस्पताल की ओर चला।

फाटक के अदर घुसते ही लगा कि कोई परम विशिष्ट मरीज चुनाव के मैदान से लौटकर अस्पताल मे भरती हुआ है। कुछ साफ सुथरी गाडियाँ भी थी पर ज्यादातर

जीपे और धूल-सनी मोटरे, कुछ मिनी बसे, दर्जनो मोटर-साईकिले सारे सहन को घेरकर अस्पताल को मुख्य चुनाव अधिकारी का दफ्तर बना चुकी थी। उन गाडियो मे चिपके हुए पोस्टर ज्यादातर एक ऐसे उम्मीदवार की सिफारिश कर रहे थे जो सत्ता पार्टी के उम्मीदवार के खिलाफ खडा हुआ था। पर दो-एक गाडियाँ ऐसी भी थी जिन पर सत्ता पार्टी के चुनाव का अभियान छाया था। लगभग सभी पोस्टर नुच चुके थे फिर भी कुछ की पकड इतनी पुख्ता थी कि उनका सदेश आँखो को फोडकर दिमाग तक सीधे पहुँच जाता था।

चुनाववाली लगभग सभी गाडियाँ लहूलुहान थी। किसी का बपर टेढा हो गया था, किसी का रेडिएटर चू रहा था, कुछ के एक्जास्ट पाइपो की दुम गिर गई थी। आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ हर गाडी कही-न-कही चोट खा चुकी थी। यह और बात है कि जीपो के घाव उभरकर इतना ऊपर नही आए थे। कुछ जीपो मे ड्राइवर लोग बैठे हुए ऊँघ रहे थे, कुछ अपनी या अपने मालिक की राइफल या बदूक सुहला रहे थे।

इमर्जेंसी वार्ड का बरामदा दर्जनो उत्सुक और चिंतित चेहरो से भरा था। वार्ड का दरवाजा बद था और लोग उसके खुलने का इस बेचैनी से इतजार कर रहे थे जैसे उसके खुलते ही चुनाव का मनपसद नतीजा घोषित हो जाएगा और वे सब 'हमारे नेता जिदाबाद' का नारा लगाने लगेगे।

कुछ ड्राइवरो, घासखोदू कार्यकर्त्ताओ और बाहरी तमाशबीनो की बाते सुनकर, कुछ सुनाकर और कुछ पूछकर दुर्घटना का ब्यौरा इकट्ठा किया। कुछ कार्यकर्त्ताओ ने बडे शोक और आक्रोश से चीख-चीखकर उसकी पूरी नाटकीयता को भी प्रकट कर दिया। 'खून का बदला खून से लेगे'-जैसे शहीदी नारे सुने। उन्हे शात रहने की अपीले भी सुनी जो बरामदेवाले नेताओ ने आकर उनके शातिलाभ के लिए प्रसारित की। काफी देर बाद घटना का क्रमबद्ध रूप साफ हुआ और उसे अपनी कल्पना और अनुभव के जोड से मैंने पूरी तौर से समझ लिया।

रघुनाथ के मित्रो, सहायको और प्रशसको को—क्योंकि विरोधियो की चौथी श्रेणी छोडकर हर राजनीतिक महत्ववाले व्यक्ति की जान-पहचान का दायरा इन्ही तीन श्रेणियो से बनता है— पूरा यकीन था कि यह दुर्घटना का नही हत्या का मामला है और एक ट्रक द्वारा पूँछ मारकर रघुनाथ के ट्रेकर को दुर्घटना के नाम पर सडक से नीचे गिराया गया है।

गुडो और गिरोहबदो की दुनिया मे ट्रक की पूँछ मारने का काम एक मनोरजक युद्ध-क्रीडा है। इस खेल के नियम बडे सीधे-सादे हैं। इसके अत त आपको अपना ट्रक बडी तेज रफ्तार से सडक पर चलाना चाहिए। आपके आगे अगर कोई छोटी गाडी या जीप जा रही हो तो ट्रक का हार्न पूरी आवाज से बजाकर और एक से ज्यादा हार्न हो तो उन्ह एक साथ बजाकर उस गाडी को सडक के बिलकुल बाएँ या पटरी पर उतरने को मजबूर करना चाहिए। फिर ट्रक को उस गाडी से लगभग छुआते हुए उससे आगे बढा ले जाना

चाहिए और उसी क्रम ने ट्रक को कुछ और बाएँ करके इस चतुरता से अचानक दाएँ मोडना चाहिए कि ट्रक का पिछला हिस्सा मुडते-मुडते गाडी की दाहिनी साइड से या इंजिन के दाएँ हिस्से से टकरा जाए। ध्यान रहे कि इस खेल मे ट्रक की पूँछ का छोटी गाडी पर इतना जोरदार धक्का लगे कि गाडी ड्राइवर के काबू से बाहर जाकर किनारे किसी पेड से टकरा जाए या सडक से नीचे उतरकर उलट जाए।

रघुनाथ का ट्रैकर इसी दूसरी हालत मे जाकर रुका था।

चुनाव मे प्रचार के साथ-साथ अनाचार की जो गहराई और ऊँचाई थी, उसके किस्से हम कई दिनो से सुनते आ रहे थे। सत्ता पार्टी के उम्मीदवार को, जिसे हर हालत मे जीतना था, दूसरे साधनो के अलावा कई ऊँचे दर्जे के गिरोहबदो का समर्थन मिला हुआ था क्योंकि गिरोहबद सत्ता का समर्थन करके ही ऊँचे दर्जे मे रह सकते हैं। विरोधी पक्ष के प्रमुख उम्मीदवार के साथ भी कुछ ऊँचे दर्जे के गिरोहबद थे क्योकि कुछ साल पहले वह भी सत्ता मे था और उन दिनो के कुछ गिरोहबदो ने उसका साथ अभी तक न छोडा था। रघुनाथ के बारे मे पता चला कि पहले उसकी एक टॉग इस खेमे मे और दूसरी उस खेमे मे रहा करती थी जिससे कभी वह दोनो का आदमी गिना जाता और कभी किसी का नही। इस चुनाव मे उसने अपने को अपने तन-जन और धन के साथ, उसका मन जहाँ भी रहा हो, विरोधी पक्ष के साथ बॉध लिया था जिसके कारण सत्ता पक्ष के गिरोहबद उसे दलबदलू समझने लगे थे।

ऐसा नही कि चुनाव-प्रचार के दौरान ये गिरोह बराबर गुडागर्दी या मारपीट करते रहे हो। जिस देश के पास परमाणु शक्ति है उसके लिए जरूरी नही कि वह परमाणु युद्ध करे ही। या, अगर आपने कुत्ता पाल रखा है तो जरूरी नही कि आप उसे दूसरो पर छोडते ही रहे। ये सब शक्ति-सतुलन और युद्ध -निरोध की नीतियाँ हैं। सुना जाता है कि गिरोहबद प्राय दिन-भर अपने कैंपो मे पडे रहते थे। ठर्रा-पान और बकरे के भोजन का लालच इलाके के सैकडो नौजवानो को कर्मक्षेत्र मे खीच लाया था और कैंपो की सख्या और उनकी जनशक्ति का सीधा अनुपात उनकी गुडई से उतना नही जितना इलाके की बेरोजगारी के साथ बैठता था। जो भी हो, ये नौजवान जब 'महिष खाय करि मदिरा पाना' वाली धज मे गरजते हुए, जीपो और ट्रको पर नारे लगाते निकलते थे तो लोगो को साफ पता चल जाता था कि प्रजातांत्रिक चुनावो के साथ जो 'अभियान' 'मैदान' 'सघर्ष' वाली युद्ध की शब्दावली जुडी हुई है, वह खोखली नही है।

तभी पूँछ मारने का खेल होता था। अगर सडक पर दो विरोधी खेमो की गाडियाँ आगे-पीछे पड जाती तो मनोरजन का यही साधन था कि दोनो गाडियो के नौजवान और ज्यादा ऊँचे नारे लगाएँ, गाडियो की रफ्तार और तेज कर दी जाए, पीछेवाला आगे और आगेवाला कुछ और आगे जाने की कोशिश करे और पूँछ का खेल खेला जाए। प्राय यह सब मौज से शुरू होता और मौज ही मे खत्म होता क्योंकि खाने-खेलने के इस निश्चित वातावरण मे कोई भी पुलिस या मजिस्ट्रेसी को घुसने का मौका नही देना

चाहता था। यह अफसोस की बात थी कि ऐसी अलमस्त फिजॉ मे भी बेचारा रघुनाथ पूँछ की चोट खा गया और बिना कोई वीरता दिखाए ही वीरगति पानेवालो की प्रतीक्षा सूची मे नाम लिखा बैठा। उसके ड्राइवर और साथ के तीन आदमियो के बारे मे गनीमत है, डॉक्टरो ने कह दिया है कि वे वीरगति नही पाएँगे और आगे के चुनावो मे वीरता दिखाने के लिए बचे रहेगे।

भीड मे कई भूतपूर्व मंत्रियो, मौजूदा विधायको, सिचाई, सार्वजनिक निर्माण और आवास विभाग के इजिनियरो, वकीलो, दुकानदारो के अलावा छोटे-मोटे अफसरो के भी चेहरे दिखाई दिए। थाने पर जाकर मैंने और प्रेमवल्लभ ने रघुनाथ को पकडकर कर्रा' किए जाने की जिनसे अपील की थी वे थानेदार चौहान साहब भी एक विलायती पुलोवर, यानी सादी पोशाक मे भीड के अदर जाते और बाहर आते दीख पडे। जो आदमी आज तक मेरी निगाह मे अदना-सा गुडा था जिसका काम ठेकेदारी के अलावा सार्वजनिक पार्को से लोहे की रेलिग की चोरी कराना, सरकारी गोदामो से सीमेट और लोहे के सरिया तिडी करना और पहले एक मैटाडोर गाडी में, बाद मे एक हरे ट्रेकर मे शहर का भ्रमण करते हुए मज़बूत लोगो के आगे 'हे-हे' और कमजोरो पर 'खो-खो' करता था, आज वीरगति पाते-पाते शहर की जानीमानी हस्ती बन चुका था। आज जब रघुनाथ इमर्ज़ेंसी वार्ड मे पडा हुआ आखिरी सॉसे गिनने का होश भी खो चुका था, मुझे चौहान के सामने पडना ठीक नही जान पडा। मैं कतराकर दूसरी ओर निकल गया।

अचानक मैंने अपने कधे पर किसी के हाथ का दबाव महसूस किया और पलटकर देखा। लालभाई थे—हमारी यूनियन के अध्यक्ष, भूतपूर्व श्रममत्री। हमेशा की तरह शात, धीमे मुस्कराते हुए। जैसा होना चाहिए था, उनकी सुघर-चतुर बातूनी बीवी कुछ दूरी पर अपने प्रशसको से घिरी हुई बाते कर रही थी, एकाध शब्दो मे ही पता चल गया कि परिवहन आयुक्त के सगठन मे व्याप्त भ्रष्टाचार की बात हो रही है जो सडक दुर्घटना, गलत आदमियो को दिए जानेवाले ड्राईविग लाइसेस आदि के गलियारो से निकलकर सीधे परिवहन आयुक्त के चरित्र तक पहुँची होगी। मन को उधर बहकने से रोककर मैंने लालभाई को नमस्कार किया, कहा, "आपके दर्शन करने गया था। पता चला कि आप चुनाव मे गए हुए हैं।"

"चुनाव तो आज है। प्रचार अभियान बद होने के बाद लौट आया हूँ। रास्ते मे रघुनाथ जी के ऐक्सिडेट का हाल सुना। सीधे यही आ रहा हूँ।" फिर, "कोई खास बात थी ?"

मैंने डॉक्टर साहब के तबादले की घटना बताई। यह भी बताया कि यूनियन-आफिस मे मजदूरो को दवा देने का काम ठप्प हो गया है । "कोई फार्मेसिस्ट ही कुछ दिन के लिए मिल जाए तो ।"

"वह सब ठीक हो जाएगा।" उन्होने कुछ इस ढग से कहा जैसे कोई नेता कह रहा

हो कि देश की गरीबी और बेरोजगारी की सारी समस्याएँ जल्दी ही हल हो जाएँगी। मैंने बात को नेतागिरी के दायरे से निकालकर ठोस जमीन पर रखना चाहा, पूछा, ''कोई है आपकी निगाह मे ?''

उनका हाथ मेरे कधे को हल्के दबाव से ठेलता-सा जान पडा। वे चल पडे और उन्ही के साथ मैं भी चला। भीड से दूर आकर हम लोग एक पाकड के नीचे खडे हो गए। वे बोले, ''अब यह दवाखाने आदि का काम ऊँचे पैमाने पर होगा। हमने सोचा है कि इस यूनियन का पुनर्गठन करके इसे एक बडी और मजबूत सस्था का रूप दिया जाए।''

सरकारी आदमियो और राजनेताओ के मुँह मे पुनर्गठन जैसे भोले शब्द जब पैठ जाते हैं तो उनकी लार का करिश्मा कहिए या जो भी हो वे अचानक खतरनाक बन जाते हैं। कुछ ही दिन हुए यहाँ के मुख्यमत्री ने कई जिलो मे बरसो से चली आ रही नशाबदी को जब खत्म करना चाहा तो यह नही कहा कि हम मद्य-निषेध की नीति छोडने जा रहे हैं, उन्होने कहा कि हम आबकारी सगठन का पुनर्गठन करने जा रहे हैं। दरअसल, उन्होने 'अभिनवीकरण' जैसे शब्द का भी प्रयोग किया था जो मेरी समझ मे आज तक नही आया। तो, एक ओर 'पुनर्गठन' की आड से झाँकता हुआ अनाम खतरा, दूसरी ओर मुझे अचानक याद आ जानेवाला एक छुरेबाज का चेहरा—लालभाई के कुछ और कहे बिना ही उनका यह सदेश पूरी तौर से मेरी समझ मे आ गया कि उत्तर प्रदेश दैनिक मजदूर सघ की भ्रूणहत्या होनेवाली है।

मुझे झटका लगा, पर सोचा, खुद कुछ न बोलकर हत्यारे को ही बोलने दिया जाए। बडे भोलेपन से उनकी तरफ देखा, वे बोले, ''ऐसा है सतोपकुमार जी कि यह मजदूर-आदोलनवाला काम बडा पेचीदा होता है। यह तो आप भी देख रहे होंगे कि इस आदोलन की सबसे बडी कमजोरी यह है कि एक-एक की जगह चार-चार यूनियन काम कर रही हैं और सभी जगह मजबूत नेतृत्व की कमी है। फिर गाँव से आनेवाले दिहाडी मजदूरो की समस्या तो बिलकुल ही अलग ढग की है। माना कि सरकार उनके बारे मे बहुत कुछ सोच रही है, कई पेनल भी बैठाए गए हैं, उनके लिए कोई नया कानून भी आ सकता है, पर ये भूखे-नगे लोग उसके इतिजार मे बरसो नही बैठे रह सकते। उसके लिए उन्हे एक होना होगा और उससे भी ज्यादा जरूरी है कि मजदूरो के नेता एक होकर उनके लिए कधे-मे-कधा मिलाकर काम करे।

''अभी परसो फैजाबाद मे इस विषय पर बात हुई थी। आपके पुराने मुलाकाती इंजिनियर साहब भी थे। वैसे तो वे निर्माण-निगम के सलाहकार हो गए हैं पर उनकी हैसियत गैरसरकारी आदमी की है। आनरेरी हैं न। उन्होने भी इस समस्या मे गहरी दिलचस्पी दिखाई। उनके निगम मे जो मजदूर यूनियन है वह पुरानी है और उसका महासचिव श्रीवास्तव बडा दबग आदमी है। हमारा विचार हो रहा है कि उनकी यूनियन और हमारी यूनियन मिल जाए। इससे उनके सारे साधन हमारी यूनियन के मेबरो को अपने आप मिल जाएँगे। पहले से ही वे दवाखाना, क्रीश, प्रौढ-कक्षाएँ और

न जाने क्या-क्या चला रहे हैं । उनके साथ हो जाने पर हमे ये काम नए सिरे से न शुरू करने पडेगे । मैं सोचता हूँ दो-तीन दिन मे दोनो सस्थाओ के कार्यकर्त्ताओ की बैठक कर ली जाए ।"

कई सवाल पूछे जा सकते थे । जिस गायत्री टावर के मालिक ने हमारे मजदूरो को धरना देने पर मजबूर कर दिया है वही क्या उन मजदूरो के अब सरक्षक बनाए जाएँगे ? निर्माण-निगम की यूनियन मे वही श्रमिक आ सकते हैं जो निगम के अपने कर्मचारी हैं, वहाँ के जो दिहाडी मजदूर ठेकेदारो के मस्टर रोल पर हैं उनका अभी निर्माण-निगम की यूनियन से कोई नाता नही है । तब निजी मकानो पर ईंट-गारा उठानेवाले मजदूर उस यूनियन मे कैसे घुस पाएँगे ? और सिर्फ निजी लूट-खसोट के लिए छुरा-तमचा बाँधकर चलनेवाले श्रीवास्तव-छाप गुडे ही क्या अब इन मजदूरो को मजबूत नेतृत्व देने के लिए चुने जाएँगे ?

इन सवालो को उठाना चाहा । विलय के नाम पर वे यूनियन को दफन करने जा रहे थे । इसके खिलाफ बोलने का मन हुआ, पर मैंने कुछ नही कहा, बुजदिली के कारण नही, इस एहसास के कारण कि यूनियन के साथ इन बडे लोगो को जोडने की जो गलती हो चुकी है उसका अनिवार्य नतीजा स्वीकार करने के सिवाय फिलहाल कोई दूसरा रास्ता नही ।

यूँ भी इंजिनियर-श्रीवास्तव-धुरी मे उनके जुड जाने के बाद लालभाई से कुछ भी कहना बेमानी था । मैंने कहा, "सयुक्त बैठक बुलानी हो तो आप श्रीवास्तव को फोन कर दीजिए । वही सबको चिट्ठी भेज देगा । मेरे लिखने पर उस यूनियन के लोग शायद ही आने को तैयार हो ।"

लाल बाबू खुश हुए । बोले, "यही ठीक रहेगा । तब तक आप अपने कागज-पत्तर ठीक कर लीजिए ।"

यही मौका था जब अपनी कमजोरी को भी भुनाया जा सकता था । मैंने कहा, "कागज-पत्तर सब ठीक हैं, सिर्फ कुछ रुपयो का चक्कर है । चदे के कुछ रुपए-अपने साथ लेकर प्रेमबल्लभ चुनाव मे चला गया है, पता नही उससे कब वसूल हो पाएँ ।"

"उसकी फिक्र मत कीजिए । श्रीवास्तव वसूल कर लेगा । न हो पाया तब भी कोई बात नही । कितने रुपए होगे ? सौ ? दो सौ ? चार सौ ? सार्वजनिक कामो मे ऐसा हो ही जाता है । उस मामले को भी फिट कर लिया जाएगा ।"

6

दूसरे दिन साइट,पर कुछ घंटे रुका रहा। तबीयत कहीं टिक नही रही थी। अपने को खुश करने के लिए उस जमीन के बारे में सोचा जो दो साल बाद मुझे लखपती बनानेवाली थी। उसने मुझे और भी बेचैन कर दिया, वह मुझे घुमा-फिराकर उसी गिरोह का सदस्य बनाने जा रही थी जिसके सरगना इंजिनियर साहब हैं या अनजाने ही सावित्री है। कुछ घंटे बाद अपने कमरे मे लौट आया। बिस्तर पर पड़ा रहा। क़ानून की एक किताब के पन्ने पलटता रहा।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम। देखता रहा कि कितनी मेहनत से यह इतजाम किया गया है कि दस में नौ अपराधी भले ही सजा से बच जाएँ, दस निर्दोषों में एक को भी सजा नही होनी चाहिए। क़ानून ने निर्दोष नागरिक की सुरक्षा के लिए बड़ी मजबूत क़िलेबंदी की है। तभी उसकी सुरक्षा हो या न हो, दस में नौ अपराधी आराम से क़ानून का शिकजा तोड़कर मूँछो पर ताव देते घूम रहे हैं। और हम करोड़ो नौजवान जो सब तरह निर्दोष हैं, इसी कानूनी माहौल में दिन-रात जिंदगी की सजा भुगत रहे हैं, इस सज़ा से बचाव के लिए अभी कोई साक्ष्य-अधिनियम नही बना है।

ऊँघ गया। लगभग साढ़े चार बजे किसी ने बाहर का दरवाज़ा खटखटाया। मिस्त्री अपनी कन्नी-बसूली लिए खड़े थे। मैंने कहा, "तुम यहाँ मिस्त्री ? तुम तो गायत्री टावर में लगे थे।"

"कुछ न पूछो मुंसी," वे अदर आकर फर्श पर पंजो के बल बैठ गए। पुराने दरबारी अंदाज मे, जिसमे किसी के लिए कोई भी कड़ी बात करना मना है, कहने लगे, "उधर इंजिनियर साहब, इधर तुम्हारी यूनियन। सारे मजूर और मिस्त्री उजरत को लेकर वहाँ धरने पर बैठ गए हैं। झगड़ा पहले एक मारपीट को लेकर शुरू हुआ, वह रफा-दफा हुआ तो मजूरो ने उजरत की बात उठा दी। अब मैं क्या करूँ ? उनके साथ न बैठूँ तो मजूर नाराज, बैठूँ तो इंजिनियर साहब नाराज होगे। दो दिन घर पर बैठा रहा हूँ। अब यही पूछने आया हूँ, आपके यहाँ काम निकल आए तो कल से आपकी साइट पर चला आऊँ।"

"ठीक है, आ जाओ। पर गायत्री टावर का धरना अब हट चुका होगा। हमारी यूनियन भी अब इंजिनियर साहब के आदमी चलाएँगे।" कहकर बड़ी सम्मानसूचक

शब्दावली मे मैंने मिस्त्री को श्रीवारतव का परिचय दिया। मिस्त्री खिल उठे। बोले, "श्रीवास्तव भी इजिनियर साहव की तरह बडे हीरा आदमी हैं। अगर धरना हट गया हो तो वही वापस चला जाऊँगा। वैसे, आप जैसा कहे।"

"जरूर जाओ। इंजिनियर साहब के साथ काम का मजा ही कुछ और है।"

मिस्त्री गभीर हो गए। कहने लगे, "मुसी, तुम इंजिनियर साहब को ठीक से समझे नही हो। राजा आदमी हैं। तभी तो देखो न, सरकार ने अपनी गलती मान ली। उन्हे इतना बडा ओहदा दिया है। सरकारी मोटर, चाहे तो सरकारी बॅगला भी मिल सकता है। और तो और, उन्हे एक शेडो भी मिला है। पप्पी चला गया है न। उसकी जगह सादी वर्दी मे एक दीवान जी उनके साथ रहते हैं। इतना होने पर भी उनका स्वभाव वैसा ही है। वैसे ही हँसकर बोलना, हालचाल पूछना।"

पुरानी बाते चल निकली। सुरेस का जिक्र आया। मैंने कहा, "मिस्त्री, यूनियन तो अभी तक सुरेस के लिए कुछ खास कर नही पाई। उसका तीस-चालीस रुपए महीने का खर्च मैं परमात्मा जी से लेनेवाला था। पर अब यह काम इस बडी यूनियन को करना चाहिए। इसके लिए इंजिनियर साहब से बात कर लो। अपनी जिंदगी मे कोई एक तो भला काम कर ले।"

मिस्त्री ने मुझे झटका दिया। बताया कि वह तो कई दिन हुए स्कूल से चला आया है। उसका बाप उसे वहाँ से खीच लाया था। आजकल छोकरा सैक्टर दस मे काम पर लगा है।

"यह तो बडा बुरा हुआ।"

मेरे इस वक्तव्य से मिस्त्री को हैरत हुई। बोले, "इसमे बुरा क्या है? स्कूल मे रहता तो क्या हो जाता? बोलने लगता? यहाँ मेहनत-मजूरी करके सात-आठ रुपए रोज फटकारता है। मौज मे है।" फिर वही, "इसमे बुरा क्या है?"

एक मजदूर साईकिल पर हमारी ओर चला आ रहा था, हरी लुगी और काली बुशर्ट मे, और, जैसा कि चाहिए, बुशर्ट कधे पर फटी हुई। आते ही कहा, "आपको बुलाया है।"

कई सवाल करने पर बात साफ हुई। यूनियन के कमरे के बाहर जसोदा बैठी है। कई मर्द-औरते जमा हैं। कमरे के दरवाजे पर बाहर से कुडी लगी है। भीतर किसी को वद कर रखा है। जसोदा का कहना है कि जब तक मुसी नही आएँगे, दरवाजा नही खुलेगा।

'क्यो बद कर रक्खा है? इसका जवाब नही।

मिस्त्री भी मेरे साथ यूनियन आफिस तक आए। यह एक कमरेवाला जनता क्वार्टर था। अभी किसी के नाम लिखा नही गया था। नगर विकास प्राधिकरण के इंजिनियर की खुशामद करके कुछ दिनो के लिए इसी पर यूनियन का साइन बोर्ड लगा दिया था।

मुझे देखते ही, साईकिल खडी करने का मझे मौका दिए बिना, पद्रह-बीस मजदूरो

ने मुझे घेर लिया और एक साथ बोलने लगे। मैंने देखा कुछ चीख रहे हैं। कुछ मुस्करा रहे हैं। कोई भयानक घटना नही हुई है, इस इत्मीनान से मैंने चारो ओर देखा। जसोदा बाहर के बरामदे मे अपने बच्चे को नगी जमीन पर लिटाए बैठी हुई थी। उसी से पूछा, "क्या बात है जसोदा ? क्यो बुलाया है ?"

वह कुछ नही बोली, पर अब कई औरते मेरे पास सिमट आईं। एक-साथ अपनी-अपनी बात कहने लगी। धीरे-धीरे सब जमीन पर बैठते गए। मैं भी बरामदे की धार पर एक जगह रूमाल बिछाकर बैठ गया। मिस्त्री दूसरी ओर चार-पाँच मजदूरो से घिरे हुए उनसे बात करते रहे। फिर मेरे पास आकर बोले, "बडी बेजा बात है। जट्टलमैन होकर ऐसी हरकत करते हैं। ये लँगडे-लूले बडे कुचाली होते हैं।"

गनीमत है कि समाज कल्याण विभाग का कोई कार्यकर्ता इस वक्तव्य को सुनने के लिए वहाँ मौजूद न था। मैं, जो मौजूद था, इतनी देर मे समझ गया था कि इस घटना के हीरो मेरे हमदम, मेरे दोस्त बाबू प्रेमवल्लभ हैं और वही इस वक्त कमरे मे बद हैं।

मालूम हुआ कि शकरगढ मे धन्ना आया है। अब फसल कटने के दिन आ रहे हैं। इसलिए जसोदा को साथ लेकर अपने देस जानेवाला है। बडी चिरौरी-विनती करके जसोदा को साथ चलने के लिए राजी किया है। जसोदा दो-तीन दिन मे उसके साथ जानेवाली है।

वह घटा-डेढ घटा पहले यहाँ आई थी। उसे उम्मीद थी कि शाम को मैं यहाँ मिल जाऊँगा। पिछली मजदूरी का आज ही हिसाब कराना चाहती थी।

यहाँ उसे मिले प्रेमवल्लभ। "इत्ती दारू पिए कि सडी मछली जैसे गंधा रहे थे।" जसोदा को देखकर उन्होने उसे कुर्सी पर बैठने को कहा, पहले अच्छी-अच्छी बाते की, फिर अचानक उसकी बाँह पकड ली। जसोदा पहले ही से ताड़े हुए थी कि इनका मन ठीक नही है। उसने हाथ छुडाना चाहा तो वह जोर-जबर करने लगे। तब उसने उन्हे ढकेलकर गिरा दिया और बाहर आकर दरवाजा बद कर लिया। कहती है कि खोलेगे तो मुसी के सामने ही खोलेंगे।

मैंने जसोदा की ओर देखकर दरवाजे की ओर इशारा किया। पूछा, "क्यो ?"

जसोदा ने झनझनाती आवाज मे कहा, "मुझसे क्या पूछते हो ? साथी तो तुम्हारे ही हैं।"

मिस्त्री बोले, "थाने मे रपट कर दी जाए।"

जैसे रिपोर्ट मजदूरो के खिलाफ की जानेवाली हो, सभी ने इसका विरोध किया। यहाँ तक कि जसोदा ने भी, "हमे नही जाना थाना-कचहरी।"

मैंने ही दरवाजा खोला, खोलते ही लगा कि सडी मछली की उपमा बहुत हल्की थी। इतनी देर मे पता चल चुका था कि मजदूरो मे पूरी घटना को लेकर खूनी किस्म का गुस्सा नही है। ऐसा क्यो है, इसका जवाब प्रेमवल्लभ को देखकर मिल गया।

बाबू प्रेमवल्लभ फर्श पर लेटे हुए हैं। आँखे मूँदे हैं और कराह रहे हैं। कमरे के

अंदर कई मजदूरो को एक साथ आया हुआ समझकर ये आँखे खोलते हैं। मुझे कडी निगाह से देखते हुए उठने की कोशिश करते हैं। एक वार लडखडाते हैं, फिर सँभलते हैं, गोया ज़िंदगी के चढ़ाव-उतार के प्रत्यक्ष रूप हैं। फिर एक कुर्सी पर धम्म से वैठ जाते हैं, कुछ और कराहते हैं। लगता है कि जसोदा ने उनके साथ कसकर वलात्कार किया है।

पहले एक, फिर दूसरा, फिर कई मजदूर हँसने लगते हैं। मिस्त्री किलककर बोलते हैं, "सावास मेमसाव।"

मैंने एक रिक्शा बुलाया, प्रेमबल्लभ को उस पर लाद दिया गया, कहा, "अवे अव तो अपनी फिल्मी कहानी बदल दे।"

इसका जवाव उसने गरजकर दिया। इतना पिटकर भी जो इस तरह गरज सकता हो, वही असली सूरमा है। बकझक करते हुए प्रेमबल्लभ ने जो टुकडा-टुकडा भाषण दिया, उसका मतलब था यह औरत बदचलन है। मुझे नशे की हालत मे समझकर इसने मेरी जेव से मेरा बटुआ निकालना चाहा। मैंने अपने को बचाने की कोशिश की तो उसने मुझे ढकेल दिया और चिल्लाती हुई बाहर आ गई। उसने मुझे नाजायज तौर से कमरे में बद कर दिया। लूटमार की कोशिश और नाजायज कैद के जुर्म मे मैं इस साली को दो साल के लिए जेल भिजवाऊँगा। न भिजवाया तो वकालत की डिग्री पर मूत दूँगा।

अपनी ही फतासी का शिकार प्रेमबल्लभ! रिक्शे पर आधा लेटकर, आधा बैठकर बकझक करता हुआ वह चला गया। फिल्म अभी तक नही वनी, जव बनेगी तो कुँअर साहव इस हादसे को उसमे यकीनन् नही आने देगे।

महीनो वाद आज सवेरे एक कापी और किताब हाथ मे लिए बाकायदा छात्र की धज मे कानून की कक्षा मे हाजिर हुआ। पता चला कि खुद प्राध्यापक महोदय ग़ैर-हाजिर हैं। अपने मकान मे टीन के छावन के नीचे उन्होने बच्चो का एक स्कूल खोल रखा है जिसका नाम है सेट ऐथनी कान्वेट स्कूल। उसी का कोई चक्कर है जिसे सुलझाने के लिए आज वे घर पर रुक गए हैं। वैसे भी आज की हवा पढ़ाई के खिलाफ थी। छात्र यूनियन के चुनाव होनेवाले थे और जो ठेकेदार साहव अध्यक्षपद के उम्मीदवार हैं वे इत्तफाक से इसी कक्षा के छात्र हैं। मैं उन्हे ठेकेदार साहव इसलिए नही कह रहा हूँ कि साल भर से ठेकेदारो के बीच रहते-रहते मुझे सारी दुनिया ठेकेदारमयी जान पडने लगी है। वे सचमुच ठेकेदार हैं, नगर-विकास निगम मे उनके लाखो रुपए के ठेके हैं और उनके साथ के कई छोटे-मोटे ठेकेदार, कुछ जूनियर इंजिनियर और इमारती सामानो के कुछ दुकानदार मिलकर उनके चुनाव का खर्च उठाने को तैयार हैं। प्राध्यापक महोदय के न आने से कक्षा के लगभग एक सौ बीस छात्रो मे से आधे से ज्यादा वाहर चले गए थे। वाकी छोटे-छोटे गुटो मे वँटकर चुनाव-चर्चा कर रहे थे। मैं वहुत दिन वाद यहाँ

आया था और मुझे वहाँ की टूटी हुई डेस्के और कुर्सियाँ, मटमैली, पलस्तर गिराती हुई दीवारे, ठीक से बद न हो पानेवाली खिडकियाँ और बिना बुहारा फर्श—सबकुछ अचानक बडा लुभावना जान पडने लगा था। इसलिए मैं वही रुका रहा, चुनाव-चर्चा सुनता रहा, सोचता रहा कि ये जो आवाजे हवा मे गूँज रही हैं वे मेरी ही आवाज की अनुगूँज हैं।

"सत्ते, अरे ओ सत्ते भाई!" किसी ने पुकारा और पुकारने के अंदाज भर से उसने यूनिवर्सिटी के लेक्चर हॉल को बदलकर गाँव का खलिहान बना दिया। यह हमारे गाँव के पास का ही था। मेरे नाम पर 'प्राक्सी' की हाजिरी यही बोलता था। तगडा था और हथछुट भी। मैंने इसीलिए उसे अपनी यूनियन की कार्यकारिणी मे शामिल किया था। अपने गँवरपन का उसे बडा नाज था जिसे वह विश्वविद्यालय की शिक्षा के थपेडो से बहुत सँभालकर बचाए हुए था। अच्छा और भरोसेमद लडका था।

"आज क्लास मे कैसे आ गए?"

मैंने कहा, "सपने मे कल रात मैंने देखा, लबी सफेद दाढ़ी-मूँछोवाला एक महापुरुष मुझसे कह रहा है प्राक्सी के सहारे यल. यल बी करने से क्या फायदा? तुझे तो कानून की जमकर पढाई करनी चाहिए और रोज अपनी क्लास जाना चाहिए। तभी मैं "

"चढाय लिया होगा भाँग का गोला—इसी से ऐसे-ऐसे खराब सपने आए होगे।"

इसका जवाब डेली पैसेजरो की शैली मे देना चाहिए था और अपने वाक्य मे 'साले' और 'हरामी' का खुलकर प्रयोग करना चाहिए था। पर तबीयत मे न जाने कैसा उचाट था, मैंने उसे सजीदगी से समझाना शुरू किया। बताया कि मैं इम्तहान की नकल और प्राक्सी से ऊब गया हूँ। अब कुछ दिन जमकर पढ लेना चाहता हूँ।

"तब साले सात जनम तुम यल यल बी नही कर पाओगे। देख लेना इसी साल इम्तहान मे प्लक हुए बिना नही बचोगे।"

मैंने बहस आगे नही बढ़ाई। सिर हिलाकर उसकी भविष्यवाणी कुबूल कर ली। वह मुझे अचभे के साथ देखता रहा, बोला, "तो अब प्राक्सी न बोला करूँ?"

"कभी क्लास मे न आ पाया तो तुम्हे बोलना ही पड़ेगा।"

उसने पहलवानी मुद्रा मे बदन तोडा, कहने लगा, "चलो अच्छा है। अब इसी महीने से रेल का माहवारी टिकट बनवा लो। जब कोई काम नही करना है तो शहर मे रहकर क्या करोगे?"

मैंने कहा, "देखो भाई, घर की हालत जानते ही हो। वहाँ से मेरे खर्च के लिए एक कौडी मिलनेवाली नही। यहाँ लगा-लगाया काम है। एक पुलिस के डिप्टी साहब हैं। रिटायर होकर ठेकेदासी कर रहे हैं। उन्ही के साथ मैं भी लगा हूँ। सवेरे के क्लास मे मैं आ जाया करूँगा, पर उनका काम भी देखता रहूँगा। अभी तक आठ बजे जाता था, अब दस बजे जाया करूँगा। उधर हिसाब-किताब के लिए देर तक रुकना पडेगा। यह डेलीवाली मौज अब मेरे मुकद्दर मे नही है।"

वह अब भी मुझे उसी तरह देखता जा रहा था। पास मे बैठ गया। बोला, "सुनो यार, तुम्हे कुछ हो गया है। इतनी गिरी तबीयत से तुम कभी नही बोलते थे। क्या मामला है प्यारे?"

क्या बताता? उसने फिर कहा, "पहले से कुछ झटक भी गए हो। कोई चक्कर है क्या? कोई लौंडिया-वौंडिया ?"

इस बार मैं हँसा पर तबीयत लहलहाई नही। कहा, "लौंडिया भी यार अपने मुकद्दर मे नही दीखती। सारी अच्छी लौंडियाँ तो आई ए एस वाले ले गए।

एक जूनियर इंजिनियर ठेकेदार साहबवाले मकानो पर बिजली के काम की देखरेख करने आया करते थे। जिस अधूरे मकान मे मैंने अपना डेरा डाला था, उसके पिछवाडे कुछ दूरी पर उनका क्वार्टर था। सरसो का शुद्ध तेल, शहद, पापड, मुँगोडी जैसी चीजे हमारी नई बस्ती मे अभी सुभीते से नही मिल पाती थी और उम्दा चीजो के शौकीन अब भी कई किलोमीटर चलकर शहर के पुराने बाजार से उन्हे खरीदते थे। जूनियर इजिनियर साहब के घर का यह सामान मैं कभी-कभी खरीदकर अपने साथ ले आता था। इस प्रेम-व्यवहार के बदले उन्होने अपने स्कूटर पर मुझे ड्राइविग सीखने का मौका दे दिया था। दिन को काम के वक्त मैं कभी-कभी उनका स्कूटर लेकर चलाने की मश्क करता था। चलाना आ गया था, पर मश्क अभी पूरी नही हुई थी।

उसी शाम, जिस दिन मैंने बहुत दिन बाद कानून की कक्षा देखी थी, मैं स्कूटर लेकर सडक पर आया। मुझे पद्रह-बीस मिनट मे वापस आ जाना चाहिए था। पर उस दिन पिछले दिनो की बूँदाबाँदी के बाद जनवरी का आसमान कुछ खुला था और शाम होने के पहले ही हल्का कोहरा चारो ओर फैलने लगा था। शहर के बाहर की यह सडक लगभग सुनसान थी। स्कूटर पर बैठकर मैंने ठडक और मुँह पर हवा के हल्के झोके महसूस किए। मैं काफी देर सडको का चक्कर लगाता रहा, जल्दी लौटने की मजबूरी से बेखबर हो गया।

अँधेरा होने पर स्कूटर की रोशनी मे चलने का पहला मौका था। मैंने उसकी रफ्तार बढा दी और बिलकुल नए किस्म की उमग का अनुभव करता हुआ बस्ती के दूसरे छोर पर एक नए बाजार मे पहुँच गया। वहाँ ठसक के साथ स्कूटर रोककर मैंने पान खाए। उसके बाद आगे बढता हुआ राष्ट्रीय राजमार्ग पर आ गया और उस पर चलती हुई बसो और ट्रको के साथ होशियारी से स्कूटर चलाता हुआ एक तिराहे पर पहुँच गया।

तिराहे से निकलनेवाली सडक सँकरी और टेढी-मेढ़ी थी। वह हमारी नई बस्ती के एक छोर पर सीमा रेखा का काम करती थी। इसके किनारे-किनारे सटाकर उगाए गए घने यूकेलिप्टसो की दो दीवारे जैसी बन गई थी। हल्के कोहरे मे सडक के किनारे जलती हुई ट्यूबलाइटो का प्रकाश धीमा था, पर उस सडक पर मुडते ही मुझे सारा

परिमडल बडा लुभावना, मुझे अपने मे समेटता-सा जान पडा। मैं जानता था कि यह सडक आगे जाकर सरकारी जगलो मे खो जाएगी पर उसके बहुत पहले बाई ओर जानेवाली एक दूसरी सडक मुझे सीधे अपने अड्डे पर पहुँचा देगी।

पेडो की दीवार से दोनो ओर घिरी सुरग जैसी इस पतली, टेढ़ी-मेढ़ी सडक पर मैं उमग के साथ बढता जा रहा था, तभी आगे की सभी रोशनियाँ बुझ गई। मुझे झटका-सा लगा—दैत्याकार घने पेड, वीरानगी, अँधेरा और स्कूटर जिसे चलाने के अलावा उसके बारे मे मैं कुछ नही जानता था, इन सबने मिलकर मुझे एक क्षण के लिए कुछ व्यग्र किया, पर इस विश्वास से कि कुछ दूर आगे इसी रास्ते पर मुझे अपने डेरे पर ले जानेवाली सडक मिलेगी और शायद वहाँ की रोशनियाँ बुझी न होगी, मुझे दिलासा मिला, मैं आगे बढता रहा।

मुझे पता नही कि सडक से दाई ओर निकलनेवाले एक और भी पतले रास्ते पर मेरा स्कूटर कब उतर आया, इसका एहसास मुझे तब हुआ जब वह रास्ता स्कूटर के लिए सँकरा पड़ गया और एक पगडडी मे तबदील होने लगा। मैं अँधेरे और कोहरे मे देख नही सकता था, पर दाएँ-बाएँ स्कूटर की हेडलाइट से जो रोशनी फैल रही थी वह कुश-काँस के झखाड और दूसरी बेतरतीब झाडियो पर पड रही थी। स्कूटर घुमाने की वहाँ जगह न थी। उतरकर मैंने उसे मोडा और उसी रास्ते सडक तक वापस लौटने की कोशिश की। स्कूटर चलाना चाहा, पर वह स्टार्ट नही हुआ।

मैं दोनो हाथो स्कूटर को घसीटता हुआ पगडडी से वापस लौटा। कोई वजह नही थी, पर एक अजीब-से आतक ने मेरे फेफडो को जकड लिया था, साँस लेने मे दिक्कत होने लगी थी। सड़क पर पहुँचकर मन मे कुछ सहजता आई। यहाँ मैंने रुककर एक बार फिर स्कूटर स्टार्ट करना चाहा, कोई नतीजा नही निकला।

अँधेरे मे सुनसान सडक पर मैं स्कूटर घसीटता हुआ उस तिराहे की ओर बढा जहाँ से एक चौडी-सीधी सडक मुझे मेरे डेरे तक पहुँचानेवाली थी। चारो ओर सन्नाटा था। जानवरो और चिडियो की आवाजे थमी हुई थी। मेरे आसपास कोई आबादी न थी। सिर्फ मेरे पीछे और बाई ओर दूर-दूर कोहरे मे सडक की मद्धिम रोशनियाँ चमक रही थी।

अचानक मैंने पाया कि मेरे दोनो ओर यूकेलिप्टसवाली दीवारे टूट चुकी हैं। मै फिर एक पगडडी पर हूँ जो पहलेवाली से कुछ ज्यादा चौडी है पर जिसके किनारे उन्ही ठिगनी झाडियो का जगल है। मैं दोबारा वापस लौटा और सडक पर आया। यहाँ आकर मैंने एक पेड के पास स्कूटर खडा कर दिया।

जोर-जोर की साँस ली। चारो ओर अँधेरा और कोहरा, ऊपर घने पेडो की सरसराती हुई पत्तियाँ। दाई ओर और आगे झाडियो का अछेद्य विस्तार, बाईं ओर दूर पर रोशनी की मद्धिम लहरे, मोटरो के हार्न की आवाजे, पीछे—बहुत पीछे रोशनी की उजास।

अजीब-सा भय, पर यह भय नही कि दाई ओर के जगल से तीन आदमी अचानक सामने आकर मेरा स्कूटर छीन सकते हैं, मेरी गर्दन रेत सकते हैं। सिर्फ एक अपरिभाषित भय।

मैंने कभी शराब नही पी, पर मुझे जिस दिमागी अव्यवस्था ने जकड लिया था वह शायद शराब के नशे मे ही आ सकती हो। फिर भी जितने ठडे ढग से सोच सकता था, सोचा। सोचा कि इस भटकाव से बचने का सिर्फ एक रास्ता है, वह यह कि इस यूकेलिप्टसवाली सडक को तब तक हाथ से न जाने दूँ जब तक रोशनी के दायरे मे न आ जाऊँ।

आगे बढने का सवाल ही न था। स्कूटर घुमाकर उसे सडक पर घसीटना शुरू किया, लौटते मे रोशनी की कतारे अब बाएँ के बजाय बहुत दूर दाई ओर थी। अपनी समझ का रेशा-रेशा चौकन्ना करके देखता रहा कि दुबारा बाई ओर वाली जगली पगडडी मे न धँस जाऊँ, जल्दी-से-जल्दी वहाँ पहुँचूँ जहाँ पूरी-पूरी रोशनी भले ही न हो, उसकी उजास तो हो।

पता नही कि स्कूटर घसीटते-घसीटते कब मेरी चाल तेज से बढकर दौड मे बदल गई थी। पता तब चला जब लगा कि फेफडे चौगुना काम कर रहे हैं। रुका, सुस्ताया, और यहाँ से दाईं ओर रोशनियाँ कुछ नजदीक आती जान पडी। तब लबी साँस खीचकर अपने को सहज बनाने की कोशिश करते हुए, मैंने स्कूटर को फिर से स्टार्ट करने की कोशिश की। दो-तीन ठोकरो के बाद वह स्टार्ट हो गया।

7

किसान के घर का सस्कार—नीद टूटते ही बिस्तर से उठ जाना। यही पुरानी आदत है। पर आज ऑख खुलने पर उठा नही, बिस्तर पर पडा रहा।

पिछली रात के अनुभव से अभी छुटकारा नही मिला था। अँधेरी राहो की भूलभुलइयॉ का दबदबा अभी मन पर हावी था। पर मुझे यह भी एहसास था कि यह एक गुजरे हुए, उलझाव भरे कल का खुमार भर है। असलियत यह थी कि उस अँधेरे के घेरे मे भी मैंने होश नही खोया था, आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ, किसी-न-किसी राह से मैं अपनी सडक पर आ गया था।

''ऑखे मूँदकर मैंने दोबारा सोने की कोशिश की। पर जानता था, सो नही सकूँगा।

यूनियन की शुरुआत ही गलत थी। उस वक्त जो हुआ था, खेल-खेल मे किया गया था। तब पता नही था कि जो करने जा रहे हैं, वह खेल नही है।

भूतपूर्व राज्यपाल पाल बाबू, भूतपूर्व श्रममत्री लाल बाबू, उनकी अभूतपूर्व बीवी, लफगा प्रेमबल्लभ, दैनिक यात्री-सघ के कुछ पशु-पक्षी, इनको इकट्ठा करके चिडियाघर तो चलाया जा सकता था, देश के अलग-अलग जिलो से आए हुए अपढ मजदूरो का सगठन नही बन सकता था। मुझे यह तभी सोचना चाहिए था और हैरत है कि तब इसके बारे मे मैंने कुछ भी नही सोचा। शायद पाल बाबू-लाल बाबू जैसी हस्तियो का तब ज्यादा ही भरोसा रहा हो।

मुझे जानना चाहिए था, यहाँ भी अँधेरी राहो की एक भूलभुलइयॉ है। जो सैकडो मील पीछे अपना घर छोडकर दो जून की रोटी की तलाश मे यहाँ आए हैं, उनका पहला और आखिरी लक्ष्य यही है कि उनकी रोटी सुरक्षित रहे। वे यहाँ अपने हक की लडाई लडने नही आए हैं, न कोई क्राति करने आए हैं। यह करने की उनमे चेतना होती तो वे शायद अपनी ही जमीन पर अपनी लडाई लडते, यहाँ आने की उन्हे जरूरत न पडती।

यह यूनियन भी क्या थी ? पर, पहले यह क्या नही थी ? सेवा सगठन तो नही ही थी, और न इन मौजूदा हस्तियो के होते हुए कभी वैसी बन सकती थी जिसके पॉव के धमाके

से सत्ता के खेमे मे भूचाल आ जाए। प्रेमवल्लभ और लाल बाबू के साथ यह कभी भी वैसी ताकत नही वन सकती थी जो मजदूरो की जिदगी पर थोपी हुई उन शर्तों को चकनाचूर कर देती जो शताब्दियो से उन पर लगी हुई हैं। ज्यादा-से-ज्यादा यह हरी-भरी अमरबेलि जैसी वन सकती थी जो मजदूरो की जिदगी के कँटीले झाड पर लहलहाती। अपनी मौजूदा हैसियत मे वह व्यवस्था की शर्तों पर ही व्यवस्था से सघर्ष का ढोग करती। किसी को धक्का दिए विना छोटी-मोटी सुविधाएँ खीचकर अपनी विजय का ऐलान करती। नासूर होता तो उसके इलाज के लिए ऐस्पिरिन की टिकिया बाँटती।

अच्छा हुआ, एक फरेब टूटा, ज्यादा-से-ज्यादा यही हुआ कि अमरबेलि के ततु उजड गए। उसके नीचे छिपे हुए बबूल के सूखे काँटे फिर धूप मे चमकने लगे।

इसी तरह कभी आश्रमो का दौर-दौरा था—वेद-पुराण के युग मे नही, आज से पचास-साठ साल पहले। वे आश्रम चलाते थे—महिलाओ के लिए, हरिजनो के लिए, आदिवासी बच्चो के लिए, पर इस शर्त पर कि व्यवस्था की सलामती को खरोच न लगे। जो भी समाज-सुधारको की सूची मे शामिल होना चाहता, इस भोले यकीन के साथ आता था कि आश्रम खोल देने से ही सारी समस्याओ की जड कट जाएगी। तभी आश्रम पनपे, उनको पनपानेवाले भी पनपे और वे समस्याएँ भी पनपी जिनको काटने के लिए आश्रम बनाए गए थे। और फिर आए सघ, और हमारी जैसी यूनियने। वैसे ही भोले यकीन की उपज।

तब ?

जब सौम्य सघर्ष के रास्ते वद हो चुके हो, तब ?

क्या बदूक की नली से ताकत निकलने का पैगाम सुना जाए ?

एक ऐसा कमरा जिसका फर्श कच्चा है, छत मे पलस्तर नही हुआ है, खिडकियो में लोहे की ग्रिल है, किवाड नही हैं, दरवाजे पर किवाड लगे हैं पर उन पर रग नही हुआ है। ऐसे कमरे मे अपनी ढीली चारपाई पर मैं कबल मे लिपटा पडा था। लाल भाई के विश्वासघात के सदमे का आज मुझे एहसास पूरी तौर से हो रहा था, फिर भी मैं समझ रहा था कि कुछ भी बिगडा नही है, अभी बहुत कुछ किया जा सकता है।

सशस्त्र क्राति तक आते-आते मैंने सोने का बहाना छोड दिया। पीढ़ी-दर-पीढ़ी पिटनेवाले किसान परिवार का पारपरिक दब्बूपन हो, या मेरी समझ—इस सभावना पर सोचने के पहले ही मैंने उसे खारिज कर दिया।

राइफल के क्राति-पथ मे कविता है, उसका एक छद है, उसकी लय है। उसे लुभावना बनाने के लिए उसे अटूट आशावाद से जोडा गया है, लडाइयो पर लडाइयाँ हारकर भी आखिर मे अवश्यभावी विजय का सदेश दिया गया है। बदलाव का वही असली धारदार साधन है, बहुत हद तक अपने आप मे वह एक सिद्धि है, यही बताया गया है।

फिर भी यह पथ बार-बार पिटा है, पिटता रहा है। इसकी खास वजह यह समझाई गई है कि जिनके हित मे लडाई लडी जा रही है, उनमे सही चेतना की कमी है, इस पथ के पथी उन्हे पूरी-पूरी तालीम नही दे पाए हैं। तभी जिनकी मुक्ति के लिए राइफल लिए तुम जगलो मे भटक रहे हो, वही तुम्हारे खिलाफ मुखबिरी कर रहे हैं।

यही तो दुखती रग है। जिनके लिए तुम यह कर रहे हो, उनमे अगर तुम्हारी परिभाषा की 'सही' चेतना जाग जाए तो शायद राइफल-पथ के सहारे के बिना ही वे सत्ता का किला तोड देगे। पर वह चेतना कैसे आएगी?

भटकाव के इस घटाटोप मे पहली बार अपनी कुशिक्षा पर तरस आया। एक बार जसोदा से कहा था, 'तुम अब कही मत जाना। यूनियन के दफ्तर की सफाई कर दिया करो—एक तरह से चपरासी का काम, और बेफिक्री से रहो। तुम्हारा बच्चा बडा होगा तो उसे ऊँचे दर्जे तक पढ़ाएँगे।'

उसने जवाब दिया था, 'क्या करेगा मुसी मेरा बच्चा पढकर? कुदाल भी नही चला पाएगा। तुम्ही इतना पढ-लिख गए तो उससे क्या हुआ? मजूरी लायक भी नही रहे।'

जसोदा की बात याद आई। नकल के सहारे ही सही, राजनीतिशास्त्र में एम. ए करके जो टेढी-मेढी राहे दिमाग मे खुल रही हैं और फिर आपस मे एक-दूसरे को काट रही हैं, इन पर पहले ही न जाने कितना सोचा जा चुका है, कितना लिखा गया है। मुझे कुछ पता नही। किताबो और लेखको के जो नाम सुन रक्खे थे, वे भी भूले जा रहे हैं। एक बार उन्हे ही समझ सकूं तो शायद इस भूलभुलइयाँ से बाहर निकलने का कोई दरवाजा खुले।

मैं दूसरो को क्या समझाऊँगा? पहले अपना 'फडा' तो 'क्लियर' कर लूँ।

कुछ-कुछ ऐसा ही परसो रात को भी सोचा था। तभी अपने से खीझ हुई थी। खोपडी मे सिनेमा चलाकर मैं जो बडे-बडे तात्विक व्याख्यान देता हूँ, कुछ बेमानी आवाजो के सहारे निरर्थकता का जाल फैलाकर स्पैनिश बोलने का वहम पालता हूँ—इस बचकानेपन से ऊपर उभरने की व्यग्रता ने मुझे ठीक से सोने न दिया था।

सवेरे उठते ही कानून की कक्षा मे जाने का फैसला किया था, वहाँ से लाइब्रेरी गया था।

आज एक और फैसला किया।

लाल बाबू ने मुझे बेचैन किया था पर एक तरह से आजाद भी कर दिया था। यूनियन को मारकर उन्होने मेरे भीतर जो कुछ मरा पडा था, उसे फिर से जिलाने मे मदद की थी।

उस दिन काम पर नही गया। लायब्रेरी मे पूरे दिन बैठा रहा। शाम को, सवेरे के फैसले की याद करके, परमात्मा जी के यहाँ पहुँचा। सावित्री से भेट की और बताया कि मैं अपनी जमीन बेचना चाहता हूँ।

"क्यो? काटती है?"

"हाँ।"

"तो उसे आनद साहब को दे दो। वे कई दिन से वहाँ एक प्लाट के लिए हुडक रहे हैं।"

"तुम क्यो नही ले लेती? तुम्हे चार हजार मे वापस कर दूँगा।"

"यह कैसे हो सकता है? सोसायटी का मामला है। उसमे दस आदमी होने ही चाहिए।"

"तब आनद जी से तुम्ही बात कर लो।"

"बात भी कर लूँगी और उनसे तुम्हे सोलह हजार रुपए भी दिला दूँगी। बोलो, इसमे मुझे क्या दोगे?"

"पूरा मुनाफा तुम्हारा।"

सावित्री हँसते-हँसते सोफे पर पसर गई। बोली, "सत्ते, तुम्हारा पढना-लिखना सब बेकार है। अपना मुनाफा कोई इस तरह छोडता है।" फिर, "रसगुल्ला खाओगे?"

फ्रिज से रसगुल्ले निकालकर मेरे सामने रखते हुए उसने कहा, "देखो, चार हजार रुपए तो दो साल पहले का रेट है। पेशगी देकर तभी हम लोगो ने इकरारनामा लिखा लिया था। आज का रेट वही होगा जो तुम माँग लो। आनद साहब की गरज बडी तगडी है। उनसे सोलह हजार लिए बिना मत छोडना। बीस भी माँग सकते हो?

"घबराओ नही, मै सब ठीक करा दूँगी।"

जमीन से आजाद हो गया, पर रास्ते-भर दिमाग चौंधियाया रहा। कितना आसान है रुपिया कमाना, बशर्ते कि आप रुपिया कमानेवालो के साथ हो।

जसोदा का हिसाब कर चुकने पर पूछा, "धन्ना कहाँ है?"

"क्या पता? पड़ा होगा वही साइट पर।"

"पिए हुए?"

"उसने कसम खाई है कि अब ज्यादा नही पिएगा।"

"यानी पीना नही छोडेगा।"

वह बच्चे के साथ मेरे सामने खड़ी थी। धन्ना के निकम्मेपन को नजर-अदाज किया जा रहा था। कुछ देर पहले प्रेमबल्लभ की बात उठाकर उसकी पिटाई का मैंने कुछ ब्यौरा सुनना चाहा था, पर नकली झुँझलाहट के साथ उसने सिर्फ कहा था, "उचक्का है। तुम उसका साथ न करो मुसी।" बहुत दिन बाद मुझे लगा था कि उसकी पुरानी सहजता लौट रही है।

खामोशी। "कब तक लौटोगी?"

"जेठ मे। पर पता नही कि यहाँ आऊँ कि कही और जाऊँ।"

वह जा रही थी। मैंने पुकारा, "जसोदा।"

मैं उसे रघुनाथ के बारे मे बताना चाहता था। कभी गाँव मे उसने रोते हुए नेता के बारे मे जानना चाहा था, कभी मैंने उससे कहा था कि जिन्होने भी नेता को चोट पहुँचाई

है, उनसे वदला लिया जाएगा। उसके वाद से आज तक उसने दुवारा वह सवाल नही उठाया। शायद उसने भी अपने को समझा लिया हो कि यह एक दुर्घटना-भर थी। नेता की मौत को लेकर मेरे मन मे जो सदेह और अनुमान थे, उन्हे मैंने मिस्त्री से भले ही कहा हो, जसोदा से कभी नही वताया था।

वह मेरी ओर मुडकर खडी हो गई। जिस साफ-सुथरी निगाह से उसने मुझे देखा, उससे अपनी निगाह मिलते ही मैंने अपना इरादा वदल दिया। अव रघुनाथ और अस्पताल के विस्तर पर उसके आसपास मॅडराती मौत के वारे मे कुछ कहना वेकार था। इन घटनाओ या दुर्घटनाओ के जिक्र का कोई अर्थ नही रह गया था।

वच्चा उसके कधे से लगकर सोने लगा था। पास जाकर मैंने वच्चे के गाल थपथपाए, सिर पर हाथ फेरा, जैसे इसी जरूरी काम के लिए उसे पुकारकर रोका हो।

कमरे मे अँधेरा था, विजली गायव थी। कभी वाहर सडक पर मोटरो और स्कूटरो की जो रोशनी दीखती थी, उसमे चमकनेवाली चीजे, लगता था, धरती की होकर भी धरती की नही हैं। पर आज खुद अपने को लेकर मेरे मन में वैसा कोई वहम न था। दिवास्वप्न पीछे छूट रहे थे। ठोस जमीन पर पॉव टिकाकर जो भी चाहूॅ वह करने के लिए मैं अव मजवूर नही, आजाद हूॅ।

कानून की पढाई मेरे लिए अव पेट पालने की मजवूरी नही, एक लौहजाल तोडने की तैयारी होगी।

●●●